प्रकाशक:-
पो. कण्ठमणि शास्त्री
संचालक
विद्याविभाग, कांकरोली.

प्रथमावृत्ति २०००
सर्व स्वत्व स्वाधीन
श्रीकृष्ण जयन्ती
मूल्य १)

श्री वीरविजय प्रीन्टींग प्रेसमां रमणिकलाल. पी कोठारीए छापी . ठे. रतनपोळ : सागरनी खडकी अमदावाद

प्रास्ताविक

आज भारत की राष्ट्रभाषा होने का गौरव हिन्दी भाषा को दिया जा रहा है। और यह गौरव, भाषातत्त्वज्ञों से छिपा नहीं है कि व्रजभाषा के द्वारा ही सर्वांश में नहीं तो अधिकांश में उसे प्राप्त हुआ है। जिस की माधुरी पर मुग्ध हो कर अपनी मातृभाषा का मोह छोडते हुए अन्य भाषा भाषी भी जिस व्रजभाषा में हृदय के उद्‌गार उन सात्विक भावों को अभिव्यक्त करते थे, जिनके द्वारा मानव जीवन की सार्थकता समझी जाती है वह राष्ट्रभाषा हिन्दी की प्राण है, और इस प्राण की प्रतिष्ठा करनेवाले भगवान् जगद्‌गुरु श्री वल्लभाचार्य है।

जिस समय यवनो की उच्छृंखलता से भारतीय संस्कृति के साथ उसकी अटल धर्मभावना लुप्त होती चली जा रही थी, देश की भाषा के सिंहासन पर विदेशी भाषा एक प्रकार से चढ बैठी थी। यह पाप हमारी उन कुचली हुई आत्माओं की विवश दृष्टि मे हो रहा था जिन को अमृतका सन्देश सुना कर जाग्रत, उत्थित और प्रबुद्ध करनें-वाला सं. १५३५ के पूर्व कोई महानुभाव प्रादुर्भूत नहीं हुआ था।

पाप प्रक्षालन के लिये निर्मलनीरा भागीरथी के अतिरिक्त अन्य कौन? बस भाषा के पाप प्रक्षालन के लिये भक्ति की भागीरथी प्रवाहित हुई और श्रीवल्लभाचार्य तथा उनके सुपुत्र गोस्वामि श्रीविट्ठलनाथजी प्रभुचरण ने भारतीय जनता को उसमें मज्जन के लिये उद्‌घोषणा कर दी। अष्टछाप की स्थापना ने धार्मिकता के अनुपान से भारतीयता को मरने से बचाया। आज हम देख रहे है हमारी भाषा,

हमारी संस्कृति, हमारा देश विषाद विपत्ति के निविडान्धकार से छुटकारा पा कर प्रकाश की किरणों के पडने से सचेष्ट हो गया हैं।

द्वन्द्व परिचालन क्रम से एक समय इस के बाद वह आया जब नव शिक्षितोनें व्रजभाषा का विरोध किया, पर वह ववंडर असन्मूल होने से स्वयमेव शान्त हो गया।

साहित्य के पारखियोनें अपने अध्यवसाय, दक्षता और वास्तविक ज्ञान के सहारे व्रजभाषा के प्रति पुनः लोगो की सद्भावना स्थापित की। और उसके अप्रकाशित साहित्य को प्रकाशित कर अक्षय पुण्य का उपार्जन किया।

इसी ववंडर का एक छोटा हिस्सा 'अश्लीलता का आन्दोलन' था, जिसने समस्त प्राचीन साहित्य पर हडताल पोत दी थी, चाहे वह संस्कृत का वैदिक, पौराणिक, वैज्ञानिक साहित्य हो, चाहे भाषा का। पर इसकी मीमांसा लाख चेष्टा करने पर भी न की जा सकी कि वास्तव में अश्लीलता साहित्य में अपनी क्या परिभाषा रखती है?

'घटं भिन्द्यात्, पटं छिन्धात्' की भावनानें इस अश्लीलता आंदोलन की हवा पा कर साम्प्रदायिक साहित्य की लहलही, हरीभरी, सत्य, शिव, और सुन्दर वाटिका पर भी चोट की, और झाडझंखडो के साथ एक ओर से उन लताप्रतानों, सुरभित गुल्मो, फलित द्रुमों को भी साफ कर डालने का 'एलान' कर दिया, जिनसे देश, धर्म, समाज का मस्तिष्क नवीन स्फुरणा की प्राप्ति कर सकता था। अस्तु

आर्य समाज के उपदेशकों की चेतावनी पा कर उठे हुए

सनातन धर्म के उपदेशकों की भांति भाषासाहित्य के प्रेमियों, पक्ष-पातियों, और आस्वादकों को मूर्च्छना जागृत हुई चारों ओर घोर विरोध होने लगा, पर क्रियात्मक नहीं वाचनिक, और वह भी मर्यादा की बांध तोड कर। जो सभ्य, शिक्षित समाज को उचित नहीं जँचा।

विरुद्ध आन्दोलन को दबाने के लिये रचनात्मक कार्य की आवश्यकता है और अनिवार्य यह है कि वास्तविकता को प्रकाश में लाया जाय, जिसे देख कर विरोधी भावना यदि वह हठ मूलक नहीं है तो स्वयमेव कपूर हो जाय।

द्विदलात्मक व्रजभाषा साहित्य के गद्य पद्य पर यहां कहने की आवश्यकता नहीं है। उस पर विद्वानोंने यथेष्ट प्रकाश डाल दिया है। साहित्य की अभिरुचिने उसके पद्यात्मक साहित्य को बहुत कुछ प्रकाशित कर दिया है फिर भी अभी उतना संग्रह उपलब्ध है जिस के लिये समय, धन और कार्यकर्ता की आवश्यकता है। सूरदासजी, नन्ददासजी की अधिकांश अधिकांश रचना को छोड कर शेष अष्ट-छाप के कवियों की कृतियाँ बन्धनों में बंधी हुई उन्मुख और उद्ग्रीव होने की बाट जोह रही है। न जाने कब उनको वह उन्मुक्त वात प्रकाश प्राप्त होगा?

इधर गद्य साहित्य की भी यही दशा है। अभी तक व्रजभाषा का जो साहित्य प्रकाशित हुआ है वह वार्तात्मक था, प्रकाशकों ने उसे विकृत अथवा अविकृत किसी भी रूप मे प्रकाशित करनेका श्रेय प्राप्त किया. पर आवश्यकता थी अन्वेषण की। अद्यावधि मुद्रित

वार्ताओं का अधिकांश प्रकाशन जहां तक मुझे ज्ञात है किसी आदर्श पुस्तक के अभाव में ही हुआ है। जैसी कुछ भी पुस्तक संशोधित, परिष्कृत, परिवर्द्धित अथवा विकृत रूपमें प्राप्त हुई वह मुद्रित करा दी गई, उसके साथ न तो शंकाओंका समाधान करनेवाला, और न उसे प्रमाणित करनेवाला कोई अन्य साहित्य भी प्रकाशित किया गया जिस से उस के स्वरूप की रक्षा की जा सकती।

कुछ समय पूर्व हमारे मित्र भगवदीय द्वारकादासजी परिख के हृदय मे श्रीवल्लभाधीश प्रभु की स्फुरणा से एसी जागृति हुई और उन्होने इस के लिये चेष्टा करने का संकल्प किया। उक्त मित्र ने भारी प्रयत्न, प्रचार एवं तत्परता से प्रस्तुत वार्ता साहित्य को नवीन रूपमे प्रकाशित करने का कार्य प्रारभ किया। गुजराती भाषा भाषी होने पर भी व्रजभाषा के प्रति उनकी यह आस्था देख कर मुझे चकित हो जाना पडा। वास्तव में इस प्रकार की दृढ भावना वैष्णव धर्म का प्रभाव है जिसने सारे गुर्जर प्रान्त मे व्रजभाषा साहित्य का, कीर्तन, वार्ता और पदों के द्वारा एक जालसा बिछा दिया है।

जब नागरी प्रचारिणी सभा, और हिन्दी साहित्य सम्मेलनने देश के विभिन्न भाषा भाषी प्रान्तो में एक हिन्दी भाषा के प्रचार की बात सोची भी नही थी, सोचना तो दूर उनका जन्म भी नहीं हुआ था उस के लगभग ३०० वर्ष पूर्व ही पुष्टिमार्गने समस्त गुर्जर प्रान्त में भाषा साहित्य का विस्तार कर दीया था, यही कारण है कि आज गुजरात मे हिन्दी प्रचार की आवश्यकता प्रतीत नहीं हो रही है वह तो वहाँ इस भक्तिमार्ग के द्वारा बहुत कुछ पनप चुकी है। अस्तु

उपर कहा जा चुका है कि प्राचीन वार्ताओ प्रकाशित करने के लिये हमारे उक्त मित्र ने उत्साह के साथ कार्य शुरू किया। उन्होने न केवल उसका समस्त साहित्य ही एकत्रित किया, प्रेस कापी भी तैयार की और छपाने के लिये आर्थिक साहाय्य एकत्रित कर दिया। उन्होनें एक प्राचीन वार्ता की (भावप्रकाश वारी) पुस्तक अन्वेषण कर प्राप्त की जिसका लेखन सं. १७५२ है। जहां तक ध्यान है इस से प्राचीन वार्ता की (भावप्रकाश वारी) पुस्तक अभी तक प्राप्त नहीं हुई।

चौरासी वैष्णवों की वातो पर श्री हरिरायजीनें भाव प्रकाश नाम से टिप्पण किया है जिसमें उसके रहस्य का उद्‌घाटन किया गया है, इस प्रकार वार्ता के वृत्त की पुष्टि श्रीहरिरायजी जैसे विद्वान महानुभाव के लेख द्वारा होती है।

द्वारकादासजी ने उस के साथ एक काम यह भी किया कि उन सब पर गुजराती भाषा में एक अपना स्पष्टीकरण भी लगाया और चरित्र नायकों की ऐतिहासिक जीवनी पर भी प्रकाश डालने का श्रम किया। कहने का तात्पर्य यह कि वार्ता का वास्तविक रहस्य प्रकाशित करनेका आयोजन किया गया और उस में यथा संभव त्रिविध भाव भरने की चेष्टा की गई है।

इस प्रकार छपाने योग्य तैयार पुस्तक और उसके लिये प्राप्त अर्थ साहाय्य पा कर विद्याविभाग को इस के लिये कुछ भी चेष्टा न करनी पडी, उल्टे उक्त महाशयने हमे एसे ग्रन्थ के प्रकाशन का

सौभाग्य सहज ही सौंप दिया। और यह ग्रन्थ श्रीनाथदेव कृत 'संस्कृत वार्ता मणि माला' नामक ग्रन्थ के आवश्यक भाग के सहित विद्या-विभाग से द्वा० ग्र० माला के त्रयोदश पुष्प के रूप में निकाला जा रहा है। श्रीनाथदेव कृत उक्त वार्ता मणिमाला, अन्यत्र अभी तक तो अप्राप्य है उस की एक ही कापी विद्याविभागान्तर्गत सरस्वती भंडार में उपलब्ध हुई है।

श्रीनाथदेव का परिचय विशेषतया उपलब्ध नहिं होता. उन्होने इस ग्रन्थ के अन्त में इस प्रकार अपना उल्लेख किया है।

"इति श्रीशाचार्य वर्य पद भक्ति मता मया
कृतया वैष्णव कथा मालयात्मा प्रसीदतु ॥२५॥"

"इति श्रीविष्णुस्वामि मतानुवर्ति श्रीवल्लभ पद पद्म परागानुरागि महाशय मठेश विप्र श्रीनाथदेवेश संस्कृतायाँ वैष्णव वार्ता मालायाँ चतुरशीति वार्ता मणिकोत्तरं ससुमेरु पंचविंशतिमो मणिः सम्पूर्णोयं वैष्णव वार्ता माला पूवार्द्धे श्रीमतीत उत्तरार्द्धेपिसा" २०१
३७०७। ३

पुस्तक में लेखन संवत् नहीं दिया है। अन्तिम अंक पद्यांक है जिससे ज्ञात होता है कि इसमें लगभग तीन हजार सातसो सात श्लोक अनुष्टुम् है।

इन्होने अपनेको मठेश शब्दसे सम्बोधित किया है यदि मठेश और मठपति एकही पर्यायवाची शब्द है तो कहना पडेगा कि यह तैलंग ब्राह्मण और मठपति जयगोपाल भट्टके वंशज थे।

जयगोपाल भट्टने अपने रचित तैत्तरीयोपनिषद भाष्यमें अपना रिचय इस प्रकार दिया है:–प्रथम द्वितीय श्लोकोंमे श्रीवल्लभाचार्य और श्रीगुसांईजी को प्रणाम कर आगे श्लोक में वह लिखते है.–

श्रीमद्गोकुलनाथान् श्रीमत्कल्याणराय गुरुचरणान्
नाम निवेदन दातृन् प्रणमामि मुहुर्मुहु: प्रेम्णा ॥३॥
तैलङ्ग यज्य चिन्तामणि तनयो मठपतित्व विख्यात:
जयगोपाल उपनिषद् भाष्यं वितनोतितैत्तरीयायाम् ॥४॥

इससे ज्ञात होता है कि मठपति जयगोपाल भट्ट तैलंग ब्राह्मण चिन्तामणि भट्ट के पुत्र ओर श्रीगोकुलनाथजी (च. पुत्र) तथा श्रीकल्याणरायजी के शिष्य थे, अत: उनके सम सामयिक थे।

इनके मठपति होनेसे श्रीनाथदेव के विषयमें एसा अनुमान होता है कि यह इन्ही के वंशज हों।

अन्य किसी साधनके अभाव में इनके विषय में इतनाही कहकर हमें चुप रहना पडता है×

× શ્રીનાથભટ્ટના સંબંધી મારૂં આ અનુમાન ચોક્કસ થયુ છે કે:– તેઓનો (ચીમનલાલ શાસ્ત્રીના કથનાનુસાર) કાવ્ય રચના કાલ સ. ૧૭૨૪નો છે. અને તેઓએ સસ્કૃત મણીમાલા ૧૭૨૭ લગભગ રચેલી છે. નહિ તો શ્રીહરિરાયજીકૃત 'ભાવપ્રકાશ"ની કંઈક આછી રૂપરેખા તેઓ અવશ્ય તેમની મણીમાલામાં લેત શ્રીહરિરાયજીનો ભાવપ્રકાશ સં ૧૭૨૯ પછી અને સ ૧૭૫૦ પહેલા લખાયેલો છે. કારણ કે આ ભાવપ્રકાશનુ નામ સ ૧૭૨૯મા રચાયલા "સંપ્રદાયક કલ્પદ્રુમ"માં સ્પષ્ટતયા પ્રાપ્ત થતુ નથી. આ શ્રીનાથભટ્ટે "દુષણોદ્ધાર" "જલભેદ વિવૃત્તી" આદિ અનેક ગ્રન્થોની રચના કરેલી છે. તે તેમના ગ્રન્થોની ઈતિશ્રી થી સમજાય છે. શ્રીનાથભટ્ટે વાર્તામા પોતાની સસ્કૃત

कार्य की अधिकता के भयसे और उपयोगिता की दृष्टि से सम्प्रति वार्ता रहस्य का यह प्रथम भाग ही प्रकाशित किया जा रहा है। यदि इसके द्वारा प्रोत्साहन प्राप्त होगा तो अगले भाग भी अनुकूल संयोग पा कर प्रकाशित किये जावेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन के लिये जिन धनीमानी महानुभावों ने अर्थ साहाय्य दे कर इस पुण्यकार्य में हाथ बटाया है उनके नाम सम्पादक के विवरण में दिये जा रहे हैं। जिन के अर्थ साहाय्य से कुछ कापियाँ वैष्णवो में विनामूल्य वितीर्ण की जावेगी इसके साथ हम इस बात को यहां प्रकाशित कर देना अपना धर्म समझते है कि **प्रस्तुत पुस्तक की विक्री से जो लाभ होगा वह इस के अग्रिम भागो और साम्प्रदायिक अप्रसिद्ध ग्रन्थो के प्रकाशन में ही लगाया जायगा।**

इस बात के प्रकट करने में मुझे हिचकिचाहट पैदा हो रही है कि हम जैसा चाहिये हिन्दी वार्ता को शुद्ध रूप में प्रकाशित न

વાણીને સાહિત્યિક અલકારોથી બહુજ દુર રાખી એક સાદી સરળ અને કથાનક કરી છે એ, તેમનુ વિશેષ પાડિત્ય સૂચન કરે છે જેને વિષય તેવી જ ભાષા હોય તો તે દીપી ઉઠે, તદનુસાર વાર્તાની ભાષા બહુ જ સરળ રાખી છે

શાસ્ત્રીજીના કથનાનુસાર તેઓ અવશ્ય જયગોપાલ મઠપતિના વંશજ અથવા કુટુમ્બી હોવા જોઇએ કારણકે જયગોપાલનો સમય શ્રીગોકુલનાથજી અને શ્રીકલ્યાણરાયજીના સમકાલીન ઉપરોક્ત શ્લોકથી સિદ્ધ થાય છે અને શ્રીનાથદેવનો જન્મ સમય લગભગ ૧૬૮૦નો પ્રાપ્ત થાય છે એટલે અટકના અને સમયના સબધથી એમ અનુમાન સિદ્ધ થાય છે કે હો ન હો તેઓ મઠપતિના વશજ જ હોવા જોઈએ

"સંપાદક"

कर सके। इसका कारण कांकरोली के इतिहास के लिखने और छपा-
नेकी मेरी व्यस्तता ही है। उक्त ग्रन्थ मे जुटे रहने के कारण सच
कहा जाय तो मुझे सावधानी से प्रेस कापी देखनेका पुरा अवसर भी
नहीं मिला, प्रूफ सशोधनकी वात तो दूर।

इधर प्रस्तुत, और उक्त ग्रन्थ का शीघ्र प्रकाशित करना
आवश्यक था अत मैंने अपना काम अपने जिम्मे रखकर प्रस्तुत ग्रन्थका
भार श्रीद्वारकादासजीको सौपा और उसका उनको सम्पादक वना दिया।
अतः उसकी उत्तमता का श्रेय उनको और त्रुटियो, न्यूनताओ,
असावधानियों का दोष मुझ पर है। फिर भी इतना कहना पडेगा कि
उक्त महानुभाव इस के लिये सतत सचेष्ट रहे हैं कि मेरे उपर किसी
प्रकार का दोष न आने पाये। उनकी इस सहृदयता, कार्यतपरता एवं
सौशील्य पर एक डाह पैदा होती है।

सव से वडी असावधानी, और गुजराती कम्पोजीटरो के कारण
पुस्तक मे त्रुटियॉ रह गई होगी फिर भी हम कहेंगे कि हिन्दी के
कम्पोज करनेवालों ने अपनी दक्षता दिखलाई है जिन्हें एसा अवसर
कदाचित् ही उपलब्ध होता है। पाठक उन त्रुटियों के लिये क्षमा करे
और उन्हें यथास्थान सुधार ले। प्रस्तुत पुस्तक के मुद्रक महोदय के
भी हम आभारी है कि उन्होने यह काम शीघ्रता और सुन्दरता के
साथ पूरा किया।

सम्पादक प्रति तो हमे धन्यवाद देनेकी आवश्यकता ही प्रतीत
नहीं होती, क्योकि उन्होंने जिस निष्काम कर्मयोग के भक्तिके उंचे
सिद्धान्त से काम किया है वह आदरणीय और अनुकरणीय है। हमारी

दृढ धारणा है कि यदि उक्त मित्र महोदय के हृदयमें उद्विग्नता उत्पन्न करने का अवसर न दिया जाय तो वे साम्प्रदायिक साहित्य के प्रकाशन में वहुत कुछ कार्य कर सकने है, चाहिये केवल गुणग्राही।

विद्याविभाग के अध्यक्ष गो. श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज (शु. सं तृ. पीठाधीश्वर) और उपाध्यक्ष उनके अनुज उत्साहशील गो श्री विट्ठलनाथजी महाराज एसे ही महानुभाव है. जिनके आश्रय में रहकर हमारे मित्र महोदयनें साम्प्रदायिक गभीर ज्ञान प्राप्त करनेमें बहुत कुछ अग्रेसरता दिखलाई है। उनके विवरण से उनके परिज्ञान, खोज और गंभीरता का पता लगेगा हमे उसे यहाँ प्रकट करनेकी आवश्यकता नहीं है।

उनके साथ इस कार्य में अथवा यों कहिये मेरे कार्य में अभिन्नभावसे परिश्रम करनेवाले मित्रद्वय पं. पुरुषोत्तम शास्त्रीजी (शेहरा निवासी सम्प्रति वीसनगर) तथा सरस्वती भंडार विद्याविभाग के व्यवस्थापक प लक्ष्मीनारायग शास्त्रीजी का उपकार विस्मृत नहीं किया जा सकता। साम्प्रदायिक प्रसिद्ध पत्रकार पं. वसन्तराम शास्त्रीजी (अहमदावाद) का सौजन्य भी भूला नहीं जा सकता जिन्होंने सम्पादक के [illegible] पुस्तक प्रकाशनमें प्रेस आदिकी सभी प्रकारकी सुविधाए सरल कर

भगवान करुणा वरुणालय श्री हरि प्रभु श्री द्वारक चरणकमल स्मरण करते हुए हम अपने वक्तव्य से विराम जिनके अनुग्रह बलसे हमें आगे भी इस प्रकारके पुण्य कार्यो जन का सौभाग्य अधिगत होगा। ॐ शान्ति॰ ३ ॥

स. १९९६
प्र. श्रावण शु १२/९६
ता. २८-७-३९

विधेय-
प्रकाशक—पो. कण्ठम
सचालक विद्या
काकरोली.

प्राचीन वार्ता - साहित्य



गो० श्री व्रज भूषणात्मज

चि० श्री गिरिधर गोपाल

अर्पण-पत्रिका.

श्रीवल्लभ विठलेश गुरु कृष्णरूप श्रीनाथ।
द्वारकेश अठ सखनि नमि पर्यो प्रेम के पाथ॥ १

गोपीजन अनुभव प्रथम कियो कृष्ण के साथ।
पाछे दमला आदि जिन धर्यो चरन में माथ॥ २

अपने जन हित कारने वल्लभ भूतल आय।
सेवा सुख सरसाय पुनि ता हित कुल प्रगटाय॥ ३

मेरे तो गिरिवरधरन गोपाल हि इक नाम।
लगन लगाई छिप गए चितवन आठो जाम॥ ४

श्रीगिरिधर गोपालजू राखो चरनन पास।
दीन पुकारत करि दया जानि आपुनो दास॥ ५

लाल ही लाल पुकारके प्रान भये बेहाल।
अब तो प्यारे दौरिके आन दिखावो चाल॥ ६

मंद हसन चितवन तनक आज्ञा देत हुँकार।
नेन भ्रकुटि कटि किंकनी मन्मथ मोहन धार॥ ७

हेमते प्रथमे मासे प्रथम दिना के अंत।
वरद देन सुकुमारिका छोडि छिपे कित कंत॥ ८

नाथ रावरी हित कथा कहँ लगि बरनो अंत।
छिनु छिनु मे पोषत रहे ज्यो मृगशीर्ष हिमंत॥ ९

श्रीयमुना गिरिराजजू ब्रजमण्डल सब ठोर।
अपनो जन मो जानिके रखि लेहो निज ओर॥ १०

लालन आओ हरखके सेवक अपुनो जान।
हृदय करो सीतल प्रभु बिसरो नहिं छनमान॥ ११

मेंहु कछुक चिंतन कीयो अपने मन के हेत।
गिरिधरजू अपनाइयो जानि प्रेम संकेत॥ १२

अवधीके दिन जात हे जो नहिं पूरो आन।
प्रान पखेरु उडनको आतुर आवन पास॥ १३

"तिहारो"

મૂલ્ય સંબંધી કંઈક

આ પુસ્તક પ્રકાશન કાર્યમાં આજ સુધી લગભગ ૬૨૫) જેટલી રકમ વૈ સદ્ગ્રહસ્થો તરફની નિરપેક્ષ ભાવથી પ્રાપ્ત થઈ છે તદર્થ અમોએ **પ્રત ૧૦૦૦ વિના મૂલ્યે** નિમ્નોકત સજ્જનોને આપવાનો નિશ્ચય કર્યો છે:—

૧ વસત પચમી પહેલાં જેઓનાં નામ નોધાઈ ગયાં છે તેમને,

૨ કાકરોલી વિદ્યાવિભાગના ઉચા દરજાની પરીક્ષામાં ઉત્તીર્ણ થનાર બાલકોને,

૩ ભગવદ્ મડલીઓ, પાઠશાળાઓ, અને નિષ્કંચન તેમજ વિરકત ભગવદીયો ને,

૪ ગોસ્વામી બાલકો અને ખાસ સહાયક વેદ્વાનોને,

બાકીની એક હજાર પ્રત રૂ ૧) થી આપવામાં આવશે (પોસ્ટેજ અલગ) તેનાથી જે દ્રવ્ય પ્રાપ્તિ થશે તે દ્વારા બાકીના વાર્તાના ભાગો પ્રકાશિત થશે

"શુદ્ધાદ્વૈત" ના ગ્રાહકોને પોણી કિંમતે આ ભાગ આપવામાં આવશે

આ ભાગ અને બીજા ભાગો વિના મૂલ્યથી કોને આપવા અથવા કોને ન આપવા તે સમ્પાદકની ઇચ્છા ઉપર જ છે

વ્યવસ્થાપક, "વાર્તા-સાહિત્ય"

विषय सूची

सं.	वार्ता	पृष्ठ
१	दामोदरदास हरसानी की वार्ता	२८
२	कृष्णदास मेघन की वार्ता	७१
३	दामोदरदास संभरवाले की वार्ता	९३
(३)	लौंडी की वार्ता	१२९
४	पद्मनाभदास की वार्ता	१३६
५	तुलसां की वार्ता	१७१
६	पारवती की वार्ता	१८५
७	रघुनाथदास की वार्ता	१८९
८	रजो की वार्ता	१९६

संस्कृत वार्ता मणिमाला

सं.	वार्ता	पृष्ठ
१	दामोदरदास हरसानी की वार्ता	१
२	कृष्णदास मेघन की वार्ता	९
३	दामोदरदास संभरवाले की वार्ता	१८
४	पद्मनाभदास की वार्ता	२९
५	तुलसां की वार्ता	४१
६	पारवती की वार्ता	४३
७	रघुनाथदास की वार्ता	४५
८	रजो की वार्ता	४६

॥ શ્રીહરિ ॥

આજ સુધીમાં સંપ્રદાયમાં પ્રકટ નહિં થયેલું પુસ્તક

કયું ?

શ્રી વિઠ્ઠલેશ્વર ચરિતામૃત અને અષ્ટછાપ

(સચિત્ર)

સંપ્રદાયમાં પહેલી જ વાર પ્રકટ થાય છે

તેમાં શું આવશે ?

શ્રીગુસાંઈજીનું ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએથી આલેખેલુ યાવત્પ્રાપ્ય ચરિત્ર, ભાવાત્મક સ્વરૂપ અને પ્રતિદિનના ઐતિહાસિક તેમજ ભાવાત્મક અને સિદ્ધાંત પ્રતિપાદક પ્રસંગો, ઉપરાંત વંશવૃક્ષ અને સ્વવંશના શ્રીહરિરાયજી આદિ મહાનુભાવોના **ઐતિહાસિક ચિત્રસહિત** ચરિત્રોનો આમાં સંગ્રહ કરેલો છે

બીજું શું ?

અષ્ટછાપની સ્થાપનાનું ઐતિહાસિક વર્ણન અને અષ્ટછાપના ઇતિહાસની દૃષ્ટિથી આલેખેલા ચરિત્રો ઉપરાંત સાંપ્રદાયિક અન્ય કવિગણોના જીવન ચરિત્રો તેમજ સેંકડો ઐતિહાસિક અને ભાવાત્મક પદો આપવામાં આવ્યા છે

ન્યોછાવર શી ?

અગાઉથી ગ્રાહક થનારને ફક્ત રૂા ૨॥ પાછળથી રૂા ૪) લગભગ આવશે (પોસ્ટેજ અલગ)

ક્યારે પ્રકટ થશે ?

શ્રીગુસાંઈજીના જન્મોત્સવના દિવસેજ ફક્ત કોપી એક હજારજ છપાશે માટે પહેલા ૧) મોકલી નામ નોંધાવો નહિંતો રહી જશો **અત્યારથીજ વૈષ્ણવ સૃષ્ટિમાં આ પુસ્તકે ખળભળાટ પેદા કરી દીધો છે.** આવું સાહિત્ય ઐતિહાસિક રૂપે આજ સુધીમાં પ્રાપ્ત નથી ૨૫૨ વૈષ્ણવોના ઐતિહાસિક પ્રસંગોનો સંપૂર્ણ સંગ્રહ આમાં આવી જશે વિશેષમાં વિરોધીઓના મુખમર્દન કરતો અપ્રકાશિત સમગ્ર ઇતિહાસનો સમાવેશ કર્યો છે

લખો અથવા મળો—**દ્વારકાદાસ "સમ્પાદક વાર્તા-સાહિત્ય"**

વિદ્યા વિભાગ કાંકરોલી

વાર્તા સંબંધી સાદી સમજ

અમોએ આ વાર્તાઓ (૮૪ વૈષ્ણવોની) સવત ૧૬૯૭ ના ચૈત્ર સુદિ ૫ મે શ્રીગોકુલ મધ્યે લખી ચુકાયલા પુસ્તકના આધારે છપાવી છે. આનાથી વિશેષ પ્રાચીન ગ્રન્થ હજુ સુધી અમને મળ્યો નથી આ વાર્તાના ગ્રન્થ સાથે અમોએ અન્ય પ્રાચીન કેટલીક વાર્તાની પ્રતો પણ મેળવી છે. જ્યાં જ્યાં પાઠાતર પ્રાપ્ત થયુ છે ત્યા ત્યા ફૂટનોટ આપી છે

આ વાર્તાઓ શ્રીગોકુલનાથજીએ મૂળ વ્રજભાષામાંજ રચેલી છે અને તે જેમની તેમ વ્રજભાષામાજ અમે અહીં આપી છે. વાર્તાના ગાભીર્યાદિથી મુગ્ધ થઇને શ્રીયુત મહેશ મહાનુભાવ શ્રીનાથભટ્ટે (दूषणोद्धार આદિના કર્તા) વિદ્વાનોના મનોરંજનાર્થ તે વાર્તાઓને સંસ્કૃતમા શ્લોકબદ્ધ કરી છે.

આ વાર્તાઓનો સસ્કૃત અનુવાદ તે તેની મહત્તાના દર્પણરૂપ છે ફક્ત ચોર્યાશી વાર્તાના સસ્કૃત અનુવાદરૂપે શ્રીનાથભટ્ટે લગભગ ૩૭૦૦ થી પણ વધુ શ્લોકો ગોઠવ્યા છે અને તે "મણિકા" રૂપે કાકરોલી "વિદ્યા-વિભાગ" મા વિદ્યમાન છે આમા કેટલાક પ્રસંગોમા વિશેષ જાણવાનુ મળતુ હોવાથીજ તે ક્રમશ અમે દરેક વાર્તા સાથે આપેલા છે.

આ વાર્તાઓમા કેટલુ બધુ સામ્પ્રદાયિક અગાધ રહસ્ય સમાયલુ છે તે જણાવવાને અર્થે શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુએ દરેક વાર્તાના દરેક પ્રસંગ ઉપર મધ્યમભાષાથી* ભાવનો પ્રકાશ કર્યો છે અને તે પણ વ્રજભાષામાં ગદ્યરૂપેજ

આ બન્ને મહાનુભાવ વિદ્વાનોના વાર્તા ઉપરના અથાગ પ્રેમ અને પરિશ્રમથી સાધારણ બુદ્ધિનો મનુષ્ય પણ સમજી શકે છે કે સામ્પ્રદાયિક તમામ ગ્રન્થોમા વાર્તાઓ કેટલી ઉપયોગી હોવી જોઈએ ‘

આ ઉપર્યુક્ત કથિત સાહિત્ય ઉપરાંત અમોએ સામ્પ્રદાયિક આચાર્યો અને વિદ્વાનોના સહકારથી અન્ય પણ કેટલોક મહત્ત્વપૂર્ણ

---

* ન અત્યત સ્પષ્ટ તેમજ ન અત્યત ગૂઢ એવી ભાષામા રહસ્યનુ ઉદ્ઘાટન કર્યુ છે. મહાકવિ નંદદાસજીના શબ્દોમા કહીએ તો –

"नाहिन उघरे गूढ न एते सरद्द देश वधू कुच जैसे ।"

સગ્રહ આ પુસ્તકમાં કરેલો છે. જેવો કે.—પ્રાચીન ઐતિહાસિક ગ્રંથોનું અત્યત સશોધન કરીને આ વાર્તાઓમાં રહેલો અને તેને અપેક્ષિત અન્ય ઇતિહાસ પૃથક્ રૂપે આપેલો છે તેમજ શ્રીહરિરાયજીના સસ્કૃત ગ્રન્થોને અહીં આપેલા શ્રીહરિરાયજીના ભાવ પ્રકાશ સાથે જ્યાં જ્યાં સશય થાય ત્યા ત્યાં સરખાવી તેની પ્રામાણિકતા સિદ્ધ કરી છે. જેથી લહીયાઓ પ્રત્યેનો અન્યાયપૂર્ણ અસમ્બદ્ધ પ્રલાપ ઘણા અંશમા દૂર થાય છે અને વાર્તાઓમા ઉત્પન્ન થતા સદેહોના નિવારણાર્થ શ્રીઆચાર્યજીના, શ્રીગુસાંઇજીના, તેમજ અન્ય ગ્રન્થોના પ્રમાણો આપેલાં છે. વળી અમોએ આ વાર્તાઓનુ ઇતિહાસ, તત્ત્વ અને રસ એમ ત્રણે દૃષ્ટિથી યથાધિકાર આધુનિક અલ્પબુદ્ધિ વાચકોને પણ ઉપયોગી થઇ પડે તે હેતુને ખાસ લક્ષ્યમા રાખી પરમ્પરાગત પ્રાપ્ત સકલન કર્યું છે જેથી દુરાગ્રહથી રહિત અન્ય કોઇ પણ વ્યક્તિ વાર્તા ઉપર આક્ષેપ કરવાની ધૃષ્ટતા નહિજ કરે

"વાર્તા" અને "ભાવપ્રકાશ" બન્ને ક્રમશ શ્રીગોકુલનાથજી તથા શ્રીહરિરાયજી કૃત છે તે નિર્વિવાદ છે તેના પ્રમાણરૂપે તેની અતિ વિખ્યાતિજ સંતોષજનક છે તો પણ અન્ય પ્રમાણો અહિં આપીએ છીએ —

એક તો એ પ્રમાણ કે ઉપર્યુક્ત બન્ને ગ્રન્થોની સેંકડો લિખિત પ્રતિઓ અતિ પ્રાચીન પ્રાપ્ત થાય છે અને તેમા "શ્રીગોકુલનાથજી-રચિત" "શ્રીહરિરાયજીકૃત" એવા લેખો પ્રાપ્ત થાય છે

અમે અત્રે આપેલા શ્રીહરિરાયજીના ભાવપ્રકાશ નાં પ્રાચીન લિખિત પુસ્તકો ઘણી જગ્યાએ અમારા જોવામા આવ્યા છે જેવાં કે પાટણ, અમદાવાદ, ડભોઇ, ગોકુળ, નાથદ્વારા, કાકરોલી, જતીપુરા ઇત્યાદિ સ્થળોમા

અમારી પાસે જે પ્રત છે, તે સ ૧૭૫૨ મા લખાયલી છે અને તે શ્રીહરિરાયજીના સમયનીજ છે. કારણ કે શ્રીહરિરાયજીની ભૂતલ સ્થિતિ સ ૧૭૭૨ સુધીની પ્રસિદ્ધ છે અત આ પ્રત અત્યત પ્રામાણિક ગણી શકાય આ ગ્રન્થ અમને પરમ ભ મહાનુભાવ

ગોવિંદદાસ (શ્રીનાથદ્વારાવાળા) બાવા પાસેનો ૫ ભ જદુનાથદાસ દ્વારા પ્રાપ્ત થયેલો છે. તેમજ આ ગ્રન્થને નિત્યલીલાસ્થ તિલકાયિત શ્રીગોવર્ધનલાલજીએ પણ અવલોકીને પુષ્ટ કર્યો છે. જેથી આ ગ્રન્થની પ્રમાણિકતા વિષે વધુ કહેવુ નિરર્થક છે આવીજ એક પ્રતિ સ. ૧૭૫૨ ની લખાયલી શ્રીગોકુલના પરમ ભગવદીય શ્રીયુત મુખીયાજી ગૌરીલાલજી પાસે પણ અમે જોઈ છે. તેમા એક વિશેષતા એ છે કે દરેક પ્રસગોનાં સુંદર ચિત્રોનો પણ તે ગ્રન્થમાં સમાવેશ કરેલો છે. પ્રત દર્શનીય છે.

આ "ભાવપ્રકાશ"ની લેખનશૈલી શ્રીહરિરાયજીની સસ્કૃત ગ્રથોની રચના શૈલીને મળતી જ આવે છે શ્રીહરિરાયજી ગહન વિષયો સબધી ગ્રન્થો રચવામા પ્રથમ પૂર્વપક્ષ કરીને પછી સ્વય તેનો નિરાસ કરે છે. (જુઓ શ્રીહરિ કૃત નિષ્કામ લીલા આદિ ગ્રન્થો) તેમ અહીં પણ ઘણી જગાએ પૂર્વપક્ષ (સદેહ) સ્વય કરી પછી તેનુ સમાધાન પણુ આપ સ્વત· જ કરે છે.

આ શૈલી પણ આપના "ભાવપ્રકાશ" માટે એક સબલ પ્રમાણ છે અને ત્રીજુ પ્રમાણ ઉપરોક્ત વલ્લભજી મહારાજનુ ઘોળ છે. ચોથુ પ્રમાણ ભાવપ્રકાશ સાથે શ્રીહરિના સંસ્કૃત ગ્રથોની એક-વાક્યતા છે. (જુઓ દામોદરદાસની વાર્તા પાન ૫૨)

"વાર્તા" સંબધી અન્ય પ્રમાણ "સપ્રદાયકલ્પદ્રુમ" જે સ. ૧૭૨૯મા શ્રીહરિરાયજીના શિષ્ય વિઠ્ઠલનાથ ભટે રચેલો છે, તેમા આ પ્રમાણે છે —

"वल्लभविठ्ठल वारता, प्रगट कीन नृपमान" ॥ ३० ॥ (पान १४१).

સૃષ્ટિના પ્રારભથી જ દૈવી અને આસુરી એમ બે પ્રકારના જીવોની ઉત્પત્તિ જોવામાં આવે છે. એટલે ઉત્તમોત્તમ દૈવી સપત્તિવાળી વસ્તુઓને આસુરી દુરાગ્રહી પુરૂષો હીન બતાવે તો તે ઉપેક્ષણીય જ છે. પરતુ દેખાતા દૈવી પુરૂષોજ આસુરાવેશી થઇને પોતાની દૈવી સંપ-ત્તિને અસભ્ય ભાષાથી સર્વ સમક્ષ તિરસ્કાર કરે ત્યારે તો તે કોઈ પણ સહૃદય પુરૂષને અસહ્ય લાગ્યા વિના રહે નહિ જ.

એવાજ અનેક કારણોને લઈને અમોએ સર્વ મહાનુભાવોના સહકારથી આ કાર્ય ઉઠાવ્યુ છે કે સાપ્રદાયિક વ્રજભાષાનુ ગદ્યપદ્યાત્મક સાહિત્ય પ્રાચીન કાળની શૈલીથી લખાયેલું હોવા છતા તે આજ પણ ધાર્મિક અને ઐતિહાસિક ક્ષેત્રોમા કેટલુ બધુ ઉપયોગી તેમજ પ્રમાણિક છે તે અન્ય તટસ્થ વિદ્વાનોના અભિપ્રાય સાથે જનસમૂહ સમક્ષ સુરક્ષિત રૂપથી મુકવુ

આ કાર્યમા દ્રવ્યની અત્યત અપેક્ષા રહેલી છે. માટે સપ્રદાય અને શ્રીઆચાર્યચરણમા મમતા રાખવાવાળા સદ્‌ગૃહસ્થો, શ્રીમદ્-આચાર્યચરણના જીવનચરિત્રરૂપ આ ગદ્યપદ્યાત્મક ભાષાસાહિત્યની નિષ્કલંકતા પ્રકટ કરી, બાહ્યાભ્યતર પ્રહારકોને સયુક્ત સામનો કરવા કટિબદ્ધ થાવ, અને યથાશક્તિ તનુજા વિત્તજા સેવા ઉઠાવો એ નમ્ર પ્રાર્થના કરી હુ અહિં વિરમુ છુ

વાર્તામા ત્રણ જન્મ કહ્યા છે તે આ પ્રમાણે સમજવા—

શરણે આવ્યા પહેલાની જે સ્થિતિ તે એક જન્મ દૃષ્ટાતરૂપે ગાયત્રી પ્રાપ્ત કર્યા વિનાનો સસ્કારરહિત

ત્રણ જન્મની સમજ એક બ્રાહ્મણનો બાલક આ જન્મ ભૌતિક જન્મ તરીકે ઓળખાય છે—

શરણે આવ્યા પછીની જે સ્થિતિ તે બીજો જન્મ અને તે આધ્યાત્મિક જન્મ તરીકે ઓળખાય છે કારણ કે તેમા ભાવનાનુ સ્વરૂપ (વૈષ્ણવત્વ) બિરાજે છે દૃષ્ટાતરૂપે ગાયત્રીમત્રને પ્રાપ્ત થયેલો બ્રાહ્મણ, તેમા બ્રહ્મત્વપણાની સ્થિતિ રહે છે ત્રીજો જન્મ મૂલભૂત જે આત્મારૂપ છે અને તેજ ભાવરૂપ હોવાથી તે આધિદૈવિકરૂપ છે આ પ્રકારે ત્રણ સ્વરૂપ શ્રીહરિરાયજીએ કહેલા છે તે સમજવા પુરતુજ અમે વાર્તામા કેટલીક જગે તે સ્પષ્ટરૂપે આપ્યુ છે

આ આધિદૈવિક ભાવરૂપ આત્માની સત્તાને અનુસારજ આધ્યાત્મિક અને આધિભૌતિકમા ક્રિયાઓ આદિની સ્થિતિ રહેલી છે.

(વિશેષ જુઓ વાર્તા–રહસ્ય પાન ૭)

"સમ્પાદક"

॥ શ્રીહરિ ॥

—:ઉપકાર-સ્મરણ:—

કૃપાપીયૂષપારાવાર શ્રીમદ્ ગોસ્વામી શ્રી ૧૦૮ તૃતીય પીઠાધીશ્વર **શ્રીવ્રજભૂષણલાલજી મહારાજ** અને આપશ્રીના અનુજ ગોસ્વામી શ્રી ૧૦૮ **શ્રીવિઠ્ઠલનાથજી મહારાજશ્રીનો** ઉપકાર, આ વાર્તા-સાહિત્યના નૂતન ઐતિહાસિક પ્રકાશન કાર્યથી, સમગ્ર વૈષ્ણવ સૃષ્ટિમાં અને ઇતિહાસજ્ઞોમાં સદાય અવિસ્મરણીય રૂપે રહેશે જ

આપશ્રીની હાર્દિક કૃપા અને સર્વ પ્રકારની સહાયતાથી જ આ કાર્ય સફલ થયુ છે અને આગલ ઉપર પણ થશે જ, એ કહ્યા વિના રહી શકાતુ નથી.

સમગ્ર સાહિત્ય ક્ષેત્રમા, આપશ્રીની જ કૃપાથી સિદ્ધ થયેલ આ વાર્તાસાહિત્યના નૂતન ઐતિહાસિક પ્રકાશન કાર્યદ્વારા ઇતિહાસજ્ઞો, સામ્પ્રદાયિક વિદ્વાનો અને ભાવુકોમા પણ પુષ્ટિ સંપ્રદાયના ભાષા-સાહિત્ય પ્રત્યે પુન શ્રદ્ધા નવપલ્લવિત થઈ છે, તે, આ પુસ્તકોમા આવેલા અભિપ્રાયોથી સર્વ કોઈ જાણી શકે છે.

આપ શ્રીમાન શ્રીસુબોધિનીજી આદિ સસ્કૃત સાહિત્યના પ્રખર જ્ઞાતા હોવા ઉપરાત સામ્પ્રદાયિક ભાષાસાહિત્ય તરફ પણ આપશ્રીને પૂર્ણ પ્રેમ છે. આપશ્રીનુ તો એટલે સુધી મન્તવ્ય છે કે આજકાલ ભાષાસાહિત્યથી જ સંપ્રદાયનો પ્રચાર સારી રીતે થઈ શકે છે, કેવલ સંસ્કૃત સાહિત્યથી નહિ જ

આપશ્રીને કીર્તન ઉપર તો એટલી બધી પ્રીતિ છે કે આપશ્રી સ્વય પ્રાચીન પુસ્તકોના આધારે કીર્તનોનુ યથાર્થ સંશોધન કરે છે. (જે હવે પછી પુસ્તકાકાર રૂપે બહાર પાડવામાં આવશે) આપશ્રી અન્યની માફક પ્રસિદ્ધિના ઉપાસક નથી. આપશ્રી પ્રાચીન સેવા-

પ્રણાલી અને સંપ્રદાયની પ્રાચીન પરિપાટીના સંરક્ષક છે તેમજ આપશ્રીની બુદ્ધિ એટલી તીવ્ર છે કે દ્વિવિધ સાહિત્યમા રહેલા વિરોધાભાસનો, સંપ્રદાયના સિદ્ધાન્તો અને વાર્તાના દૃષ્ટાતો દ્વારા સહેજે પરિહાર કરી બન્ને પ્રકારના સાહિત્યના આશયને શુદ્ધ રૂપમા સમજાવે છે આપશ્રી ઇતિહાસના પ્રખર જ્ઞાતા હોવાથી અનેક યુક્તિઓ દ્વારા વાર્તા,કીર્તનો, પરપરા પ્રાપ્ત પ્રણાલી, અને રીતભાત આદિની એકવાક્યતા કરી સંપ્રદાયના ભાષાસાહિત્યની ઐતિહાસિકતા બહુજ સુદર પ્રકારે સિદ્ધ કરી આપે છે.

આપશ્રી તો એવુ આશ્ચર્ય પ્રકટ કરે છે કે વાર્તાઓમા સ્પષ્ટ રૂપે રહેલો ઇતિહાસ અને સિદ્ધાન્ત પણ વિરોધકર્તાઓને કેમ દેખાતો નથી? વાર્તામા એવા અનેક પ્રસગોનો ઉલ્લેખ છે કે જેનુ ઐતિહાસિક અસ્તિત્વ આજ પણ વિદ્યમાન છે, દૃષ્ટાત રૂપે'—બેઠકો, કીર્તનો, વસ્તુઓ, વશજો, પ્રચલિત ગાથાઓ, રીતભાત, હક્ક, જાગીરો, અને 'પચમહાલ' આદિ નામોની ઓળખાણી વાર્તાની સત્યતામા આટલા બધા સર્વમાન્ય પુરાવાઓનુ આજ પણ અસ્તિત્વ હોવા છતા વાર્તા ઉપર આક્ષેપ કરનારાઓને વાર્તામા અશ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થાય છે તે ખરેખર આશ્ચ-ર્યજનક છે તેથી તેઓની બુદ્ધિ કેવા પ્રકારની હશે? તે સમજાતુ નથીજ

આપશ્રીએ આ કાર્યમા દ્રવ્યાદિ અનેક પ્રકારની ગુપ્ત સહાયતાથી જે આગલ પડતો ભાગ લઈ ભાષાસાહિત્યને ઉત્તેજન આપ્યુ છે તે માટે હૂં સમગ્ર વૈષ્ણવ સૃષ્ટિ તરફથી આપનો અત કરણ પૂર્વક ઉપકાર માનુ છુ

આપશ્રી તરફથી અનેક વખતે આ કાર્યના અંગે કાકરોલીથી અમદાવાદ આદિ સ્થળોએ જવામા રેલ્વેભાડા આદિનુ ખર્ચ પોતાના પ્રાઇવેટ ખર્ચમાથી આપી આ કાર્યમા પોતાનો અદ્વિતીય ઉત્સાહ છે, એમ સિદ્ધ કરી બતાવ્યુ છે તે માટે સર્વ ભાષાસાહિત્યના પ્રેમીયો આપશ્રીના પૂર્ણ રૂણી છે. અસ્તુ

કાંકરોલી વિદ્યાવિભાગાધ્યક્ષ અને ઉપાધ્યક્ષનો ઉપકાર સ્મરણ કર્યા બાદ આ કાર્યને નવચેતન અર્પનાર, ભાષાસાહિત્યના પૂર્ણપ્રેમી

અને પક્ષપાતી મારા પરમમિત્ર કાંકરોલી વિદ્યાવિભાગના સંચાલક શ્રીયુત **કણ્ઠમણિજીનો** ઉપકાર તો અગ્રસ્થાને જ રહેશે.

જો સાચુ કહીએ તો મારા આ વાર્તા-સાહિત્ય પ્રકાશનના વિચાર ને સમ્પૂર્ણ ટેકો આપી તેઓએ જ આ કાર્યને નવચેતન આપ્યુ છે તેમા જરાય શકા નથી વિદ્યાવિભાગાન્તર્ગત સરસ્વતી ભંડારમા સગ્રહિત હસ્તલિખિત ૬૦૦૦ ઉપરાત પ્રાચીન પુસ્તકોના અવલોકનનો સુઅવસર તેઓએ શ્રીમાનોની આજ્ઞાથી મને આપ્યો તેમજ વિદ્યાવિભાગના નામથી દ્રવ્ય પ્રાપ્તિ અર્થે રસીદબુક પણ આપી આથી આ કાર્ય ત્વરીત અને સુગમ થયુ તદુપરાત તેઓએ સશોધન આદિ અનેક પ્રકારથી મને આ કાર્યમા નિઃસ્વાર્થ રૂપે મદદ કરી. જો કે એમનુ સ્વાસ્થ્ય બીલકુલ અસ્વસ્થ હતુ તેમજ વિદ્યાવિભાગના કાર્યનો બોજો પણ તેમના માથે અત્યત હતો છતા પોતાના અમૂલ્ય સમયનો ભોગ આપી આ કામમા જે પૂર્ણ ઉત્સાહ દેખાડ્યો છે તેને માટે હુ તેમનો ઉપકાર કદી ભુલી શકુ તેમ નથી અસ્તુ

પુરોહિત પડિતપ્રવર શ્રીયુત શાસ્ત્રીજી **લક્ષ્મીનારાયણજી** (સર-સ્વતી ભડારના વ્યવસ્થાપક)નો ઉપકાર, હુ તેમજ સંસ્કૃત સાહિત્યના શો-ખીનો કદી ભૂલશે નહિજ. તેઓએ શ્રીનાથદેવ કૃત સસ્કૃત વાર્તામાલાને શુદ્ધ કરવામા બહુજ પરિશ્રમ લીધો છે પ્રસ્તુત (ઉપસ્થિત) સસ્કૃત વાર્તામાલાની એકજ પ્રતિ અમને પ્રાપ્ત હોવાથી અને તે પણ અશુદ્ધ હોવાથી તેના સશોધનનુ કાર્ય અત્યત મુશ્કેલ હતુ. તે નિર્વિવાદ જ છે તે કાર્ય પડિતજીએ· અનેક પ્રતિકૂળ સંયોગોમાં પણ પૂર્ણ કર્યુ અને સંસ્કૃત સાહિત્યના શોખીનોના હાથમાં પ્રસ્તુત વાર્તામાળા સુંદરતાથી પરિપૂર્ણ બનાવી અર્પી તે બદલ તેમનો ઉપકાર અવિસ્મરણીય જ છે.

શ્રીયુત શાસ્ત્રીજી **વસંતરામજીનો** ઉપકાર જેટલા મનાય તેટલો ઓછો જ છે. કારણ કે આ કાર્યમા તેમણે જેટલો ફાળો નિઃસ્વા- રૂપે આપ્યો છે, તેટલો અન્ય કોઇએ નથી આપ્યો શ્રીયુત શાસ્ત્રીજી

શારીરિક અસ્વસ્થ્ય હાલતમાં પણ સ્વય પગે ચાલી પ્રેસ અને કાગળ વિગેરેની સરળતા પ્રાપ્ત કરાવી આપી, તેમજ પ્રેસ કોપીને શુદ્ધ કરી, પ્રુફ સશોધન કરી, પોતાની ભાષાસાહિત્ય તરફની તીવ્ર લાગણી દેખાડી આપી તેમની આ અસાધારણ પ્રવૃત્તિ અને મહેનત જોઈને હું ખરેખર ચકિતજ થયો તેમણે અનેક પ્રકારે સલાહ આદિથી તેમજ શુદ્ધાદ્વૈતમા વિનામૂલ્ય આ સંબધી જાહેરખબરો અને લેખો આદિને સ્થાન આપી આ કાર્યના પ્રચારમા પણ સારો ભાગ આપ્યો છે યદિ ઉપરોક્ત શાસ્ત્રીજીનુ અન્ય વિદ્વાનો અનુકરણ કરે તો આજ પુષ્ટિમાર્ગનુ ભાષાસાહિત્ય પુનઃ જનસમૂહમાં ગૌરવાકિત થાય તે નિ સદેહ છે શાસ્ત્રીજીના શ્રમનો અને ભાષાસાહિગ્ય ઉપરના પ્રેમનો બદલો અમે જરા પણ આપી શકીએ તેમ નથી જ તેથી અમે અહીં કેવલ તેમના ઉપકારનુ સ્મરણ કરીને જ સતોષ માનીશુ

શ્રીયુત **રમાનાથજી,** શ્રીયુત મુખીયાજી **ગોકુલદાસજી વિદ્યા-સુધાકર** શ્રીયુત શાસ્ત્રીજી **ચિમનલાલજી** અને શ્રીયુત **પુરૂષોત્તમ શાસ્ત્રીનો** પણ ઉપકાર માનવો અસ્થાને નહિ જ ગણાય ઉપ-રોક્ત મહાશયોએ અમને આ કાર્યમા સલાહ સંશોધન અને અભિ-પ્રાયાદિ દ્વારા ઘણી મદદ કરી છે તદર્થ તેમનો ઉપકાર માનવો પણ આવશ્યક જ છે.

આ ઉપરાત વાર્તાપ્રેમી **શ્રીગોવિંદલાલજી** બાવાસાહબ (સુરત) તથા **શ્રીદ્વારકેશલાલજી** વિગેરે અભિપ્રાયદાતાઓનો ઉપકાર માનુ છુ સદ્ગત થયેલા વાર્તાપ્રેમીઓનું સ્મરણ કરવુ પણ અત્રે આવશ્યક હોવાથી તેમના નામનો પણ હું અહીં ઉલ્લેખ કરૂ છુ શ્રીતિલકાયત **શ્રી ગોવર્ધનલાલજી,** ચિ **દામોદરલાલજી** તેમજ શ્રીનાથદ્વારા નિવાસી પ મ ભ **શ્રીગોવિંદદાસ બાવા** અને પ ભ **જદુનાથદાસ** જેમની કૃપા દ્વારા મને વાર્તામા પ્રેમ થયો અને યત્કિંચિત તેના રહસ્યનુ દર્શન થયુ તેમજ ૧૭૫૨મા લખાયલું હસ્તલિખિત શ્રીહરિરાયજીના

ભાવપ્રકાશ વાળુ પુસ્તક પ્રાપ્ત થયુ છે તેથી તેમનો ઉપકાર માનવો અતિ આવશ્યક છે.

શ્રીયુત મગનલાલ શાસ્ત્રી, શ્રીયુત કલ્યાણજી શાસ્ત્રી એવ શ્રીયુત તેલીવાળાનું સ્મરણ પણ અસ્થાને નહિ જ ગણાય.

આ કાર્યમાં અર્થપ્રદાન કરવાવાળા સદ્ગૃહસ્થોનો ઉપકાર માની તેમના નામોનો ઉલ્લેખ કરીએ છીએ:—

૧૦૦) શેઠ ચીમનલાલ મોતીલાલ પાટણ.

૧૦૧) શેઠ કાળીદાસ દ્વારકાદાસ ભરતીયા સુરત

૧૦૧) બાઈ નર્મદા તે શેઠ ચીમનલાલ ખેમચંદની વિધવા; તેના ટ્રસ્ટીઓ શેઠ રણછોડદાસ કૃષ્ણારામ તથા શેઠ ડોસાભાઈ વિઠ્ઠલદાસ વડનગર.

૯૦) શેઠ બલદેવદાસ હરિવલ્લભદાસ સિદ્ધપુર.

૫૧) શેઠ વાડીલાલ દલસુખરામ વડનગર

૫૧) શેઠ ગોવિંદલલા ચુનીલાલ અમદાવાદ

૧૦) મોતીલાલ લલ્લુભાઈ વિસનગર

૧૦) ચુનીલાલ ભાઇચંદ વિસનગર

૨) જેઠીશનદાસ વિઠ્ઠલદાસ ખોરડી.

૨૫) નાગોરી મોતીબેન અમદાવાદ

૨૫) શેઠ મણીલાલ લલ્લુભાઈ મણીયાર વિસનગર.

૨૫) શાસ્ત્રી પુરૂષોત્તમ પિતાંબરજી વિસનગર

૨૫) ડોસાભાઈ વિસનગર

૧૫) નર્મદાબાઈ તે નાનચંદ લીલાચંદની વિધવા હા. અમૃતલાલ વિસનગર

૫) મગલદાસ ખીમચંદ માતર.

૫) રણછોડદાસ લક્ષ્મીદાસ શ્રીગોકુલ.

૫) વિઠ્ઠલદાસ મોતીચંદ માગરોલ

૫) દલસુખભાઈ મોતીલાલ ડભોઈ.

૨) વલ્લભદાસ નરોતમદાસ પેટલાદ.

૧) જમનાદાસ મણીલાલ ભગતવાળા ડભોઈ

આ ઉપરાંત હાલોલ અને ડભોઈ વિગેરે સ્થળોના ગ્રાહકોનો પણ ઉપકાર માની હુ અહીં વિરમીશ.

ત. ક. આ કાર્યમા દ્રવ્યની મદદ કરાવનારાઓના શુભ નામો – શ્રીયુત અધિકારીજી **લજ્જાશંકરજી**, મથુરા. શ્રીયુત શેઠ **ડાસાભાઈ વિઠ્ઠલદાસ**, વડનગર પ ભ **ભાઈ ચંદુલાલ વિઠ્ઠલદાસ**, પાટણ. પ ભ **ભાઈ જયન્તીલાલ મગનલાલ**, અમદાવાદ અને શ્રીયુત **તંત્રી " અગ્રનુહ "** અમદાવાદ

આ ઉપરાત સ્મૃતિભ્રમથી રહી જતા અન્ય ગૃહસ્થોનો પણ અંત કરણ પૂર્વક ઉપકાર માનુ છુ

છેવટની એક વાત રહી જાય છે તે એ કે **વાર્તા–સાહિત્ય પ્રતિ ગંદા આક્ષેપ અને તિરસ્કાર કરનારા ઈશ્વર કોટીમાં ગણાતા બૌદ્ધાવતારો અને જીવ કોટીના ચિદ્રુપાદિનો** પણ ઉપકાર અત્રે **માનવોજ રહ્યો** કેમકે તેમના આક્ષેપોથી પ્રેરાઈ આ કાર્ય જલ્દી પ્રારભાયુ

" સંપાદક "

प्राचीन वार्ता–रहस्य का शुद्धिपत्रक.

कृपया नीचे लिखे शब्दों को सुधार कर पढ़िये

अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति
द्वादशो वै	द्वादशाङ्गोद वै	५	२३
શ્રીમહા૦	શ્રીમહાપ્રભુ૦	१२	१५
कीए	किये	१५	यहाँ और आगे के पत्रों में भी
दीए	दिये	,,	
लीये	लिये	,,	
हे	है	,,	
हे	हैं	,,	
चोरासि	चोरासी	,,	
दूरावनो	दुरावनो	,,	२१
दैवि	दैवी	१६	यहाँ और अन्यत्र भी
जानीयो	जानियो	,,	
राजसि	राजसी	,,	
तामसि	तामसी	,,	
तिनों	तीनों	१७	१
शेठ	सेठ	२८	६ अन्यत्र भी
लेईगो	लेइगो	,,	१२
काढो	काढि	,,	१४
ऊठी	उठि	,,	१९
तीन्यों	तीनों	२९	५
तिन्यों	,,	,,	७
ईनकों	इनकों	,,	८
भाईन	भाईननें	,,	११
'હરિશરણી'	'હરખરાની'	૩૦	૬

अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति	
७४	७६	,,	२२	
જભૂહ	સભૂહ	૩૧	૧૧	
में	मैं	,,	१९	
कीयो	कियो	३७	१७	अन्यत्रभी
સર્વ પ્રથમ બ્રહ્મસંબધ કરાવવાનુ	સર્વ પ્રથમ બ્રહ્મસંબધ કરાવ્યુ અન્યથા બ્રહ્મસંબધ કરાવવાનું	૪૩	૧૮	
महाप्रभू	महाप्रभु	४५	८	अन्यत्रभी
करी	करि	४६	५	
चुकि	चुकी	,,	१२	
बहुरी	वहुरि	४९	१	अन्यत्रभी
वीनती	विनती	,,	१६	
लिजियो	लाजियो	५४	२	
शके	सके	५५	१०	
लेह्व	लेहु	५६	१	
तिसरे	तीसरे	५८	१	अन्यत्रभी
सहायता सु	सहायतासूं	६०	१९	
लगी	लगि	६२	१०	
भगवद्लीला	भगवल्लीला	,,	१३	
निचे	नीचे	६३	५	
थांभि	थांभी	६९	११	
मूढे	मूढैः	७०	३	
पांच दिन	पांच दिन भये	७२	३	
कहि	कही	७२	९	
कीया	कीयो	६८	२३	

अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पक्ति
१४७६	१५७६	९०	२३
जव	अव	९३	१७
तुलसीकृत	०	९८	२३
सहचरि	सहचर	१००	१४
समांतिष्ठ	समातिष्ठ	१०१	२५
लौंडि	लौंडो	११४	१
स्त्रि	स्त्री	१२४	१२
महोडो	म्होडो	१२४	१६
सगरी	सिगरी	१२५	१६ अन्यत्र[illegible]
दासकुं	दासकूं	१२६	७
लाकिक	लौकिक	१२८	१६
गाद्य	वाद्य	१४३	१२
लब्धोप्रचारकैः	लब्धोपचारकैः	१४३	२१
सं॰	संघै	१४६	६
लुटि	लूटि	१४८	९
रीन	रिन	१५१	१९
राखवे	सराखावे	१५५	१४
सखि	सखी	१७१	२१
पांच	पांव	१८५	१७
आधिदैनीक	आधिदैविक	१९०	४
ना२६७	ना२६७	२००	१[illegible]
प्रेमरुपा	प्रेमरुपा	२०३	१[illegible]
वेद कह्यो विधि निषेध को	वेद कह्यो श्रीहरि मुख निरखत वि- धि निषेध को	२०२	

अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति
नैरोक्ष्यं	नैरपेक्ष्यं	२०५	२३
सर्वमावो	सर्वभावो	,,	२३
निरक्षेप	निरपेक्ष	२०४	२
कर्मीभ्यां	कर्माभ्यां	२०६	१३
आचार्य	आचार्य	२०७	१८
अरोगते	अरोगतेथे	,,	नोट में
कीसी	किसी	,,	नोट में
हानी नहिं होतो	हानि नह आत	,,	नोट में

संस्कृत वार्ता मणिमाला

अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति
प्रतिबोधित	प्रतिरोधित:	७	२०
प्रकाशयत्य	प्रकाशयत्ययं	१३	३
कुष्णदास	कृष्णदास	१४	२
प्रसादितुम्	प्रसादितम्	१६	५
दामोदरण	दामोदरेण	२१	३
द्लानि	दलानि	,,	६
मूष्पापि	मूष्मापि	२२	१३
प्रसदान्नं	प्रसादान्नं	२५	२
(भडली)	भंडिलः भङ्गलिः (भाषा)	२७	१३
अथकैदो	अथैकदो	२८	१५
श्रत्वेति	श्रुत्वेति	२९	१३
रत्य	रेत्य	३१	३

अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति
तद्व्यापार	तद्व्यापार	३३	२
हार्दं	हार्दं	"	१७
श्रतवान्	श्रुतवान्	३४	१८
कान्यकब्ज	कान्यकुब्ज	३५	६
पसे	परो	३५	१७
प्रस्यहं	प्रत्यहं	३६	१०
व्सासो	व्यासो	३७	१९
रोगं निवृत्तम चिरादिति	गमिष्यत्यचिराद्रोगइति	४४	१२
मद्भ्यहम्	मद्भ्यहम्	४६	१२

શ્રીદ્વા ગ્રન્થમાલાના ૧૩ મા પુષ્પ તરીકે

प्राचीन वार्ता–रहस्य

શ્રી ગિરધર ગોપાલના સ્મરણાર્થે

પ્રત. ૧૦૦૦

વૈષ્ણવોને વિનામૂલ્ય
અર્પણ કરી છે.

દ્વારકાદાસ

શ્રીદ્વારકેશો જયતિ

પ્રસ્તાવના

" વાર્તા-સાહિત્ય "

(ભૌતિક દૃષ્ટિથી)

પુષ્ટિસંપ્રદાયમાં દ્વિવિધ સાહિત્ય ઉપલબ્ધ થાય છે. એક પ્રમાણાત્મક અને બીજું પ્રમેયાત્મક. અથવા બીજી રીતે કહીએ તો

પુષ્ટિમાર્ગનું દ્વિવિધ સાહિત્ય

એક શબ્દપ્રમાણવાળુ સિદ્ધાન્તાત્મક અને બીજુ આપ્ત પ્રમાણવાળુ ફલાત્મક સાહિત્ય. શબ્દપ્રમાણાત્મક માહિત્યમાં સિદ્ધાન્ત અને તેને પ્રાપ્ત કરવાના વિધિ નિષેધ આદિ કર્તવ્યનો સમાવેશ રહેલો છે, જ્યારે આપ્તપ્રમાણાત્મક સાહિત્યમા લોકવેદાતીત શ્રીકૃષ્ણ અને તેના અલૌકીક આસ્વાદરૂપ સુધા સ્વરૂપનો પ્રત્યક્ષ અનુભવ યથાર્થ રૂપે કહેલો છે બીજા પ્રકારે કહીએ તો શબ્દપ્રમાણનું પ્રત્યક્ષ ફલ તે આપ્તપ્રમાણવાળા સાહિત્યમા નિરૂપેલુ છે.

શબ્દના અર્થથી અહીં વેદજ મુખ્ય પ્રમાણ રૂપે કહેલો છે. અને તે વેદ પ્રતિપાદ્ય સિદ્ધાન્ત જ પુષ્ટિમાર્ગમાં પ્રમાણ સ્વરૂપે હોઇ તે સાહિત્યને શબ્દપ્રમાણાત્મક કહ્યુ છે તેવાજ રીતે આપ્તના અર્થથી અહીં લોકવેદાતીત શ્રીકૃષ્ણના તાદૃશ ભક્તો જાણવા અને તેવા આપ્તપુરૂષોએ જે પ્રકારે અને જેવા સ્વરૂપનો પ્રત્યક્ષ અનુભવ કરી જેમા તેનુ વર્ણન કર્યું છે, તે બધા વાક્યો અને ગ્રન્થો પ્રમાણરૂપ છે. માટે તેવા સાહિત્યને આપ્તપ્રમાણાત્મક કહ્યુ છે.

બીજા પ્રકારે આપ્તપુરૂષોમા પ્રમેયરૂપ શ્રીકૃષ્ણ નિરતર સ્થિત હોવાથી તેમના વાક્યો અને ગ્રન્થોને પ્રમેયાત્મક કહેલા છે. આ રીતે પ્રમાણાત્મક અને પ્રમેયાત્મક અથવા શબ્દપ્રમાણવાળુ અને આપ્ત-પ્રમાણવાળુ એમ બે પ્રકારનું સાહિત્ય પુષ્ટિમાર્ગમા ઉપલબ્ધ થાય છે.

શબ્દપ્રમાણાત્મક સાહિત્ય સિદ્ધાન્તરૂપ છે અને આપ્તપ્રમા-

ણાત્મક સાહિત્ય તે સિદ્ધાન્તના દૃષ્ટાન્તરૂપ હોઇ ફલરૂપ છે આ પ્રકારે તે બન્ને સાહિત્યનો પરસ્પર સંબધ છે

જેમ પુષ્ટિમાર્ગમા પ્રમાણરૂપે શ્રીકૃષ્ણ છે તેમ પ્રમેયરૂપે પણ શ્રીકૃષ્ણજ રહેલા છે તો પણ પ્રમાણરૂપ શ્રીકૃષ્ણ સાધનાત્મક હોઈ અનુકરણીય છે, જ્યારે પ્રમેયરૂપ શ્રીકૃષ્ણ ફલાત્મક હોઈ કેવલ સ્મરણીયજ છે અર્થાત્ આપ્તજન કથિત પ્રમેયાત્મક સાહિત્યમા શ્રીકૃષ્ણે, સ્વભક્તોને સ્વય અનુગ્રહરૂપ થઈ ફલરૂપ સ્વાનન્દનુ જે દાન કરેલુ જોવામા આવે છે, તેનુ અહર્નિશ સ્મરણ (ચિત્વન) કરી સાધનદશાવાળા ભક્તો, શબ્દપ્રમાણાત્મક ગ્રન્થોમા રહેલા સિદ્ધાન્ત રૂપ શ્રીકૃષ્ણના પ્રમાણ સ્વરૂપને લક્ષ્યમા સાધી, તેમા કહેલા કર્તવ્યાકર્તવ્યનુ નિ સાધનતાની ભાવનાથી અનુકરણ કરે, તોજ કીટભ્રમર ન્યાયે પુષ્ટિમાર્ગ ફલીત થાય છે યદિ કોઇ અનધિકાર ચેષ્ટાથી સ્મરણ કરવા યોગ્ય પ્રમેયાત્મક સ્વરૂપને કૃતીથી અનુસરે તો તેને ભગવત્પ્રાપ્તિ રૂપી ફલમા અનેક પ્રતિબધ પ્રાપ્ત થાય છે તે ખાસ લક્ષ્યમા રાખવાની વાત છે

પ્રમેયમાર્ગનું પુન પ્રાકટ્ય અને તેની વિશિષ્ટતા

જ્યારથી શ્રીઆચાર્યચરણે આપ્તવાક્યના સમૂહરૂપ શ્રીમદ્ભાગવતની સમાધિભાષાને પ્રસ્થાન ચતુષ્ટય રૂપે સ્થાપી ત્યારથી પ્રમેય માર્ગ (પુષ્ટિમાર્ગ)નુ પુન પ્રાકટ્ય આ પૃથ્વીમા થયુ વળી શ્રીઆચાર્યચરણે સમાધિભાષાને કેવલ પ્રસ્થાન ચતુષ્ટયમા સ્થાન આપીનેજ સતોષ નથી માન્યો કિંતુ **પ્રસ્થાન ત્રયીના સંદેહના નિવારકરૂપે તેને કહી તેની સર્વોત્કૃષ્ટતા સહજ સિદ્ધ કરી છે** *

આપ્તવાક્ય ના સમૂહરૂપ શ્રીમદ્ભાગવત, એક ભક્ત (નારદજી) ના વચનને આધિન થઈને જ્ઞાનાવતાર વ્યાસજીને અનુભવમા આવેલ પ્રમેયરૂપ શ્રીકૃષ્ણ હોઇ, શબ્દાત્મક વેદનુ તે ફલ છે અને તેથીજ

---

*वेदा श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि ।
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाण तच्चतुष्टयम् ॥
उत्तरं पूर्वसन्देहवारकं परिकीर्तितम् । (શ્રીઆચાર્યચરણ)

શબ્દપ્રમાણ કરતાં પણ આપ્તપ્રમાણ શ્રેષ્ઠ છે તે નિર્વિવાદ સિદ્ધ થાય છે આ આપ્તવાક્યોરૂપ પ્રમેયાત્મક શ્રીકૃષ્ણમાં શબ્દબ્રહ્મની પરતન્ત્રરૂપે સ્થિતિ સહજ હોવાથી તે દ્વિગુણીત પ્રમાણભૂત છે બીજી રીતે તે પ્રમેયરૂપ શ્રીકૃષ્ણની આપ્તપુરૂષોમાં નિરંતર સ્થિતિ હોવાથી તેમનાં વાક્યો શબ્દપ્રમાણથી વિશેષ બળવત્તર હોયજ તેમા આશ્ચર્ય શું?

પ્રમેયાત્મક સાહિત્યના બે ભેદ

આ પ્રકારના પ્રમેયાત્મક સાહિત્યમા પણ બે ભેદ છે. એક પુષ્ટિનુ પ્રમાણભૂત પ્રમેયરૂપ સાહિત્ય અને બીજુ કેવલ ભાવાત્મક સાહિત્ય પ્રમાણભૂત પ્રમેયાત્મક સાહિત્યમાં, સેવનીય શ્રીયશોદોત્સંગ+ અને સ્મરણીય ગોપીકાવલ્લભ (શ્રીનાથજી), ઉભય સ્વરૂપ વિષયક સાહિત્યનો સમાવેશ રહેલો છે અને બીજા કેવલ ભાવાત્મક સાહિત્યમા ભાવ સ્વરૂપ શ્રીઆચાર્યચરણ વિષયકજ સાહિત્યનો સમાવેશ થયેલો છે ભાવદ્વારા જ સેવનીય યશોદોત્સંગ અને સ્મરણીય ગોપિકાવલ્લભનો આનંદ પ્રાપ્ત થઇ શકતો હોવાથી આ ભાવાત્મક સાહિત્ય પણ ભક્ત અને ભગવાનના પરમાનંદમા શ્રીઆચાર્યચરણની માફક મધ્યસ્થરૂપ છે

આ ભાવને શ્રીહરિરાયજીએ કૃષ્ણાસ્ય તરીકે કહેલો છે તેજ સર્વાત્મભાવરૂપ, નિરોધરૂપ, સ્વતન્ત્ર ભક્તિરૂપ અથવા તો પુષ્ટિ-ભક્તિરૂપ જે કહો તે શ્રીઆચાર્યચરણ જ છે એટલે શ્રીઆચાર્યચરણનું સ્વરૂપ પરમભાવરૂપ છે જેથી આપ્તજનોદ્વારા કહેલુ શ્રીઆચાર્યચરણનુ સ્વરૂપ પ્રમેયનુ પણ પ્રમેય અને ફલનું પણ ફલ છે. તે ભાવાત્મક શ્રીઆચાર્યચરણ વિષયક સાહિત્ય સંસ્કૃત અને ભાષા બન્નેમા પ્રાપ્ત થાય છે અને તે સાહિત્ય શબ્દપ્રમાણાત્મક અને આપ્તપ્રમાણાત્મક સાહિત્યની એકવાક્યતાના મધ્યસ્થ રૂપ છે. જે પુરૂષે શ્રીઆચાર્યચરણ વિષયક

+जानित परमनत्त्वं यशोदोत्सगलालितम् ।
तदन्यमिति ये प्राहुरासुरांस्तानहो बुधा ॥ (श्रीगुसांईजी)

×सदा सर्वात्मना सेव्यो भगवान गोकुलेश्वर ।
स्मर्तव्यो गोपिकावृन्दे क्रीडन् वृन्दावनेस्थितः ॥ (श्रीगुसांईजी)

ભાવાત્મક સાહિત્યનો અનુભવ કર્યો છે તેને કોઇપણ પ્રકારનો વિરોધ શબ્દપ્રમાણાત્મક અને આપ્તપ્રમાણાત્મક સાહિત્યમા દેખાતો નથીજ. એટલે શ્રીઆચાર્યચરણ વિષયક સાહિત્યની એકવાક્યતા અને મહત્તા, પુષ્ટિમાર્ગના સાહિત્યક્ષેત્રમા પૂર્ણપણે રહેલી છે તે વાત તેના અનુભવીથી તો જરાય અજાણી નથીજ.

શ્રીઆચાર્યચરણનું ભાવાત્મક સ્વરૂપ અને તદ્વિષયક સાહિત્ય કેવી રીતે પ્રકટ થયુ ?

શ્રીઆચાર્યચરણે સ્વય, પોતાનુ સ્વરૂપ મુખાર્વિન્દના અધિષ્ઠાતા રૂપ વૈશ્વાનર અને વાણીના પતી તરીકેનુ સ્વમુખથી વર્ણવ્યુ છે (જેમ શ્રીકૃષ્ણે ગીતા આદિ અનેક સ્થળે પોતાનુ સ્વરૂપ પોતે કહેલુ છે તેમ) અને પોતાનુ આતરિક ભાવાત્મક હાર્દરૂપ સ્વરૂપ અવ્યક્ત રૂપે શ્રીસુબોધિનીજીમા પણ સ્થાપ્યુ છે અને તે પોતાના નિગૂઢ સ્વરૂપનો પ્રકટ અનુભવ પોતાના સેવકોને આપે કરાવ્યો છે તે સેવકોમા મુખ્ય દમલા, પ્રભુદાસ અને પદ્મ-નાભદાસ છે દમલાદ્વારા શ્રીઆચાર્યચરણેજ પોતાના સ્વરૂપનો અનુભવ શ્રીગુસાંઇજીને કરાવ્યો એટલે પછી શ્રીગુસાંઇજીએ સસ્કૃતમા શ્રી આચાર્યચરણના નામ, રૂપ, અને ગુણને (ક્રમશઃ સર્વોત્તમ, વલ્લભાષ્ટક અને સ્ફૂરત્કૃષ્ણપ્રેમામૃત રૂપે) પ્રકટ કરી શ્રીઆચાર્યચરણના ભજ-નનો માર્ગ ખુલ્લો કર્યો પદ્મનાભદાસે સ્વાનુભવ પદ્યરૂપે ભાષામા વર્ણવ્યો આ રીતે શ્રીઆચાર્યજીનુ પરમ ફલાત્મક ભાવસ્વરૂપ પુષ્ટિ-સૃષ્ટિમા પ્રકટ થયુ અને અનેક જીવોને યથાધિકાર તેનો અનુભવ થયો. અને તેના અનુભવના વાકયો અને ગ્રન્થોનુ ભાવાત્મક સાહિત્ય આ રીતે પ્રકટ થયુ.

શ્રીઆચાર્યચરણ વિષયક સાહિત્યની પ્રામાણિકતા.

આ શ્રીઆચાર્ય વિષયક તમામ સાહિત્ય આપ્તવાકયરૂપ હોઇ પ્રમેય કોટીનું છે જેમ વ્યાસજી, વાલ્મીકિ આદીના આપ્તવાકય અને અનુભવ પ્રમાણ સ્વરૂપ, શ્રીભાગવત, રામાયણ આદિને શબ્દપ્રમાણથી યે વિશેષ મહત્ત્વયુક્ત સર્વત્ર માનવામા આવેલા છે, તેમ શ્રીગોકુલેશ

પણ ભગવત્સાક્ષાત્કાર યુક્ત હોવાથી તેમની કહેલી આ વાણીરૂપી વાર્તાઓ પણ આપ્તવાક્ય અને અનુભવપ્રમાણરૂપ હોઈ સર્વત્ર પ્રમાણરૂપે ગણાઇ છે તેથી તે વિશ્વસનીય સત્ય અને સ્વત સિદ્ધરૂપ જ છે.

શ્રીગુસાંઇજીએ માર્ગનુ રહસ્ય શ્રીગોકુલેશમાં સ્થાપ્યું હતુ એટલે શ્રીગોકુલેશે શ્રીઆચાર્યચરણના ભજન રૂપ આ રહસ્યને સારી રીતે સમજીને પોતે તેનો અનુભવ કર્યો. ત્યારપછી તે અનુભવ સ્વભક્તોમા પ્રકટ કર્યો એટલે શ્રીગોકુલેશે સર્વોત્તમ, અને વલ્લભાષ્ટક ઉપર સ્વતત્ર ટીકા કરી અને તેમા શ્રીઆચાર્યચરણનું સ્વરૂપ બહુજ સ્પષ્ટ રૂપે વર્ણવ્યુ. તો પણ તે સંસ્કૃતમા હોઈ સર્વોપયોગી ન થવાથી તેમજ સંક્ષિપ્ત લાગવાથી શ્રીગોકુલેશે તે શ્રીઆચાર્યચરણના સ્વરૂપને ભાષામાં ગદ્યરૂપે વિસ્તારપૂર્વક સ્પષ્ટ કર્યું જેથી તે સર્વોપયોગી થયુ.

આ કલીકાલમાં પ્રમેયાત્મક પુષ્ટિમાર્ગનો અનુભવ શ્રીઆચાર્યચરણની કૃપા વિના અશક્ય હોઈને જ શ્રીગુસાંઇજીએ, શ્રીગોકુલેશે તેમજ શ્રીહરિરાયજીએ શ્રીઆચાર્યચરણના સ્વરૂપને સ્પષ્ટ કરવાવાળા અનેક ગદ્યપદ્યાત્મક ભાષા અને સસ્કૃત સર્વ પ્રકારના ગ્રન્થો કર્યા. અને શ્રીઆચાર્યચરણના સ્વરૂપને સારી રીતે સમજાવ્યું. અને આ ગ્રન્થોમાં વાર્તાને મુખ્ય સ્થાન મળ્યુ તેથી જ શ્રીગોકુલેશે વૈષ્ણવોની વાર્તાને ફલ રૂપે કહી છે

આપ્તવાક્યોના સમૂહરૂપ વાર્તાઓના આ (ઉપરોક્ત કથીત) ગૂઢ આશયને શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુએ સારી રીતે જાણ્યો. તેથી વાર્તાના સ્વરૂપને સમજાવવાને માટે આપે સૂત્રાત્મકરૂપે અત્યત ભગવદ્ભાવ પ્રચૂર એક લેખ લખ્યો (તે અમે વાર્તાની શરૂઆતમાં આપ્યો છે) તે ઉપરાંત વાર્તાના દરેક પ્રસગો ઉપર સૂક્ષ્મ "ભાવપ્રકાશ" યોજ્યો. અને વાર્તાનો આશય બહુજ સ્પષ્ટ કર્યો આ રીતે શ્રીઆચાર્યચરણના જીવનચરિત્રરૂપ આ વાર્તાઓના મહત્ત્વમા વિશેષ વધારો થયો.

શ્રીહરિરાયજીના મતે આ વાર્તાઓ શ્રીઆચાર્યજીનુજ સ્વરૂપ છે. કારણ કે આ વાર્તાઓના એક એક અક્ષરમા શ્રીઆચાર્યજી ઓતપ્રોત રૂપે બિરાજે છે આ વાર્તાઓ શ્રીઆચાર્યજીના ત્રિવિધ ઇતિહાસ

રૂપ છે ૧ ભૌતિક, ૨ આધ્યાત્મિક અને આધિદૈવિક ૧ ભૌતિક= બાહ્ય ક્રિયાત્મક જીવનચરિત્રરૂપે, ૨ આધ્યાત્મિક=આતરજીવનચરિત્ર રૂપ જ્ઞાનાત્મકપણે ૩ આધિદૈવિક=ભાવાત્મક સ્વતંત્ર ભક્તિરૂપે આ વાર્તાઓમા શ્રીઆચાર્યચરણના રૂપ, ગુણ, વય, આકાર, જ્ઞાન સામર્થ્ય, ભક્તવત્સલતા આદિ ધર્મો, વાણીમાધુર્ય, નિત્યક્રમ, શાસ્ત્રાર્થશૈલી, સેવા અને કથાની પ્રણાલીકા, આનંદીતસ્વભાવ, રીતભાત, ચાલ, બિરાજવાની શૈલી, પાકક્રિયા, વિવેક, ધૈર્ય, આશ્રય, ઐશ્વર્યાદિ અનેક અલૌકીક ધર્મો, સત્ય, દયા, દીનતા, સેવા અને કથાની તત્પરતા, વિરહ આદિ અનેક નિગૂઢ ભાવો, તેમજ અનેક ચરિત્રોનો સમાવેશ થયેલો છે એટલે આ વાર્તાઓ શ્રીઆચાર્યચરણના જીવનચરિત્ર રૂપ છે સારાશ કે શ્રીઆચાર્યજીનુ સાગોપાગ આતર બાહ્ય સ્વરૂપ અને તેના ધર્મો તથા અનેક તત્ત્વો અને ભાવનાઓ આ વાર્તામા પ્રત્યક્ષરૂપે વિદ્યમાન છે તે તેના અભ્યાસીને જણાયા વિના રહેતુ નથી જ. અને તેથી પણ આ વાર્તાઓ શ્રીઆચાર્યજીનુ જ સ્વરૂપ છે તે સ્વય સિદ્ધ થાય છે એવીજ રીતે ૨૫૨ ની વાતો શ્રીગુસાંઇજીના જીવનચરિત્રરૂપ છે. આ વાતને સમજાવવા જ શ્રીહરિરાયજીના સેવક મહાશય વિઠ્ઠલનાથ ભટ્ટે પણ શ્રીગોકુલનાથજી રચિત ગ્રન્થોના નામોનો ઉલ્લેખ કરતા ૮૪–૨૫૨ વૈષ્ણવોની વાર્તા ન કહેતા "वल्लभविठ्ठल वार्ता प्रकट कीन नृपमान।" એમ સૂક્ષ્મ પ્રકારથી ઉદેપુરના **રાજા માનસિંહને** વાર્તાઓનુ સ્વરૂપ સમજાવતા સં ૧૭૨૯ મા કહેલુ છે આજ વાત સદ્ગત શ્રીયુત મૂલચંદ્ર તેલીવાળા "શૃંગાર રસમંડન"ની પ્રસ્તાવનામા આ પ્રમાણે લખે છે —

"સાપ્રદાયિક ગાથાઓનો વિચાર કરતા શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વરને લીલાના સાક્ષાત્ અનુભવમા શ્રીમદ્ દામોદરદાસજી સહાય થાય તે અનુચિત નથી જ × × × **આપશ્રીનું (શ્રીગુસાંઇજીનું) વિશેષ ચરિત્ર સાંપ્રદાયિક વાર્તાઓ વિગેરેમાં પ્રસિધ્ધ છે**"

આ પ્રકારે આ વાર્તાઓ શ્રીઆચાર્યજી અને શ્રીગુસાંઇજીના જીવનચરિત્ર અને ઇતિહાસરૂપ હોઈ રક્ષણીય અને મનનીય છે તેમજ તે સાપ્રદાયિક સમગ્ર સાહિત્યમા સર્વોત્કૃષ્ટ છે

આ વાર્તાઓમા ધાર્મિક તત્ત્વો અને રહસ્યોનો એટલો બધો સમાવેશ છે કે તેના શ્રદ્ધાપૂર્વકના શ્રવણ માત્રથીજ હૃદયનો નાસ્તિક અજ્ઞાનાંધકાર સહેજે નષ્ટ થઈ જાય છે અને હૃદય અત્યત શુદ્ધ બની કમલની માફક ખીલી ઉઠે છે

યદિ આ વાર્તાઓને શ્રીઆચાર્યજીના જીવનચરિત્ર અને ઇતિહાસમાથી કાઢી લઈએ તો શ્રીઆચાર્યજીના જીવનચરિત્ર અને ઇતિહાસરૂપે શેષ કઇ પણ રહેતુ જ નથી. માટે શ્રીઆચાર્યચરણના સ્વરૂપના જ્ઞાન અર્થે, સંપ્રદાયની સેવાપ્રણાલીના અને ધાર્મિક સિદ્ધાત આદિના દૃષ્ટાતરૂપે આ વાર્તાઓ પૂર્ણ ઉપયોગી છે.

આજસુધીમા જેટલા મહાનુભાવોએ શ્રીઆચાર્યચરણના જીવનચરિત્રો લખ્યા છે તેમને દરેકને વાર્તાઓમાના વૈષ્ણવોના ભાવવાહી પ્રસંગોનો આશ્રય લેવો જ પડયો છે જુઓ *વલ્લભાખ્યાન, પ્રદીપ, દિગ્વીજય, વલ્લભચરિત્ર આદિ ગ્રન્થો.

વાર્તા રચના કાલ

આ વાર્તાની રચના શ્રીગોકુલેશે વિ. સંવત ૧૬૪૨ પછી અને ૧૬૪૫ પહેલા કરેલી છે તે એથી સ્પષ્ટ થાય છે કે ૨૫૨ ની વાર્તામા એક પણ પ્રસગ સાતે બાલકો અલગ થયા પછીનો પ્રાપ્ત થતો નથી કાન્હબાઈની વાર્તામા શ્રીગોકુલનાથજીએ યજ્ઞ કરવાનો વિચાર કર્યો ત્યારે શ્રીગિરિધરજીની આજ્ઞા માગી છે તે પ્રસગ આવે છે એટલે તે વખતે સાતે બાલકો ભેગાજ બિરાજતા હતા તે સ્પષ્ટ જ છે સ ૧૬૪૫ પછી સાત બાળકો અલગ અલગ રહેવા લાગ્યા. બાકી બીજો એવો એક પણ પ્રસગ શ્રીગુસાંઈજીની લીલા વિસ્તાર પછીનો પ્રાપ્ત થતો નથી શ્રીગુસાંઇજીની લીલાવિસ્તારનો પ્રસંગ ચાચાજી અને છીતસ્વામીની વાર્તામા આપેલો છે. અને શ્રીગુસાંઇજીએ સં ૧૬૪૨ મા લીલા વિસ્તારી છે તે સ્પષ્ટ જ છે

---

*વલ્લભાખ્યાન અને પ્રદીપના સમયમા વાર્તાનું સ્વરૂપ ગ્રન્થાકાર રૂપે ન હતુ તો પણ વાર્તાના પ્રસગોની વિખ્યાતી જગપ્રસિદ્ધ હતી તેથી અન્ય સંપ્રદાયના ભક્તમાલ આદિ ગ્રન્થોમા પણ તેનુ અસ્તિત્વ દેખાય છે.

આ વાર્તાની રચના પછી જ શ્રીગોકુલેશે નિજવાર્તા, ઘરૂવાર્તા, અને બેઠકચરિત્ર રચેલા હોવાં જોઈએ કારણુ કે વાર્તાના જ અમૂક પ્રસંગોનુ વિશેષ સ્પષ્ટીકરણુ ઉપરોક્ત ગ્રન્થોમા પ્રાય જોવામા આવે છે દામોદરદાસ હરસાનીનો પૂર્વપ્રસંગ પાછલથી પ્રાપ્ત થયેલો હોવાથી વાર્તામા તે દેખાતો નથી પરતુ નિજવાર્તામા તે આપેલો છે. આથી પણુ એક અનુમાન થઈ શકે છે કે ઉપરોક્ત ત્રણુ ગ્રન્થોની રચના પછીથી થયેલી હોવી જોઈએ અને ભાવસિંધુ તો લગભગ સ ૧૬૮૦ પછીથી રચાયલો સ્પષ્ટ જ છે. કારણુ કે તેમા ચદાબાઇ અને જહાગીરનો પ્રસગ છે

આ રીતે વાર્તાનો રચનાકાલ સં ૧૬૪૨ થી ૧૬૪૫ સુધીનો નિશ્ચિત થાય છે

કેટલાક સુજ્ઞ ગણાતા પુરૂષો પણુ ઘણીવાર એમ કહે છે કે વાર્તામા લહીયાઓએ સ્વકલ્પિત રોચક પ્રસગ લખીને વાર્તાને વધારી છે મૂલ વાર્તા બે હજાર શ્લોકનીજ હતી અને પાછલથી તે દસ હજાર શ્લોક જેટલી થઈ આ આક્ષેપ કેવલ અજ્ઞાનતાસૂચક અને અન્યાય પૂર્ણુ છે તે કહ્યા વિના રહી શકાતુ નથી.

લહીયાઓ ઉપરનો મિથ્યાદોષ.

કારણુ કે મૂલ વાર્તા સંસ્કૃતમા રચાયલીજ નથી કિન્તુ વ્રજભાષામા જ રચાયલી છે તે અનેક પ્રાચીન ગ્રન્થોની વિદ્યમાનતા અને મહાશય વિઠ્ઠલનાથની વાણીથી પણુ સિદ્ધ થાય છે તેમજ શ્રીગોકુલનાથજી રચિત સસ્કૃત વાતો અદ્યાપિ કોઈને પ્રાપ્ત થઈ પણુ નથી જે સસ્કૃત વાર્તા સપ્રદાયમા પ્રાપ્ત છે તે શ્રીનાથદેવ ભટ્ટેશના નામની છે અન્ય કોઈપણુ પ્રાપ્ત નથી એટલે મૂલવાર્તા સસ્કૃત હતી તે આક્ષેપ મિથ્યા થાય છે

બીજુ તેના પ્રમાણુ રૂપે શ્રીહરિરાયજી કૃત ભાવપ્રકાશ સબલ પુરાવો છે કારણુ કે શ્રીહરિરાયજીનુ પ્રાકટ્ય વ્રજ સંવત ૧૬૪૭મા છે અને આપ શ્રીગોકુલેશજીના જ શિષ્ય છે તેમજ શ્રીગોકુલેશજીના ગ્રન્થોના પૂર્ણુ અભ્યાસી છે યદિ શ્રીગોકુલેશજીએ વાર્તા સસ્કૃતમા રચી હોત તો આપ પણુ તેના ઉપરનો ભાવ પ્રકાશ સંસ્કૃતમા જ

રચત, કિંતુ આપે ભાષામાં રચ્યો છે. અને સંસ્કૃત વાર્તા સંબંધી જરા જેટલોયે કોઈ પણ જગ્યાએ ઉલ્લેખ કર્યો નથી શ્રીગોકુલેશ સં. ૧૬૯૮ સુધી ભૂતલ ઉપર બિરાજ્યા. એટલે શ્રીહરિરાયજીને શ્રીગોકુલેશનો સહવાસ અને સાપ્રદાયિક જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવાનો સમય ખૂબજ મળેલો હોવો જોઈએ. તેથી આવી વાતો આપનાથી અજાણી રહેજ નહિ *

વળી લહીયાઓ એ વાર્તામા કલ્પિત પ્રસંગો વધારી તેને પેટના અર્થે રોચક બનાવી સંપ્રદાયના સિદ્ધાન્તથી વિરૂદ્ધ કરી છે તેવા પ્રકારનો આક્ષેપ પણ અનુચિત જ છે. અમારી દષ્ટિએ વાર્તામાં એક પણ પ્રસંગ વધારેલો અમને લાગતો નથી તેમ સંપ્રદાય વિરૂદ્ધ સિદ્ધાન્તવાળો પણ જણાતો નથી જે જે વાર્તાઓ ઉપર આક્ષેપો થયા છે તેનો પરિહાર અમે પ્રમાણો દ્વારા કર્યો છે અને આગલ ઉપર કરીશું આ ભાગમાં તુલસા અને રજોની વાર્તા ઉપર થયેલા અનુચિત અજ્ઞાનજનક મૂર્ખતા પૂર્ણ આક્ષેપો નો પરિહાર અમે શાસ્ત્રીય પ્રમાણો દ્વારા કર્યો છે †

શ્રીગોકુલેશના સમય સુધી તો એકજ લહીયો મુખ્યતા રૂપે પુસ્તક લખતો અને પોતાના આશ્રિત અન્ય મનુષ્યો પાસે તે પ્રતની અનેક નકલો કરવાવતો હતો. અને તે શ્રીગોકુલેશ તપાસતા હતા.

---

* વિશેષ શ્રીગોકુલનાથજી અને શ્રીહરિરાયજીનુ જીવનચરિત્ર ભાગ ૨ મા આપવામા આવશે

† રજો એ આચાર્યચરણને અનસખડી અરોગાવી તેમા વર્ણાશ્રમ વિરૂદ્ધ ભક્તિમાર્ગની દૃષ્ટિથી કંઈએ નથી કારણ કે તે અનસખડી સ્વય શ્રીબાલકૃષ્ણ પ્રભુ સાક્ષાત્ રૂપથી મુખમા અંગીકાર કરતા એટલે તે મહાપ્રસાદના તરીકે હોવાથી ભક્તિમાર્ગમાં તેને બાધ આવતો નથીજ તે સંબધી શ્રીનાથ ભટ્ટે પણ મુક્તપ્રમો. પ્રસાદાસ્ત પક્વાન્ન એમ સ્પષ્ટીકરણ કર્યુ છે. તેમજ શાસ્ત્રીજી વસંતરામે પણ તે સંબધી તેજ જવાબ પહેલાં શુદ્ધાદ્વૈતમાં પ્રત્યક્ષ દ'ષ્ટાત (હાલ મોજુદી અવસ્થાનું) દ્વારા આપી ચુક્યા છે. એટલે તે બાબતમાં અમે વાર્તામા કંઈ લખ્યુ નથી (વિશેષ અન્ય પ્રમાણો રજોની વાર્તામા જુઓ.)

અને પછીજ તે ગ્રન્થોનો પ્રચાર થતો એટલે જરાયે પોલ તે સમયમા ચાલતી ન હતી તે લહીયાનુ નામ "બલીયા" હતુ એ વાત જગપ્રસિદ્ધ છે એટલે પોતાની અજ્ઞાનતાથી કોઈ પ્રસગ યા વાર્તા સમજમા ન આવે તો તે કલ્પિત છે એમ કહેવુ તે ખરેખર હાસ્યાસ્પદ છે અને પોતાના જ પાડિત્યને બટ્ટો લગાડવા જેવુ છે પાડિત્ય એનુ જ નામ છે જે સર્વે ગ્રન્થોની અધિકાર ભેદ અને દૃષ્ટિભેદ આદિથી એકવાક્યતા કરી આપે

હવે આપણને જે અનેક પ્રતીઓ હસ્તલિખીત વાર્તાની પ્રાપ્ત થાય છે તેમા, કોઈ પ્રતી અપૂર્ણ છે તો કોઈ પ્રતીના કેટલાક પ્રસગોમા વિવિધતા અને વિશેષતા પણ પ્રાપ્ત થાય છે

પ્રસંગોની અપૂર્ણતા અને વિવિધતા આ વસ્તુ આક્ષેપકર્તાઓની ઢાલરૂપ હોઈ ભ્રમ ઉત્પન્ન કરવાવાળી વસ્તુ છે. પરતુ જો પ્રાચીન સમય ને ધ્યાનમા લઇએ તો સમજી શકાય છે કે તે ભ્રમ મિથ્યા છે કારણકે પ્રાચીન કાલમા નિશ્ચિત લિખીયાઓ પાસેથી પુસ્તક લખાવવામા દ્રવ્યની વિશેષ આવશ્યકતા પડતી હતી એટલે દ્રવ્યવાન સિવાય અન્ય તેનો લાભ લઈ શકતા ન હતા તે સમયમા વાર્તાનો પ્રચાર અત્યત હતો તેમ તેના ઉપર જનસમૂહનો પ્રેમ પણ અઢળક જ હતો તેથી સાધારણ સ્થિતિના લોકો કા તો વાર્તા સ્વય ઉતારી લેતા અથવા તો કઠસ્થ પ્રસગો ને શેષ રાખી અન્ય પ્રસગો થોડાક દ્રવ્યમા ઉતરાવી લેતા યા ઉતારી લેતા. આથી અનેક પ્રકારની પૂર્ણ અપૂર્ણ અને વિવિધતાવાળી પ્રતીઓ આજ આપણા જોવામા આવે છે તેના પુરાવા રૂપ અમને એક જીર્ણપત્ર પ્રાપ્ત થયેલો તેની નકલ અમે કરી લીધો હતી તે અહીં આપીએ છીએઃ—

શ્રીહરિ શ્રી જી આગલ સુધ કરશો શ્રીજમના પાન કરતા યાદ કરશો

સિદ્ધ શ્રીગોકુલમધ્યે શ્રીમહારાણીજીના પયપાનના અભિલાષી ભાઈ જીવનભાઈ જોગ લી શ્રીવલ્લભદાસાનુદાસ મહાપામર અમૃતના દૈન્યતાપૂર્વક જયજયશ્રી . .

જત તમારો પત્ર મળ્યો મારે એક ૮૪ અને એક ૨૫૨ની વાર્તાનુ પુસ્તક જોઈએ છીએ કૃપા કરીને તમો લેતા આવજો. મારી પાસે દ્રવ્યની અનુકુલતા નથી તો જેમ બને તેમ ટુકુ ઉતરાવી સાર સાર લખાવી જરૂર લેતા આવજો અમારા મોહનભાઈ લાવ્યા હતા તે કહેતા હતા કે રૂ ૧૦૦) અંકે સો પુરા આપ્યા છે. પણ ભાઈ મારી પાસે તો રૂ ૫૦) થી વધારે આપવાની શકતી નથી માટે તમે ચતુર છો જેમ ઠીક સમજો તેમ લખાવી જરૂર લાવજો ..

અહિં મહારાજ પધાર્યા છે તમારી દંડવત કરી છે હાલ એજ. કામકાજ લખજો જોઈતુ કરતુ મગાવજો સંવત ૧૭૮૦ ના મિતિ શ્રાવણ વદ ૫ વાર સોમ

આ પત્રથી આપ જાણી શકો છો કે ઉપરોક્ત અમારૂ કથન સત્ય છે કે નહિ ?

આપણી વાર્તાઓ પ્રાચીન ભારતીય ઐતિહાસિક શૈલીથી લખાયલી છે એટલે તેમા વિશેષ ભૌતિક કાલનુ નિરૂપણ જોવામા આવતુ નથી. તો પણ આસપાસના પ્રસંગો અને ઇતિહાસ જોવાથી આપણે ભૌતિક કાલનો પ્રાય નિશ્ચય કરી શકીએ છીએ

વાર્તાની ઐતિહાસિકતા

આપણી ભારતીય પ્રાચીન ઐતિહાસિક લેખન શૈલી એવા પ્રકારની હતી કે જેના અવલોકન દ્વારા ધર્મ, અર્થ, કામ અને મોક્ષને મનુષ્ય સારી રીતે સાધી શકતો હતો કારણ કે આપણે ત્યાની ઇતિહાસની વ્યાખ્યાજ આ પ્રમાણે છે કે —

इतिह पारम्पर्योपदेश आस्तेऽस्मिन् । इतिह+आसघञ् । धर्मार्थकाम मोक्षाणामुपदेश समन्वितम् । पूर्ववृत्तकथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते । इत्युक्त लक्षणे पुरावृत्तप्रकाशके भारतादिग्रन्थे । (शब्दस्तोम महानिधि)

આ વ્યાખ્યાથી એ સિદ્ધ થાય છે કે જેમા પરમ્પરાગત-ધર્મ, અર્થ, કામ અને મોક્ષનો ઉપદેશ હોય તેજ ભારતીય દૃષ્ટિથી ઇતિહાસ કહેવાય આજ કાલના કહેવાતા ભાગના અંતાનો પરંતુ મન, વાણી અને

ક્રિયાથી પાશ્ચાત્ય જડવાદ નેજ અનુસરનારા ઉપરની ભારતીય ઇતિહાસની વ્યાખ્યાથી અજ્ઞાન હોઇ જેમાં સંવત આદિ કાલનિર્દેશ હોય તેનેજ ઇતિહાસ માને છે, પછી ભલે તે અન્યથા રૂપે હોય. આ અજ્ઞાનતા મનુષ્યને કેવા અંધકારમય માર્ગે લઈ જાય છે તે અત્યારે સર્વ કોઈ પ્રત્યક્ષપણે જોઈ શકે છે જો ઉપરની વ્યાખ્યા પ્રમાણ રૂપ ન હોય તો ગીતા, ભાગવત, રામાયણ આદિ મહાન ઐતિહાસિક ગ્રંથો પણ કલ્પિત રૂપે થઈ જાય, તે સર્વથા અવાચ્છનીયજ છે. અતએવ ધર્મ, અર્થ, કામ અને મોક્ષનો પરમ્પરાગત ઉપદેશ જેમ ગીતા આદિ ગ્રંથોમાં છે તેમ વાર્તાઓમાં પણ સ્પષ્ટ પણે રહેલો છે તે આપણે સ્થલે સ્થલે અવલોકીશુ અતએવ વાર્તાઓમા કલ્પિતતા કે અનૈતિહાસિકતાનો જરાય આરોપ આવી શકે તેમ નથીજ ભારતીય પ્રણાલીથી વાર્તા વિશેષ કરીને ધાર્મિક ઇતિહાસ રૂપ છે જ

વાર્તા અને ભાષાસાહિત્ય સંબંધી સાંપ્રદાયિક, અન્ય સાંપ્રદાયિક અને તટસ્થ વિદ્વાનોના અભિપ્રાયોઃ-

ભક્ત મહાનુભાવ કવિ **દયારામ** કહે છે કે —

"સફલ તત્વનુ તત્વ છે એ સાર માહે સાર ॥
પાઠ કરતા માત્રમા વશ થાય શ્રીનંદકુમાર ॥
શ્રીવલ્લભ વિઠ્ઠલ પ્રભુને પ્રસન્ન કરવા સ્હાય ॥
નથી અવર ઉપાય બીજો હરિ ભક્તના ગુણ ગાય ॥
શ્રીઆચાર્યજી મહાપ્રભુના અંતરગ એ ભક્ત ॥
મુજ ઉપર કરૂણા કરી દ્યો શ્રીવલ્લભ પદ આસક્ત ॥
એ વૈષ્ણવ પદરજ રતીની છે ઘણી મુજને આશ ॥
ગાય ગુણ હરિદાસના દયારામ દાસનો દાસ ॥"

આ પુસ્તકમા આપેલા ચોરાશી વૈષ્ણવોના શ્રીહરિરાયજી કૃત લીલાના સ્વરૂપોના નામ સંબધી અને શ્રીહરિરાયજીએ રચેલા વાર્તા ઉપરના ભાવપ્રકાશ અને લેખ સંબંધી **શ્રીવલ્લભજી મહારાજ** પોતાના ધોળમા આ પ્રમાણે કહે છે-

" ચોરાશી ચિત લાવીને કરે પાઠ નિત્ય ધરી નેમ,
પુષ્ટિપથ પ્રભુ પ્રસન્ન થાયે હ્રદે બાઢે પ્રેમ. ૧૨૨
કૃપા શ્રીહરિરાયજી કરી દીન જાણી દાસ,
મૂલ ચોરાશી ભક્તનાં તે નામ કર્યાં પ્રકાશ ૧૨૩
શ્રીઆચાર્યજી મહાપ્રભુનાં અંગ દ્વાદશ જેહ,
ધર્મ સાથે ધર્મી કહીએ સસ દ્વાદશ તેહ. ૧૨૪
ચોરાશી વ્રજ કોશ માટે ચોરાશી એ ભક્ત,*
પ્રેમલક્ષણા પૂરેપૂરી શ્રીવલ્લભપદ આસક્ત. ૧૨૫
એ વૈષ્ણવ પદ કમળ રજ રતિ તણી છે અતિઆશ,
ગાયે ગુણ હરિદાસના પદરજ શ્રીવલ્લભ દાસ"-(રસમય ધોળ સાગર)

ગોસ્વામિ બાલકોના અભિપ્રાયો:—

૧ "૮૪ અને ૨૫૨ એ પુષ્ટિમાર્ગના કાયદાઓ છે જેના જાણવાથી પુષ્ટિપ્રભુની પ્રાપ્તિ રૂપી મુકદમામાં સહેજે ફલિભૂત થઇ શકાય છે" (શ્રીતિલકાયત શ્રીગોવર્ધનલાલજી)

૨ "વાર્તા અમારૂ ગૌરવ છે. તેમાં અમારા પૂર્વજો સાથે પરબ્રહ્મ શ્રીનાથજી એક સબધીની માફક બોલતા, ચાલતા, માગતા અને અરોગતા હતા આથી અમારા કુલનુ વિશેષ ગૌરવ બીજુ કયુ હોઈ શકે ?" (સુરતીસ્થ ચિ. ગોવિંદલાલ બાવાસાહબના સ્વતંત્ર ઉદ્‌ગાર)

૩ " સપ્રદાયના સિદ્ધાતમા જો સમજ ન પડે તો વાર્તાઓ અહર્નીશ વાચવી માર્ગના તમામ સિદ્ધાતોનુ મૂલ વાર્તાઓ છે" (શ્રીદ્વારકેશલાલજી)

૪ સપ્રદાયના સસ્કૃત સાહિત્યના પ્રખર વિદ્વાન અને મર્મજ્ઞ તેમજ સેવારસિક મહાનુભાવ શ્રીગોકુલદાસજી વિદ્યાસુધાકર મુખ્યાજી (કોટા-બડે મથુરેશજીના) સમગ્ર સાપ્રદાયક ભાષાસાહિત્યને માટે આ પ્રમાણે લખે છે —

"हम लोग तो वार्ता भावना को माननेवारे हैं क्योंकि वार्ता भावना ही

---

* શ્રીહરિરાયજીના લેખ અને ભાવપ્રકાશનુ એક વિશેષ પ્રમાણ.

ક્રિયાથી પાશ્ચાત્ય જડવાદ નેજ અનુસરનારા ઉપરની ભારતીય ઇતિહાસની વ્યાખ્યાથી અજ્ઞાન હોઇ જેમાં સવત આદિ કાલનિર્દેશ હોય તેનેજ ઇતિહાસ માને છે, પછી ભલે તે અન્યથા રૂપે હોય આ અજ્ઞાનતા મનુષ્યને કેવા અંધકારમય માર્ગે લઈ જાય છે તે અત્યારે સર્વ કોઇ પ્રત્યક્ષપણે જોઈ શકે છે જો ઉપરની વ્યાખ્યા પ્રમાણ રૂપ ન હોય તો ગીતા, ભાગવત, રામાયણ આદિ મહાન ઐતિહાસિક ગ્રંથો પણ કલ્પિત રૂપે થઈ જાય, તે સર્વથા અવાચ્છનીયજ છે અતએવ ધર્મ, અર્થ, કામ અને મોક્ષનો પરમ્પરાગત ઉપદેશ જેમ ગીતા આદિ ગ્રથોમાં છે તેમ વાર્તાઓમા પણ સ્પષ્ટ પણે રહેલો છે તે આપણે સ્થલે સ્થલે અવલોકીશું અતએવ વાર્તાઓમા કલ્પિતતા કે અનૈતિહાસિકતાનો જરાય આરોપ આવી શકે તેમ નથીજ ભારતીય પ્રણાલીથી વાર્તા વિશેષ કરીને ધાર્મિક ઇતિહાસ રૂપ છે જ

વાર્તા અને ભાષાસાહિત્ય સંબંધી સાંપ્રદાયિક, અન્ય સાંપ્રદાયિક અને તટસ્થ વિદ્વાનોના અભિપ્રાયોઃ-

ભક્ત મહાનુભાવ **કવિ દયારામ** કહે છે કે —

"સકલ તત્વનુ તત્વ છે એ સાર માહે સાર ।।
પાઠ કરતા માત્રમા વશ થાય શ્રીનદકુમાર ।।
શ્રીવલ્લભ વિઠ્ઠલ પ્રભુને પ્રસન્ન કરવા ચ્હાય ।।
નથી અવર ઉપાય બીજો હરિ ભક્તના ગુણ ગાય ।।
શ્રીઆચાર્યજી મહાપ્રભુના અંતરગ એ ભક્ત ।।
મુજ ઉપર કરૂણા કરી દ્યો શ્રીવલ્લભ પદ આસક્ત ।।
એ વૈષ્ણવ પદરજ રતીની છે ઘણી મુજને આશ ।।
ગાય ગુણ હરિદાસના દયારામ દાસનો દાસ ।।"

આ પુસ્તકમા આપેલા ચોરાશી વૈષ્ણવોના શ્રીહરિરાયજી કૃત લીલાના સ્વરૂપોના નામ સંબધી અને શ્રીહરિરાયજીએ રચેલા વાર્તા ઉપરના ભાવપ્રકાશ અને લેખ સંબંધી **શ્રીવલ્લભજી મહારાજ** પોતાના ધોળમા આ પ્રમાણે કહે છે -

ચોરાશી ચિત લાવીને કરે પાઠ નિત્ય ધરી નેમ, ૧૨૨
પુષ્ટિપથ પ્રભુ પ્રસન્ન થાયે હૃદે બાઢે પ્રેમ
કૃપા શ્રીહરિરાયજી કરી દીન જાણી દાસ, ૧૨૩
મૂલ ચોરાશી ભક્તનાં તે નામ કર્યાં પ્રકાશ.
શ્રીઆચાર્યજી મહાપ્રભુનાં અંગ દ્વાદશ જેહ, ૧૨૪
ધર્મ સાથે ધર્મી કહીએ સપ્ત દ્વાદશ તેહ.
ચોરાશી વ્રજ કોશ માટે ચોરાશી એ ભક્ત,* ૧૨૫
પ્રેમલક્ષણા પૂરેપૂરી શ્રીવલ્લભપદ આસક્ત.
એ વૈષ્ણવ પદ કમળ રજ રતિ તણી છે અતિઆશ,
ગાયે ગુણ હરિદાસના પદરજ શ્રીવલ્લભ દાસ"–(રસમય ધોળ સાગર)

ગોસ્વામિ બાલકોના અભિપ્રાયો:—

૧ "૮૪ અને ૨૫૨ એ પુષ્ટિમાર્ગના કાયદાઓ છે જેના જાણવાથી પુષ્ટિપ્રભુની પ્રાપ્તિ રૂપી મુકદમામા સહેજે ફલિભૂત થઇ શકાય છે" (શ્રીતિલકાયત શ્રીગોવર્ધનલાલજી)

૨ "વાર્તા અમારૂ ગૌરવ છે. તેમા અમારા પૂર્વજો સાથે પરપક્ષ શ્રીનાથજી એક સબધીની માફક બોલતા, ચાલતા, માગતા અને અરોગતા હતા આથી અમારા કુલનુ વિશેષ ગૌરવ બીજુ કયુ હોઇ શકે ?" (સુરતીસ્થ ચિ ગોવિંદલાલ બાવાસાહબના સ્વતંત્ર ઉદ્ગાર)

૩ "સપ્રદાયના સિદ્ધાતમા જો સમજ ન પડે તો વાર્તાઓ અહર્નીશ વાચવી. માર્ગના તમામ સિદ્ધાતોનુ મૂલ વાર્તાઓ છે" (શ્રીદ્વારકેશલાલજી)

૪ સપ્રદાયના સસ્કૃત સાહિત્યના પ્રખર વિદ્વાન અને મર્મજ્ઞ તેમજ સેવારસિક મહાનુભાવ શ્રીગોકુલદાસજી વિદ્યાસુધાકર મુખ્યાજી (કોટા–બડે મથુરેશજીના) સમગ્ર સાપ્રદાયક ભાષાસાહિત્યને માટે આ પ્રમાણે લખે છે —

"હમ લોગ તો વાર્તા ભાવના કો માનનેવારે હૈ ક્યોંકિ વાર્તા ભાવના હી

* શ્રીહરિરાયજીના લેખ અને ભાવપ્રકાશનુ એક વિશેષ પ્રમાણ-

पुष्टिमार्ग को प्रचार करवेवारे है × × × प्राचीन वार्ता भावनान की पुस्तक म **जो विरोध मालुम पडे हे वह अपनी अल्प बुद्धि को दोष हे.** वार्ता भावना में उत्तम मध्यम ओर प्रथमाधिकारी के योग्यतानुसार कर्तव्याकर्तव्य को निरुपण है" × × × × ×

સપ્રદાયના પ્રખર જ્ઞાતા શ્રીયુત **શાસ્ત્રીજી** કણ્ઠમણિજી વાર્તા કીર્તન આદિ ભાષાસાહિત્ય માટે આ પ્રમાણે કહે છે —

" सप्रदायकी एक भाषानिधि ८४ वैष्णव वार्ता तथा २५२ वैष्णवकी वार्ता प्राचीन अष्टसखाओ के कीर्तन तथा चरित्र आदि हैं **जिनके लिये संप्रदायानुयायीओ के गर्व होना चाहिए. इसकी अनभिज्ञतासे मान-हानि करना हमारे लिये पाप हे. हमे इनके अवलोकनसे वास्तविक तत्त्वकी प्राप्ति करनी चाहिये इसका समुचित रुपेण रक्षण नितान्त आवश्यक हे"** × × ×

(વિશેષ અભિપ્રાયે "ભાષાસાહિત્યનુ ગાભીર્ય"નામના પુસ્તકમા જુઓ.)

બીજા પણ વાર્તા અને ભાષાસાહિત્યના ગૌરવને વધારનાર વિદ્વાનોના અન્ય અભિપ્રાયો ઘણા છે **પરંતુ સ્થલ-સંકોચથી આટલા જ આપ્યા** છે હવે અન્ય સપ્રદાયી વિદ્વાન અને સાક્ષર પુરૂષો આપણા ભાષાસાહિત્યને માટે શુ લખે છે? તેનુ ટુંક વૃત્તાત અહીં નોધ્યુ છે —

શ્રીયુત **આચાર્ય શ્રીરસિક મોહનજી** વિદ્યાભૂષણ આપ્તવાક્યનુ પ્રમાણ અને તેની ભગવત્સ્વરૂપથી અભિન્નતા આ પ્રમાણે કથે છે —

" इन वक्तव्यों में पूर्ण विश्वास करना बडा कठिन है। सन्तो ओर ऋषियो द्वारा व्यक्त सत्य सर्वातिरिक्त हे, **वह उन लोगोंकी विचार शक्तिसे परे हे जिनको अपने हृदयमें भगवत्कृपा रुपी ज्वाला के स्फुलिंग प्राप्त नहिं हुये हैं।** हम साधारण मनुष्य इस सत्यकी आत्मामें कठिनता से ही प्रवेश कर सकते हैं। हमारी जानकारी में तो नाम कुछ अक्षरों से बना है, एसा नाम स्वय ब्रह्म से अभिन्न केसे हो सकता है? हम इसके लिये कोई कारण नहिं बता सकते। वस्तुत युक्तिवादी की सम्पूर्ण सांसारिक विधियाँ इस सत्य को प्रकट करने में

असमर्थ हैं। इस जगतमें बहुत सी ऐसी चीजें हैं विशेषत वे वस्तुयें जो सर्वातिरिक्त हैं जिनकी व्याख्या साधारण बुद्धि से नहीं की जा सकती। एसी ही बातों के लिये सन्तों और ऋषियों के शब्द जिन्हें 'आप्तवाक्य' कहा जाता है, प्रमाण माने जाते हैं।"

શ્રીયુત સુપ્રસિદ્ધ સાહિત્ય સંશોધક મિશ્રબંધુઓ વાર્તાઓ માટે આ પ્રમાણે લખે છે —

"विट्ठलनाथजी के पुत्र गोकुलनाथजीने ८४ और २५२ वैष्णव की वार्ता नामक गद्य में जो दो बृहत् ग्रन्थ लिखे उनके देखनेसे विदित होता है कि ये भक्तगण सदैव कृष्णानंद में ही निमग्न रहते थे। ८४ एवं २५२ वैष्णव को वार्ताओ में इसी संप्रदाय (वल्लभीय) के महात्माओंका वर्णन है."

("વિનોદ" પ્રો ભા. પ્ર ૧૧ અ)

શ્રીયુત મિશ્રબંધુઓ વાર્તાને ઐતિહાસિક માને છે. તેઓ તેમના વિનોદમા લખે છે કે.—"इनसे (वार्तासे) तात्कालिक कई महात्माओंका समय स्थिर हो जाता है" × × × ×

શ્રીયુત મિશ્રબંધુઓ, આપણા વાર્તા કિર્તન આદિ ભાષાસાહિત્ય માટે કેટલુ માન રાખે છે તે જુઓ તેઓ લખે છે કે—

"कविता भंडार आपहीके (श्रीवल्लभाचार्यजीके) शिष्यों की रचनासे परिपूर्ण हुआ है॥ ब्रजभाषा का जो भाषा कविता पर साम्राज्य सा हो गया है इसका एक प्रधान कारण यह भी है कि आपके संप्रदायवालोंने अपनी पुरी रचना इसीमें की है। महात्मा सूरदास तथा अष्टछाप के अन्य कविगणोंकी रचना ब्रजभाषाको भूषण स्वरुप है। यदि भाषा काव्यको आपके संप्रदाय द्वारा इतना सहारा न मिला होता तो आज शायद ब्रजभाषाकी कविता इतनी परिपूर्ण न होती। यह सब आपहीका प्रताप है।" (भा. १ आदि प्र. २२९ पान)

"इनके (श्रीविट्ठलनाथजी) और इनके पिता श्रीमहाप्रभुजी के कारण भाषासाहित्यकी बहुत बडी उन्नति हुई॥" (२९१ पान)

" महाप्रभु वल्लभाचार्यजीके पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथजी के ये महाराज (श्रीगोकुलनाथजी) आत्मज थे। इनके दो ग्रन्थ चोरासी वैष्णवोंकी वार्ता ओर २५२ वैष्णवोंकी वार्ता प्रसिद्ध है। × × × × **इनको लेख प्रणाली प्रसंशनीय है॥** " × × × ×

આ ઉપરોક્ત પ્રમાણોથી સર્વ કોઈ જાણી શકે છે કે પુષ્ટિમાર્ગનુ ભાષાસાહિત્ય, અન્ય સાહિત્યરસિકોની દષ્ટિમા પણ કેટલુ ઉત્તમ નિષ્કલક અને શ્રીઆચાર્યજીના પ્રતાપને પ્રકટ કરવાવાળું છે? આવા શુદ્ધ ભક્તોના ચરિત્રો અને તેમની અનુભવી વાણી ઉપર જેઓ આક્ષેપ કરે છે તેમને કયા શબ્દોથી સબોધવા તે માટે ભાષામા કોઈ શબ્દો જ મને તો મળતા નથી વાર્તા ઐતિહાસિક, નિષ્કલક અને શુદ્ધ છે તે સર્વાનુમતે (વિચારકોમા) નિર્વિવાદપણે સિદ્ધજ છે—

" हिन्दी साहित्य का सक्षिप्त इतिहास "ના લેખક કાશી, હિન્દી યુનિવર્સીટીના પ્રોફેસર શ્રીયુત્ રામચદ્ર શુક્લ આ પ્રમાણે લખે છે —

" गुरु नानकजीके जन्मके थोडे ही दिन बाद स्वामी वल्लभाचार्य का जन्म हुआ। यह तैलग ब्राह्मण थे। जिनका जन्म १४७९ ई० में हुआ था। × × × इनकी अब तक पूजा होती है। × × × पद इन्होंने लिखें हों अथवा न लिखे हों किंतु हिन्दी विशेषत **व्रजभाषा सदा इनकी कृतज्ञ रहेगी। क्योंकी इन्होंने उसे प्रोत्साहित किया और इनके शिष्योंने उसे गौरव के शिखर पर पहुँचा दिया** " पा ३९

" **इस कालके वैष्णव संप्रदायने एक नए ढंग का सर्वोत्तम साहित्य निकाला। यह साहित्य मुख्यत. व्रजभाषा में है जिसकी मधुरता जगत प्रसिद्ध है ॥** " पा ४२

" इस समय दो और भक्तोंका उल्लेख कर देना उचित ज्ञात होता है। एकका नाम विठ्ठल विपुल था। × × × दूसरे स्वामी गोकुलनाथजी थे। ये गोस्वामी विठ्ठलनाथ के पुत्र थे। इन्होंने व्रजभाषा में दो प्रसिद्ध गद्य ग्रंथ लिखे है एक चौरासी वैष्णवों की वार्ता और दूसरी दोसौ बावन वैष्णवोंकी वार्ता, जिन में वैष्णव मतके ८४ और २५२ भक्तोंका

वर्णन है। इन ग्रंथों से उस समय के गद्य लेखनका पता तो लगता ही है बहुत से भक्तों और भक्त कवियों का समय भी निश्चित होता है। इन पिता-पुत्र स्वामियोने हिन्दी गद्यका भी बडा उपकार किया किन्तु इनका गद्य व्रजभाषा में था। " पा ६२

" कृष्ण भक्तों में रसखान का नाम विशेष रूपसे स्मरणीय है। जाति के यह मुसलमान दिल्ली के पठान थे किन्तु वास्तव में यह वैष्णव मतके भक्त और विट्ठलनाथजी के शिष्य थे। २५२ वैष्णवोंकी वार्ता में इनका भी चरित्र दिया हुआ है पहले इनका आचरण ठीक न था किन्तु वैष्णव हो जाने पर यह सुधर गये। इन्होंने शृंगाररस की बडी उत्तम कविता की है और प्रेम का बहुत ही उत्कृष्ट वर्णन प्रेमवाटिका नामक ग्रंथ में दिया है। इनका सुजान रसखान नामक ग्रंथ बडा प्रसिद्ध है। यह श्रीकृष्ण के आनंदमें मग्न रहते थे। और उच्च कोटिके कवि थे। "

" वैष्णव संप्रदाय भी धन्य है जिसने एक मुसलमान को भी कृष्ण भक्ति का इतना उत्कृष्ट कवि बना दिया और उसको अपने में मिला लिया। "

याद राखो के जो वार्ता-कीर्तन आदि प्रकट न होते तो आ अन्य तटस्थ पुरुषो द्वारा वैष्णव संप्रदायनु गौरव जाहेरमा न आवत

" शोध्यस्थिति " नामनी पुस्तिकामां वार्ता विरुद्ध जे गद्य अभिप्रायो जे जे व्यक्तिओए आप्या छे तेओ आ उपरोक्त साम्प्रदायिक अने अन्यसाम्प्रदायिक एव तटस्थ विद्वानोना अभिप्रायो आगळ केटला टकी शके छे ? ते वाचको ज निर्णय करी ले अस्तु.

हजु भाषा अने भाषासाहित्य माटे घणु लखवानु रही जाय छे परतु हालमां समय अने स्थल संकोचथी ते अपूर्णज राख्यु छे अमे बहुज जल्दी वार्ता भाग २ जो ' श्रीविट्ठलेश्वर चरितामृत अने अष्टछाप " ए नामनो मोटो ग्रन्थ बहार पाडवानो विचार राख्यो छे तेमा उपरोक्त विषयोनो समावेश करवामां आवशे

श्री द्वारकेशो जयति

" वार्ता-माहात्म्य "

(आध्यात्मिक दृष्टिथी)

हवे आध्यात्मिक दृष्टिथी जोईए तो पण आ वार्तानु महत्त्व अत्यत छे. जरा पण अतिशयोक्ति विना अमे एम कही शकीए छीए के वार्ता विना सम्प्रदायना सिद्धांतोनी पूर्णता थती नथी ज. कारण ए छे के कोई पण वस्तु अथवा प्रतिज्ञारूप सिद्धातने सिद्ध करवाने हेतु अने दृष्टात ए बेनी आवश्यकता रहेली छे ते बे विना प्रतिज्ञानी पूर्ति थती नथी ज. जेमके वेदमा श्रुति कहे छे के "सर्वं खल्विद ब्रह्म" आ तो वेदे प्रतिज्ञा अथवा सिद्धात रूपे कह्यु के आखु जगत ब्रह्मरूप छे ए प्रतिज्ञाना हेतुमा वेद कहे छे के " तज्जलानिति " एटले दरेक वस्तुनी उत्पत्ति अने लय ब्रह्ममाज थाय छे माटे ते जगत बधु ब्रह्मरूप छे अहिं सुधी तो परोक्षवाद थयो परतु आ प्रतिज्ञानुं प्रत्यक्ष दृष्टात वेदमा नथी किंतु श्रीभागवतमा छे. (श्रीकृष्णे मृतिका-भक्षण समये पोतामा सर्व ब्रह्माडने देखाड्यु छे ते) एटले श्री भागवत, वेद प्रतिपाद्य सिद्धान्तना प्रत्यक्ष दृष्टातरूप छे माटे वेदरूप वृक्षना फलरूपे तेने गणवामा आव्यु छे प्रत्यक्ष दृष्टात विना सिद्धान्तनी पूर्ति थती ज नथी. एटले प्रत्यक्ष दृष्टात विना ए सिद्धान्त जल्दी दरेक मनुष्यना गळे उतरे नहिज माटे दृष्टांतनी खास जरूरत छे. वेदमा दृष्टात नथी माटे ए परोक्षवादी छे वेदनी प्रतिज्ञाओना दृष्टांतोरूपे श्रीमद्‌भागवत छे माटेज श्रीआचार्य-चरणे श्रीमद्‌भागवत शास्त्रने प्रस्थान चतुष्टयमा गण्यु छे अने तेनुं महत्त्व वेद करता पण वधु राख्यु छे कारण के ते (श्रीभागवत) दृष्टातरूप होई प्रत्यक्षवादी छे जेथी ते विशेष प्रमाणरूप छे आ कारणने लईनेज श्रीआचार्यचरणे वेद उपर भाष्य नहिं करता श्रीमद्‌-भागवत उपर टीका करी, तेने (श्रीभागवतने) ससारभरमा उंचु पद आप्यु. अने प्रत्यक्ष दृष्टांतरूप होई तेने पुरुषोत्तमरूप गण्यु.

તેજ પ્રકારે આપણી આ વાર્તાઓ પુષ્ટિસિદ્ધાન્તની પૂર્તિમા પ્રત્યક્ષ દષ્ટાંતરૂપે રહેલી હોઇ સર્વ સિદ્ધાન્તાત્મક ગ્રંથોમા તેની સર્વોત્કૃષ્ટતા સહજ સિદ્ધ થાય છે.

યદિ વાર્તાઓ સમ્પ્રદાયમાં ન હોત તો પુષ્ટિસમ્પ્રદાયના સિદ્ધાન્તોની પુષ્ટિમાં ઉણપજ રહેત. તે ઉપરોક્ત કથનથી સર્વ કોઈ જાણી શકે છે. વાર્તાઓ પ્રત્યક્ષવાદી હોવાથી તે સિદ્ધાન્તોના તાદશ ફલરૂપ છે.

આ વાર્તાઓ આપ્તવાક્ય રૂપ છે તે વાત પહેલાં સિદ્ધ થઈ ચુકી છે. એટલે તે શબ્દાત્મક પ્રમાણથી પણ ઉંચુ પદ પ્રાપ્ત કરે છે.

પ્રમાણમૂર્દ્ધન્ય આપ્તવાક્ય રૂપ વાર્તાઓ

ન્યાય દર્શનમાં કહેલા અનુમાનાદિ અન્ય પ્રમાણો અંતમાં શબ્દ પ્રમાણમાજ વિલીન થતાં હોવાથી અહીં અન્ય પ્રમાણોના કથનની આવશ્યકતા રહેતીજ નથી. અને શબ્દપ્રમાણ કરતાં આપ્તપ્રમાણ દ્વિગુણીત બલ યુક્ત છે તે આગલ કહી ગયા છીએ. એટલે આ આપ્તવાક્યના સમૂહરૂપ વાર્તાઓ પ્રમાણમૂર્દ્ધન્ય હોઈ સિદ્ધાન્ત સમજાવવામાં સર્વોત્કૃષ્ટ પદને પ્રાપ્ત કરે છે તે નિર્વિવાદ છે.

આ વાર્તાઓમા જે આધ્યાત્મિક અદ્વિતીય તત્ત્વજ્ઞાન રહેલુ છે તે દરેક જ્ઞાનવાન પુરૂષ વાચીને સહજ સમજી શકે તેમ છે એટલે હાલ સ્થલ સંકોચથી અહીં વિશેષ લખતા નથી વાર્તા ભાગ ૨ જા મા તેનો પૂર્ણપણે ઉલ્લેખ કરવામા આવશે

નિર્ગુણ-સગુણ (ભક્તોનો) ભેદ

સર્વાત્મભાવવાળા આત્મારામ ભક્તો તે નિર્ગુણભક્તો અને ક્રિયા-પ્રાધાન્ય કામભાવવાળા (દ્વૈતભાવવાળા) ભક્તો તે સગુણભક્તો જાણવા. આ વસ્તુ સમજવા માટે શ્રીહરિરાયકૃત "સર્વાત્મભાવ નિરૂપણમ્" ગ્રન્થ જુઓ નિર્ગુણ ભક્તો, અન્ય ભક્ત નિરપે [illegible]ની સ્વતંત્ર કહેવાય છે અને તેઓ કેવલ ભાવમાં [illegible]

સગુણ ભક્તો, અન્ય ભક્ત સાપેક્ષ હોઈ દ્વૈતભાવનાવાળા હોય છે એટલે તેઓ બાહ્યક્રિયાપ્રાધાન્ય લીલામા વિલસે છે 'હાલતો આટલુ જ જાણવુ બસ છે આ સબધી વિશેષ વાર્તા ભાગ ૨મા આપવામા આવશે

આ વાર્તામાં આવેલાં ઐતિહાસિક સ્વરૂપોની યાદી

વાર્તા સં	સ્વરૂપોનાં નામ.	કોનાં સેવ્ય	હાલ ક્યાં બિરાજે છે
૩	શ્રી દ્વારકાનાથજી	શ્રી મહાપ્રભુજી	કાકરોલી
૪	શ્રી મથુરાનાથજી	,,	કોટા
૫	છોટા મથુરેશજી	,,	,,
૮	શ્રી બાલકૃષ્ણજી	,,	મુબઈ

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

"વાર્તા-રહસ્ય"

વાર્તાના સ્વરૂપની પરંપરા અને તેની સર્વોત્કૃષ્ટતા:-

(આધિદૈવિક દૃષ્ટિથી)

नमो भगवते तस्मै कृष्णायाद्भुतकर्मणे ।
रूपनामविभेदेन जगत् क्रीडति यो यतः ॥ (निबंध)

શ્રીમદ્ભાગવતના સ્વરૂપની પરંપરા

રૂપ અને નામ એમ બે પ્રકારે ક્રીડાકર્તા પુરુષોત્તમનું સૂક્ષ્મ બીજ રૂપનામાત્મક સ્વરૂપ તે ગાયત્રી વૃક્ષરૂપ નામાત્મક સ્વરૂપ તે વેદ, અને ફલરૂપ રસરૂપ નામાત્મક સ્વરૂપ તે શ્રીમદ્ભાગવત આસ્વાદ્યતાના પ્રતાપે કરીને બીજથી અને વૃક્ષથી પણ રસાત્મક ફલનો સમુત્કર્ષ સર્વાનુભવ-ગોચર છે તેથી એક રીતે બીજાત્મક ગાયત્રીથી અને કલ્પદ્રુમાત્મક વેદથી પણ નિર્ગલિત તત્ફલ રસાત્મક શ્રીમદ્ભાગવતનો સમુત્કર્ષ સહજ સિદ્ધ થઈ રહે છે

શ્રીમદ્ભાગવતનું અલૌકિકત્વ અને નિત્યત્વ

કાવ્યમા લોકોને સમજાવવા માટે રૂપક બતાવાય છે તેમ અહિં કલ્પદ્રુમ આદિ શબ્દો અલંકારરૂપે કહેવામા આવ્યા નથી કારણ કે શ્રીમદ્ભાગવત તો સર્વ વેદોના સારરૂપ હોવાથી સર્વોદ્ધારક છે, તેથી તેમા આવા અલંકારોની કલ્પના કરી ઠીક નથી પણ સાક્ષાત્ વ્યાસજી ભગવાનના જ્ઞાનના અવતારરૂપ હોવાથી તેમના જ્ઞાનમા એ સત્ય વસ્તુ કલ્પવૃક્ષરૂપે સ્ફુરી તે પ્રમાણેથી જ તેના શબ્દો અન્યથા અનુપપન્ન થાય તો પ્રમાણ ન ગણાય, તેથી (વાણી) વૈકુંઠમા વેદરૂપ ફલ છે,

તેના ફલરૂપ શ્રીમદ્ભાગવત પણ ત્યાં નિત્ય છે, જેને વ્યાસરૂ ભગવાન કરુણા કરી સર્વોદ્ધારાર્થ પધાર્યા ત્યારે સાથે લાવ્યા છે રસરૂ હોવાથી તેમના અંત કરણમાં સ્થિત હતુ, તે સ્વપુત્ર શુકના અત ક રણમા સ્વાન્ત કરણદ્વારા આપ્યુ અને તે શુકદેવજીદ્વારા પૃથ્વી પ આવ્યુ અત આ શ્રીમદ્ભાગવત અલૌકિક નિત્ય અને અનાદિ છે

દ્વાદશસ્કધાત્મક શ્રીભાગવતમા દશવિધા સર્ગાદિ આશ્રયાન્ત લીલાનુ સુનિપુણ પ્રતિપાદન છે આ દશવિધા લીલાએ કરીને પ

શ્રીમદ્ભાગવતનું આધિદૈવિક સ્વરૂપ અને તેની લીલા

વિશિષ્ટ શુદ્ધ પુરુષોત્તમનુ હૃદય તે નિરોધલીલા જ છે તેથી નિરોધલીલ પ્રતિપાદક દશમસ્કન્ધ હૃદયવત્ પરમ નિગૂઢ છે ૮૭ અધ્યાયના આ હૃદયાત્મ પરમ નિગૂઢ નિરોધસ્કન્ધમા જન્માિ પાચ પ્રકરણ છે

તે પાંચ પ્રકરણ મધ્યે દ્વિતીય પારિભાષિક તામસ પરતુ વસ્તુત નિર્ગુણ પ્રકરણમા નિરોધદાનમા મુખ્ય અધિકારી શ્રીવ્રજજનોને જ પ્રસંગ પ્રશસાયો વસ્તુત તો પુષ્ટિમાર્ગીય પ્રભુનો પ્રાદુર્ભાવ જ સાધનનિષ્ઠને અર્થે નથી, પરન્તુ કેવલ નિ સાધનને જ અર્થે છે તેથી કેવલ નિ સાધન સ્વરૂપાકાંક્ષી શ્રીવ્રજજનના પ્રમાણ પ્રમેય સાધન અને ફલ પણ સર્વેશ્વર સર્વાત્મા પ્રાદુર્ભૂત પ્રભુસ્વરૂપ સ્વત જ થઈ જાય છે એ સિદ્ધાન્ત સ્પષ્ટ કરવાને આ તામસ પ્રકરણના પ્રમાણ પ્રમેય સાધન અને ફલ એમ ચાર અવાન્તર વિભાગ છે

નિજ સ્વરૂપપ્રાકટ્યથી અનન્તર પ્રમાણાત્મક બાલલીલાનો સ્વીકાર કરીને શ્રીવ્રજજનને પ્રેમનુ દાન કરે છે, પ્રમેયાત્મક ગોચા-રણાદિ લીલાનો અગીકાર કરીને શ્રીવ્રજજનને આસક્તિનુ દાન કરે છે, અને સાધનાત્મક શ્રીગોવર્ધનોદ્ધારણાદિ લીલાનો અગીકાર કરીને શ્રીવ્રજજનને વ્યસનનુ દાન કરે છે આ પ્રકારે નિ સાધન

શ્રીવ્રજજનને પ્રમાણરૂપ પ્રેમ, પ્રમેયરૂપા આસક્તિ અને સાધન-
રૂપ વ્યસનનું–સર્વાત્મભાવનું–પણ સ્વરૂપત દાન કરીને બ્રહ્માનંદથી
પણ અધિક પરમ વિમલ ભજનાનન્દાત્મક પુષ્ટિમહારાસરૂપ શ્રી
રાસોત્સવાદિ અવિચલ નિત્યલીલામા મધ્યપાતી પ્રવેશરૂપ ઉત્કૃષ્ટોત્કૃષ્ટ
ફલનું સહજ દાન કરે છે.

સુધાનું મધ્યત્વ અને આધિપત્ય

નિરોધના આ પ્રકારના દ્વિતીય તામસપ્રકરણના મધ્યમાં મધ્ય-
ત્રિવદ્ દ્વિતીય અવાન્તર પ્રમેયપ્રકરણના અન્તમા સર્વાન્તર મધ્ય-
નાયક અસ્મત્સર્વસ્વ શ્રીવેણુ–નિનાદનો
સર્વોપકારક પ્રાદુર્ભાવ થાય છે જે
સ્વરૂપાત્મક સુધા શ્રીઆચાર્યચરણના
અવલમ્બન વિના પુષ્ટિમાર્ગીય પ્રભુના પણ
રસાત્મક સ્વરૂપમા આધિદૈવિકતા ન સમર્પાતા અગ્નિમા સર્વ લીલાનો
આવિર્ભાવ સુદુર્ઘટ થઈ જાય
આ પ્રકારે સુધાઓ કરીને જ રસાત્મક ફલસ્વરૂપ શ્રીભાગ-
વતનો ઉપર્યુક્ત કથિત બીજરૂપ ગાયત્રી અને કલ્પવૃક્ષ રૂપ વેદથી પણ
સમુત્કર્ષ સિદ્ધ થાય છે

વાર્તાનું અલૌકિક સ્વરૂપ અને તેની પરંપરા

તે સુધાનું સ્વરૂપ
તે શ્રીસુબોધિનીજી અને તેનો મનથી
અનુભવાતો નિર્ગુણ ભાવાત્મક વિલાસ
તે જ આ વાર્તાઓ જેવા પ્રકારે શ્રી
ભાગવત વૈકુંઠમા નિત્ય ફલરૂપે બિરાજે છે અને તે શ્રીગુરુદ્વારા
ભૂતલમા પણ સર્વોદ્ધારાર્થ પ્રકટ્યુ તેવા જ પ્રકારે આ મૂર્તિમત
સુધા અને તેનો ભાવાત્મક નિર્ગુણ વિલાસ નિત્યલીલામા પરમ રસ
રૂપે–ભાવરૂપે–સ્થિત છે અને તે શ્રીગોકુલેશદ્વારા ભૂતલમા દૈવ-
જનોદ્ધારાર્થ પ્રકટ્યો છે શ્રીનુક અક્ષરબ્રહ્માત્મક છે ત્યારે શ્રી
ગોકુલેશ સાક્ષાત શ્રીગોકુલેશસ્વરૂપ છે. અને શ્રીગુરુદ્વારા પ્રકટિત
ફલમા સુધા અવ્યક્ત રૂપે છે ત્યારે અહીં વ્યક્ત અને નિરાવરણ
ક્રીડારૂપ છે.

આથી જ વાર્તાઓ રૂપી શ્રીમદાચાર્યચરણનો આધિદૈવિક નિર્ગુણ ભાવાત્મક વિલાસ, એ ફલનુ યે ફલ, રસનો યે રસ, ગાયત્રીની યે ગાયત્રી, દર્શનનુ પણ દર્શન અને તત્ત્વનુ પણ તત્ત્વ છે. જેથી શ્રીગોકુલેશે વાર્તાને શ્રીસુબોધિનીજીની કથાના પણ ફલ રૂપે વર્ણવી છે

વાર્તાની સર્વોત્કૃષ્ટતા

શ્રીભાગવત રસાત્મક ફલ છે અને તે ફલના રસના આસ્વાદ-સુધા—ના પરમ ભાવરૂપ આ વાર્તાઓ છે. જેમ શ્રીભાગવત સારસ્વતકલ્પીય અવતારલીલાના પ્રતિપાદનરૂપ છે, તેમ આ વાર્તાઓ પણ નિત્યલીલાસ્થિત ભાવાત્મક સ્વરૂપની ભાવમયી લીલાના પ્રતિપાદન રૂપ છે જેમ શ્રીભાગવતના શ્રવણમાત્રથી સમગ્ર લીલાસહિત શ્રીકૃષ્ણ હૃદયમા પધારે છે, તેમ આ વાર્તાઓના શ્રવણમાત્રથી જ શ્રીકૃષ્ણની લીલાના અનુભવમા મુખ્ય એવા પરમફલરૂપ ભાવનુ દાન થાય છે અર્થાત્ શ્રીવલ્લભાધીશનુ ભાવાત્મક સ્વરૂપ હૃદય-સ્થિત થાય છે

આ પ્રકારે વાર્તાના સ્વરૂપની પરપરા કહીને હવે તેમા રહેલા મૂર્તિમત સુધાસ્વરૂપ શ્રીઆચાર્યજીના આધિદૈવિક સ્વરૂપનો સૂક્ષ્મ ઉલ્લેખ કરીએ છીએ

"પૂર્ણ બ્રહ્મ શ્રીલક્ષ્મણસુત" અતએવ આપ પૂર્ણ બ્રહ્મ રૂપસુધાનુ સ્વરૂપ છે તે મુખ્ય સુધા પુરુષાકાર છે "**बर्हापीडं नटवरवपु**" આ શ્લોકપ્રતિપાદિત સ્વરૂપ છે, દેહભાવરહિત રસસ્વરૂપ છે જેમ દેહમા વીર્ય મુખ્ય તેમ ભગવત્સ્વ-રૂપમા સુધા જેમ દેહમા વીર્યસાર મસ્તકમા રહે તેમ અહીં સુધા, "આનંદમાત્રકરપાદમુખોદરાદિ" સ્વરૂપના સારભૂત હોઈ અધરમા સ્થિત છે

शृंगाररसो हरिः रसो वै स

શ્રીઆચાર્યજીનું આધિ-દૈવિક સ્વરૂપ.

આ પ્રકારે શ્રીઆચાર્યજીનુ સુધાસ્વરૂપ કેવલ ભક્તમાત્રૈક-અનુભવગમ્ય છે. તેમા અત્યંતાતરંગ કોટિમા વિરલ પદ્મનાભદાસાદિનો અનુભવ પ્રમાણસ્વરૂપ છે—

આ સુધાસ્વરૂપ શ્રીઆચાર્યજી વિના પુષ્ટિપ્રભુની સર્વ રસમયી લીલાનો પ્રાદુર્ભાવ જ સુદુર્ઘટ છે તે–સુધા–વિપ્રયોગાત્મક અને સદાનંદરૂપ હોવાથી કૃષ્ણસ્વરૂપ છે અત શ્રીગુસાંઈજી વલ્લભાષ્ટકમા "वस्तुत कृष्ण एव" એમ આજ્ઞા કરે છે.

શ્રીઆચાર્યજીના સ્વરૂપની મુખ્યતા.

આ સુધા મુખ્ય સાત સ્વરૂપે વિલસે છે, તેનો વિલાસ સ્વતંત્ર નિરપેક્ષ અને સ્વછન્દ છે તેના સાત સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે.

૧ મુખ્ય પુરુષાકારસુધા ૨ આનંદસ્વરૂપ-ભગવદ્ભાવરૂપ કૃષ્ણસ્વરૂપ–૩ પરમાનંદસ્વરૂપ–ગૂઢસ્ત્રીભાવરૂપ સ્વામિનીસ્વરૂપ–૪ કૃષ્ણાસ્યસ્વરૂપ–ધર્મી વિપ્રયોગાત્મક સ્વરૂપ–૫ વૈશ્વાનરસ્વરૂપ–તાપાત્મક–૬ વલ્લભસ્વરૂપ–લીલામધ્યપાતી દાસ્યરૂપ–અને ૭ આચાર્ય સ્વરૂપ–સન્મનુષ્યાકૃતિ, ભક્તિમાર્ગાબ્જમાર્તંડ અને વાક્પતિસ્વરૂપ

શ્રીઆચાર્યજીનાં મુખ્ય સાત સ્વરૂપ અને તેમની સ્થિતિ.

આ સાતે સ્વરૂપથી શ્રીઆચાર્યજીનો ભિન્ન ભિન્ન પ્રકરણનો સ્વતન્ત્ર વિહાર સાંપ્રદાયિક સમગ્ર ગદ્યપદ્યાત્મક ભાષાસાહિત્યમાં વિશેષત વાર્તા–કીર્તનમા બિરાજે છે અત વાર્તા શ્રીઆચાર્યજીનુંજ સ્વરૂપ છે

જે પ્રકારે દ્વાદશસ્કન્ધાત્મક શ્રીભાગવત "द्वादशो वै पुरुष·" ઇત્યનુસાર દ્વાદશ અંગરૂપ શ્રીહરિનું સ્વરૂપ છે, તે પ્રકારે આ વાર્તાઓ પણ દ્વાદશ અંગ અને તેના ૭ ધર્મ અને એક ધર્મી મળી ૮૪ લીલાત્મક રૂપ શ્રીઆચાર્યજીનુંજ સ્વરૂપ છે.

આ પ્રકારે વાર્તાની સમુત્કર્ષતા (ઉત્તમતા) સહજ સિદ્ધ છે

શ્રીઆચાર્યજીના દ્વાદશ અંગ અને તેની ભાવાત્મક લીલાનુ કોષ્ટક —

શ્રીઆચાર્યજીના અગ	લીલા	વૈષ્ણવોના નામ
હૃદય (મધ્ય)	નિરોધ લીલા	શ્રીદામોદરદાસ હરસાનીજી.
શિર	(પુષ્ટિ) મુક્તિ	શેઠ પુરુષોત્તમદાસ
૨ હસ્ત	ઊતિ (પુષ્ટિ)આશ્રય	પદ્મનાભદાસ–ગદાધરદાસ
૨ સ્તન	મન્વતર(પુષ્ટિ)ઈશાનુકથા	નારાયણદાસ–ગર્જનધાવન
૨ સાથલ	સ્થાન (પુષ્ટિ) પોષણ	પૂરણમલ્લ–કન્હૈયાશાલ
૨ કર	સર્ગ (પુષ્ટિ) વિસર્ગ	માધવભટ્ટ–યાદવેંદ્રદાસ
૨ પાદ	અધિકાર(પુષ્ટિ) સાધન	પ્રભુદાસજલોટા–દિનકરશેઠ

ઉપર્યુક્ત પ્રત્યેક અગસ્વરૂપ વૈષ્ણવોના સાત ભેદ છે તેમાં ૧ ધર્મી અને ૬ ધર્મો ઐશ્વર્ય, વીર્ય, યશ, શ્રી, જ્ઞાન અને વૈરાગ્ય છે. તે તે ધર્મ અને ધર્મીવાળા વૈષ્ણવોની વાર્તાઓમા સમજાવવામાં આવ્યુ છે

આ પ્રકારે સમગ્ર વાર્તારૂપ શ્રીઆચાર્યજીની ભાવાત્મક લીલાને જે ધીર પુરુષ શ્રદ્ધાપૂર્વક હૃદયમાં ધારણ કરે છે, તેના ઉપર શ્રી આચાર્યજી પ્રસન્ન થાય છે અને તે ભક્તના હૃદયમા સ્થિત થઈ પોતાના પરમ નિગૂઢ સ્વરૂપનો અનુભવ કરાવે છે

તેવા ભક્તોનો મહિમા કોણ કહી શકવાને સામર્થ્યયુક્ત છે ?

શ્રીભાગવતમા લૌકિકી, પરમત અને સમાધિભાષા રહેલી છે તેજ ત્રણ ભાષાઓ વાર્તાઓમા ભૌતિક ઇતિહાસ–લૌકિકી–

વાર્તાની ત્રણ ભાષા

શાસ્ત્રાર્થ–પરમત અને રહસ્ય–સમાધિ–રૂપે રહેલી છે વાર્તાઓમા પહેલી બે ભાષાઓ સૂક્ષ્મ રૂપે છે જ્યારે ત્રીજી સમાધિરૂપ રહસ્યભાષા પૂર્ણપણે છે શ્રીગોકુલનાથજીએ વાર્તાઓની

ત્રણે ભાષાના ત્રણ ઐતિહાસિક ગ્રંથો કરેલા છે અને તે *નિજવાર્તા, ઘરવાર્તા, અને બેઠકચરિત્ર એ નામથી પ્રસિદ્ધ છે. જેથી આ ત્રણે ગ્રન્થ વાર્તાની ટીકારૂપ છે

શ્રીઆચાર્યજીનુ સ્વરૂપ ભાવાત્મક છે. અને તે ભાવનુ સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે —

ભાવ એટલે કેવલ (ધર્મી) વિપ્રયોગાત્મક સ્વરૂપ અને તેજ– પુષ્ટિમાર્ગમા–કૃષ્ણાસ્ય (શ્રીઆચાર્યચરણ) કહેવાય છે અને તેજ પુષ્ટિ-

ભાવનું સ્વરૂપ અને તેનું સર્વોત્કૃષ્ટ ફળ

ભક્તિ અથવા સ્વતન્ત્ર ભક્તિ તરીકે પ્રસિદ્ધ છે આ ભાવનુ રમણ પણ ભાવાત્મકજ છે. જેથી તે ક્રિયાપ્રાધાન્ય અને ઇન્દ્રિયપ્રાધાન્ય એવા કામભાવ-વાળી સંયોગાત્મક લીલાથી પર છે આ ભાવ ભાવનાથી જ સિદ્ધ થાય છે. અન્ય ભક્તસાપેક્ષ નિત્યલીલા એજ આ સંયોગાત્મક લીલા જાણવી તેના રસનો અનુભવ અલૌકિક ઇન્દ્રિય અને ક્રિયાદ્વારા અનુભવાય છે જ્યારે સર્વાત્મભાવવાળી અન્યભક્તનિરપેક્ષ નિત્ય લીલા–ભાવાત્મકલીલા–ના રસનો અનુભવ કેવલ ભાવનાદ્વારા જ પ્રભુ કરાવે છે આ ભાવપ્રાપ્તિમા કેવલ વિરહની ભાવના જ એક માત્ર સાધનરૂપ છે. આમા લીલાની ભાવના, સ્વરૂપની ભાવના સાધનરૂપ મટી જઈ ફલરૂપ થાય છે આમા જ્ઞાન ગુણગાન આદિ બાધક છે અને આ કેવલ–ધર્મી વિપ્રયોગાત્મક–ભાવનો અનુભવ એજ પરમ ફલ જાણવુ

આ ભાવ પ્રથમ તાપરૂપ થઈ ભક્તના લૌકિક દેહને સ્વ તાપ-દ્વારા શુદ્ધ કરી અલૌકિક કરે છે આજ દેહમા નવો દેહ કરે છે અગ્નિ જેમ સ્વપ્રવેશથી કાષ્ઠને તેજોમય બનાવી દે છે, તેમ આ તાપ

---

* નિજવાર્તા=નિજાત્મરૂપ, ઘરવાર્તા=કુટુંબગાથા. બેઠકચરિત્ર=(વિદિત) પરમાત્મરૂપ.

પણ ભક્તના દેહને યથાસ્થિત રાખી અલૌકિક તેજોમય—આધારભૂત—બનાવે છે વિપ્રયોગાગ્નિસ્વરૂપાત્મક હોવાથી દેહનો નાશ થતો નથી. જ્યારે દેહ તેજોમય થઈ આધારભૂત બને છે ત્યારે તે ભાવાત્મક વિપ્રયોગાગ્નિ ભક્તના સમગ્ર આકારમા સર્વલીલાવિશિષ્ટ સ્વરૂપે પ્રવેશ કરે છે દૃષ્ટાત રૂપે —ભક્તના હસ્તમા હસ્ત રૂપે, પાદમા પાદ રૂપે એમ સર્વ અગોમા જાણવુ ત્યારે તે ભક્ત અલૌકિક તદ્રૂપતાને પામે છે આ પ્રવિષ્ટ વિરહાત્મા પ્રભુ મહાદુ ખે અનુભવાય છે આ ભાવ સ્થિર થયા પછી તેમા વિચિત્રતા પ્રાપ્ત થાય છે અને તે બે પ્રકારની છે વિકલતા અને અસ્વાસ્થ્ય

જેમ મહાસમુદ્રમા ડુબેલાને સમુદ્રની લ્હેરોમા મજ્જન ઉન્મજ્જન થાય છે, તેમ વિરહભાવરૂપી રસસિન્ધુમા ડુબેલા આ રસિક ભક્તને વિકલતા અને અસ્વાસ્થ્ય સહજ સિદ્ધ થઈ જાય છે આ ભક્તને પ્રભુ વિના જરાયે ચેન પડતુ નથી તે વિકલ થઈ તદ્દરૂપ બની જાય છે. અત તે ભક્ત તે વિપ્રયોગાગ્નિમા પ્રવેશ કરે છે. આનુ નામજ ભાવાત્મક રમણ કહેવાય છે ત્યારે ભક્ત અસ્વાસ્થ્યે કરીને સ્વય કૃષ્ણ—સદાનંદ—રૂપનો અનુભવ કરે છે *

આ ભાવ તેજ સર્વાત્મભાવ કહેવાય છે. જેમા દેહાદિકની સ્ફુરણા નથી થતી એટલે પ્રભુમાં અનન્ય ભાવ થાય એનેજ સર્વાત્મભાવ કહેવામા આવે છે આ અનન્ય

સર્વાત્મભાવનું સ્વરૂપ

ભાવમા હું સમગ્ર પ્રભુનો છુ એવી શુદ્ધ અદ્વૈતની ભાવના રહેલી છે આમા ઇંદ્રિયોના વિષયોનો સારી રીતે ત્યાગ છે આમા દેહ ઇંદ્રિય આદિના પૃથક્ત્વનુ ભાનજ રહેતુ નથી

આ સર્વાત્મભાવ, સ્વરૂપાનદ અને ભાવાનદથી પણ ઓળખાય

* श्याम रटत श्यामा श्याम भईरी । इत कृष्ण उत कृष्ण जित देखो तित कृष्ण मयीरी ।

છે આના રમણમા જેટલી ક્રિયા આદિ છે તે કેવલ ભાવમાત્રજ જાણવી અને આ આનંદ આત્માદ્વારાજ અનુભવાય છે આ ભાવ આનદરૂપ હોઈ રસરૂપતાને પામેલો છે અને તે રસસ્વરૂપાત્મક છે અને તે રસ-શૃગારરસાત્મા હરિરૂપ છે આ સ્વરૂપના પ્રત્યેક અવયવ મુખ-ચરણ આદિ સર્વ આનદરૂપ છે. તેના ઐશ્વર્યાદિ બધા ધર્મો પણ આનંદાત્મકજ છે. આ પ્રભુના ધર્મો અને શક્તિઓ પણ પ્રભુરૂપ છે સર્વ સ્વરૂપાત્મક આનદ છે આ શૃગારરસના દ્વિવિધ ભેદ છે. સયોગ અને વિપ્રયોગ ઉભય રસ શૃગારરસરૂપજ છે. સયોગ રસ ધર્મસહિત હોવાથી ક્રિયાત્મક છે અને તે લોકવેદમાં પ્રસિદ્ધ છે ત્યારે વિપ્રયોગરસ ધર્મીરૂપ, ભાવાત્મક અને કેવલ છે તેથી તે અનુભવથીજ જાણી શકાય છે.

આ ભાવાત્મક રસરૂપ પ્રભુના વ્રજમા રહેલા ભાવાત્મક સર્વ પદાર્થો હમેશા એક ભાવથી યુક્ત છે. અને તે સર્વ ભગવદ્રૂપ છે. તેની સર્વ સામગ્રી ભાવરૂપજ છે.

ગગાજીની માફક ભાવનાં ત્રિવિધ સ્વરૂપ છે આધિદૈવિક, આધ્યાત્મક અને આધિભૌતિક.

ભાવનું વ્યાપકત્વ, વર્ચસ્વ અને સર્વોત્કૃષ્ટત્વ

આધિદૈવિક.-સ્વય ભક્તિ (ભાવ) રૂપ છે. અને ભક્તિ એજ પુષ્ટિ છે. આધ્યાત્મિક -ભાવનારૂપ છે. અને તે માહાત્મ્યજ્ઞાનરૂપ છે. આધિભૌતિક -ક્રિયારૂપ છે અને તે કર્મસ્વરૂપ છે, જેમ ગગાજીના આધિભૌતિક સ્વરૂપમાં આધ્યાત્મિક અને આધિદૈવિકની સ્થિતિ છે, તેમ ક્રિયામા (કર્મરૂપમા) ભાવના-માહાત્મ્યજ્ઞાન-અને ભાવની-ભક્તિની-સિદ્ધિ રહેલી છે આ ક્રિયા તે કર્મરૂપ હોઈ સદાચારથી યુક્ત શ્રીકૃષ્ણની સેવા તેજ છે. એટલે ભૌતિક તનુજાવિત્તજારૂપ ક્રિયાત્મક સેવામાં સ્વરૂપના

માહાત્મ્યજ્ઞાનરૂપ આધ્યાત્મિક ભાવનાના સબધે કરીને, તે ભૌતિક-સેવામા આધિદૈવિકી ભાવાત્મક–માનસી–સેવાની સિદ્ધિ રહેલી છે તનુજાવિત્તજા વિના માનસી અપ્રાપ્ય છે

આ પ્રકારે અતરગલીલાસબધી ભાવના ત્રણ સ્વરૂપ કહ્યા. હવે બહિરગલીલાસબધી ભાવના ત્રણ સ્વરૂપ આ પ્રકારે છે —

આધિભૌતિકમા કલ્પનારૂપે ભાવની સ્થિતિ છે

આધ્યાત્મિકમા વાસનારૂપે ભાવની સ્થિતિ છે

આધિદૈવિકમા સત્યરૂપે ભાવની સ્થિતિ છે

ભૌતિક સ્થૂલદેહાદિકલ્પનાદ્વારાજ સર્વત્ર કાર્યની સિદ્ધિ કરી શકે છે, અત તે કલ્પના તે એક સત્તારૂપ છે કલ્પનારૂપી સત્તાત્મક ભાવ વિના કોઈ પણ કાર્યની ઉત્પત્તિ કે સિદ્ધિ નથીજ આધ્યાત્મિક સૂક્ષ્મદેહાદિ (પરલોકમા પાપપુણ્યનો ભોગકર્તા)માં વાસનાનીજ ચૈતન્યાત્મક રૂપ સ્થિતિ છે એટલે સૂક્ષ્મદેહ વાસનારૂપેજ અતઃ સ્થિત છે અને તે તત્ત્વરૂપ વાસના પોતાના બલથી કલ્પનાને ઉત્પન્ન કરી સર્વ કાર્ય કરાવે છે આ રીતે તેનુ પ્રધાનપણુ અને ચૈતન્યાત્મક રૂપ કહ્યુ આધિદૈવિક તે સત્ય આત્મારૂપ છે આત્મા એ આનદરૂપ છે અને તેની સત્તા સર્વત્ર છે જગત તો તેની એક માત્ર કણિકાથી ચાલી રહ્યુ છે આ રીતે તે ભાવ સત્ચિદાનંદ કૃષ્ણરૂપ છે અને તેના આનદના સારભૂત કૃષ્ણાસ્ય–શ્રીવલ્લભાચાર્ય છે અત કૃષ્ણાસ્યજ અતરગ બહિરગલીલામા મધ્યપાતિ છે તેમના વિના કોઇપણ લીલા સભવતીજ નથી અત બાહ્યાભ્યતર જગત બ્રહ્મરૂપ હોઈ કૃષ્ણાસ્યના આધારથીજ સ્થિત છે

આ રીતે ભાવસ્વરૂપ–કૃષ્ણાસ્યરૂપ–શ્રીવલ્લભનુ વ્યાપકત્વ, વર્ચસ્વ, અને સર્વોત્કૃષ્ટત્વ કહ્યુ

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

मंगलाचरणम्

श्रीकृष्णाय नमः ॥ श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥

ये नित्यं परिभावयन्ति चरणौ श्रीवल्लभस्वामिनो
ये वा तद्गुणगानसेवनपरा ये सन्निधिस्थायिनः ।
ये वा तद्गतभावभावितमनोमोदान्विताः सन्ततं
तेषामेव सदास्तु दास्यमपरं किं वा फलं जन्मनः ॥१॥

અર્થ—જેઓ શ્રીવલ્લભાધીશના ચરણોનું ધ્યાન કરે છે, જેઓ તેના ગુણગાનમાં અને સેવનમાં તત્પર છે, જેઓ તેના સાન્નિધ્યમાં રહેનારા છે વળી જેઓ તે શ્રીમહાપ્રભુજીમાં રહેલ ભાવથી ભાવનાવાળા મનના આનન્દથી હમેશા યુક્ત છે, તે ભગવદીયોનું દાસ્ય મને સદા થાઓ. જન્મનું બીજું શું ફળ છે?

ये कृष्णास्यकृपायुता प्रतिदिनं तन्मार्गचिन्तापरा
ये वा लौकिकवैदिकादि सकलं तत्कर्तृकं मन्वते ।
येषामन्यदुपास्यमेव न परं चित्ते सदा वर्तते
स्वीयत्वेन वृताश्च एव सततं मद्रक्षका भूतले ॥२॥

અર્થ:—જેઓ શ્રીકૃષ્ણ પ્રભુના મુખારવિન્દરૂપ શ્રીમહાપ્રભુજીની કૃપાથી યુક્ત છે પ્રતિદિન તે મહાપ્રભુજીના માર્ગનો વિચાર કરવામાં તત્પર છે, અને જેઓ લૌકિક વૈદિક બધું તેમણે કરેલું જ માની રહ્યા છે, અને જેઓના ચિત્તમાં બીજું ઉપાસ્ય વર્તતું જ નથી જેઓનું પ્રભુએ સ્વકીયપણાથી વરણ કરેલ છે તે ભગવદીયોજ ભૂતલમાં મારા રક્ષક થાવ ॥ ૨ ॥

ये तद्वाक्यविचारमात्रचतुरा गूढार्थबोधे रता

ये विश्वासयुता. कृतौ च कथिते श्रीवल्लभस्वामिन.।

ये तद्वक्त्रदिदृक्षया हृदि सदा तपा विरक्ता' सुखे

तद्दास्य प्रतिजन्म मे फलतु, किं सिद्धैः फलैरन्यतः ॥३॥

અર્થ:—જેઓ શ્રીવલ્લભાધીશની કૃતિમા તથા કથનમા વિશ્વાસ વાળા છે, જેઓ તેના મુખારવિન્દના દર્શનની ઇચ્છાથી સદા હૃદયમા તપ્યા કરે છે, અને સસારના સુખમા વિરક્ત છે, તેવા ભગવદીયોનુ દાસ્ય પ્રતિજન્મ મને ફલીભૂત થાઓ, **બીજાં સિદ્ધ થતાં ફ્લોથી શું?** ॥ ૩ ॥

ये श्रीवल्लभपादसेवनकृते दीना स्वदेहादिको—

पेक्षास्तत्परचेतनास्तदुदित सर्वं स्वत कुर्वते ।

येषां बुद्धिरहर्निशं समधिका तत्तोषणे सादरा—

स्तेषामेव सतां सदा चरणयोः पातः परं मे फलम् ॥४॥

અર્થ:—જેઓ શ્રીવલ્લભાધીશનાં ચરણકમલના સેવન માટે દીનતાવાળા છે, પોતાના દેહાદિકની ઉપેક્ષા કરનારા છે, તે શ્રીમહાજીમા પરાયણ બુદ્ધિવાળા, તેઓશ્રીએ આજ્ઞા કરેલુ બધુ પોતે જાતે કરે છે, અને જેઓની બુદ્ધિ તે મહાપ્રભુને પ્રસન્ન કરવામાં અધિક આદરવાળી છે, તે **સત્પુરુષોના ચરણમાં પડવું તેજ મારે પરમ ફળ છે.**

ये वा तत्प्रियनन्दसूनुचरणासक्ता पुनः स्वामिनो

दास्यं शुद्धतया तदीयहृदयाभिप्रायमातन्वते ।

ये जीवत्फलमेतदेव निखिल बुद्धया सदा मन्वते

तेषामेव पदाम्बुजे मम रतिः सेवाफलं जायताम् ॥५॥

અર્થ:—જેઓ તે શ્રીમહાપ્રભુજીના પ્રિય નન્દનન્દનના ચરણોમા આસક્ત છે. ફરી શ્રીઠાકુરજીનુ દાસ્ય તેમના હૃદયના અભિપ્રાયને જાણીને શુદ્ધપણાથી કરે છે. અને જેઓ જીવવાનુ બધુ ફળ આજ છે એમ બુદ્ધિપૂર્વક માને છે, તે ભગવદીયોનાં ચરણ **કમલમાં સેવાના ફલરૂપ રતિ (પ્રેમ) મને થાઓ ॥ ૫ ॥**

ये तद्बोधनचातुरीकलनत सन्तुष्टचित्ता सदा
ये वा मानससेवनां तदुदितां मुख्यां परां जानते ।
ये 'दोष सकलो निवृत्त' इति तद्विश्वासतो मन्वते
तेषामेव ममास्तु पादकमलद्वन्द्वे परा रेणुता ॥६॥

અર્થ:—જેઓ તે શ્રીમહાપ્રભુજીની સમજાવવાની ચાતુરીના વિચારથી સદા સન્તુષ્ટ ચિત્તવાળા છે અને જેઓ તે શ્રીમહાપ્રભુજીએ કરેલ માનસી સેવાને કેવલ મુખ્ય માને છે, જેઓ "મારો બધો દોષ નિવૃત્ત થયો છે" એમ તેઓશ્રી ઉપરના વિશ્વાસથી માને છે **તે ભગવદીયોનાં બન્ને ચરણકમલમાં મને રજપણુ થાઓ.**

ये गोपीपतिपादरेणुभजने श्रीवल्लभैकाश्रिता
ये वा दास्यपरम्परामुपगता प्राप्ता परां दीनताम् ।
ये "स्वीयं सकलं तदीय"मिति हृत्पङ्केरुहे मानयन्त्ये—
तेषामहमस्मि दासपदवीं प्राप्तः सदा जन्मनि ॥७॥

અર્થ—જેઓ ગોપીપતિ શ્રીકૃષ્ણના ભજનમા શ્રીવલ્લભાધીશના આશ્રયવાળા છે જે દાસ્યની પરમ્પરાને પામ્યા છે, શ્રેષ્ઠ દીનતાને પ્રાપ્ત થયા છે જેઓ હૃદયમા બધુ તે પ્રભુનુ છે એમ માની રહ્યા છે. **સદાય જન્મમાં (જન્મોજન્મે) એવાઓની દાસપદવીને હુ પ્રાપ્ત થયો છુ.**

ये तद्रूपमहर्निशं स्वहृदये तापात्मकं सुन्दर
साकारं सरसं रसात्मकतया ख्यातं हि जातं भुवि ।
नित्यं तत्परिचिन्तयन्ति सतत सङ्कीर्त्तयन्त्यादरात्
तेषां दैन्यभरेण मे प्रतिभवं दास्यं हि भूयात्फलम् ॥८॥

અર્થઃ—જેઓ તાપાત્મક સુન્દર સાકાર સરસ રસાત્મકપણાથી પૃથ્વીમા પ્રકટેલા અને પ્રસિદ્ધ, તે મહાપ્રભુજીના સ્વરૂપનુ રાત્રિદિવસ ચિન્તન કરે છે અને આદરથી હમેશા ગાય છે **દીનતાના ભારથી પ્રતિભવ (પ્રતિજન્મ) તે ભગવદીયોનું દાસ્યજ મને થાઓ.** ૮

॥ इति श्रीहरिदासोक्तं दास्याष्टकं सम्पूर्णम् ॥

॥ श्रीहरिः ॥

॥ श्रीकृष्णाय नमः श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥

अथ चोरासी वैष्णवकी वार्ता श्रीगोकुलनाथजी कीए ताको भाव श्रीहरिरायजी कहत हे सो लिख्यते ॥

समग्र वार्ता के उपर श्रीहरिरायजीकृत भावात्मक लेखः—

चोरासी वैष्णव को कारण यह हे जो दैवी जीव चोरासी लक्ष योनि में परे हें ॥ तिनमे ते निकासिवे के अर्थ चोरासी वैष्णव कीए ॥ सो जीव चोरासी प्रकारके हें ॥ राजसी तामसी सात्विकी निर्गुण ए चारि प्रकार के गिरे ॥ तामें ते गुणमय राजसी तामसी सात्विकी रहन दीए ॥ सो श्रीगुसांईजी उद्धार करेंगे ॥ श्रीआचार्यजी विना श्री गोवर्द्धनधर रह न सके तो अपने अतरंगो निर्गुण पक्षवारे चोरासी वैष्णव (प्रकट) कीए ॥ सो एक एक लक्ष योनिमें तें एक एक वैष्णव निर्गुण वारे के उद्धार वैष्णवद्वारा कीए ॥ ओर रसशास्त्रमें रसादिक विहारके आसन चोरासि वैष्णव कीए हे सो वर्णन कीये हें ॥ न्यारे न्यारे अंग के भावरूप ॥ चोरासि वैष्णव रसलीला संवधी निर्गुण हे श्री ठाकुरजी के अंगरूप ॥ तातें शास्त्र रीतिसों आसन चोरासी या भावसों अलौकिक हें ॥ ओर श्री आचार्यजी के अंग द्वादश हे सो स्वरूपात्मक हें । एक

---

१ राजसी तामसी चैव सात्विकी निर्गुणा तथा । एवं चतुर्विधा गोप्यः...फल० प्र अ० ३ श्लो० २

२ व्रज वृंदावन गिरि नदी पशु पछी सब मग ।
इनसों कहा दुरावनो यह सब मेरो अंग ॥
(श्रीहरि०) वाणी एकादशता.

રસશાસ્ત્રમા નિરૂપેલાં રસાદિક વિહારનાં–તે શ્રીઠાકુરજીના સંબધથી અલૌકિકતાને પ્રાપ્ત થયેલા–ચોર્યાશી આસનોના સ્વરૂપ શ્રીઠાકુજીના અગરૂપ એવા ઉપર વર્ણવેલા આધિદૈવિક ચોર્યાશી વૈષ્ણવોના છે

અતએવ આ રસમય લીલા ચોર્યાશી કોસ વ્રજમા સ્થિત છે તે લીલાના સબધી ભૌતિક ચોર્યાશી સાધનરૂપ ભક્તોના તેમના જ આધિદૈવિક સ્વરૂપ દ્વારા, ઉદ્ધાર કરી તે તે લીલામા પ્રાપ્તિ કરાવવી એ શ્રીઆચાર્યચરણના પ્રાકટ્યનુ મુખ્ય કારણ છે અને તે પ્રાપ્તિના ફલાત્મક સાધનનુ નિરૂપણ કરવુ તે આ વાર્તા પ્રકટ કરવાનો મુખ્ય ઉદ્દેશ છે આ માર્ગમા સાધન અને ફલનુ અભેદપણુ કહેલુ હોવાથી આ વાર્તાઓ પરમ ફલરૂપ છે આજ પ્રકારે શ્રીગુસાંઈજીના અગસંબધી ૨૫૨ સગુણ ભક્તોનુ ભૌતિક અને આધિદૈવિક સ્વરૂપ નિરૂપેલુ છે

શ્રીહરિરાયજી કૃત ભાવાત્મક લેખનું સ્વારસ્ય –

જેવા પ્રકારથી શ્રીઆચાર્યજીએ શ્રીમદ્દ્ભાગવતના ચાર અર્થ રૂપ આનદમય શ્રીહરિ અને તેની લીલાના દર્શન નિબધમા કરાવ્યા છે તેવા જ પ્રકારે શ્રીહરિરાયજીએ આ વાર્તાઓના ચાર અર્થરૂપ પરમાનદસ્વરૂપ શ્રીઆચાર્યજી અને તેમની ભાવાત્મક લીલાના દર્શન આ લેખમા કરાવ્યા છે શ્રીભાગવતના શેષ ત્રણ અર્થરૂપ શ્રીહરિના સ્વરૂપ શ્રીઆચાર્યજીએ શ્રીસુબોધિનીમા સ્થાપ્યા છે, તેમ શ્રીહરિરાયજીએ વાર્તાના અર્થરૂપ શેષ ત્રણ સ્વરૂપ "ભાવપ્રકાશ" મા સ્થાપ્યા છે

આ લેખમા દર્શાવેલા શ્રીઆચાર્યજીના ચાર સ્વરૂપો આ પ્રમાણે છે —

૧ " तातें अपने अंतरंगी निर्गुण पक्षवारे चोरासि वैष्णव (प्रकट) कीए "

અતરગી=આધિદૈવિક, નિર્ગુણ પક્ષવારે વૈષ્ણવ=દેહભાવરહિત

પુરુષાકાર સુધા-बर्हापीडं नटवरवपु:-સ્વરૂપ સાથે ભાવાત્મકરીતે વિલસનારા ભક્તોને પ્રકટ કર્યા.

જ્યાં જે પ્રકારના ભાવના ભક્તોનું પ્રાકટ્ય હોય, ત્યાં તે પ્રકારના ભાવાત્મક પ્રભુનું પ્રાકટ્ય અવશ્ય રહેલું જ છે તેથી અહીં સુધાસ્વરૂપનું પ્રાકટ્ય કહેલું છે.

२ “ और रसशास्त्रमें रसादिक विहार के आसन (रूप) चोरासी वैष्णव कीए हे । ज्यारे ज्यारे अंग के भावरूप । चोरासि रसलीला संबंधी निर्गुण हे । ”

અહીં આસનશબ્દથી પાત્રરૂપતા કહેલી છે રસની સ્થિતિ શ્રીઓમાં જ છે જેથી તે રસના પાત્રરૂપ છે અને લીલાશબ્દથી અંગો-ગત્વ પણ સિદ્ધ જ છે આ લીલાની સ્થિતિ સ્વામિનીભાવ વિના નથી અત અહીં “स्वामिनीभावसंयुक्त” ઇત્યાદ્યુક્ત શ્રીઆચાર્યજીનું પરમાનંદરૂપ ગૂઢભાવ સ્વામિનીસ્વરૂપનું પ્રાકટ્ય કહેલું છે

३ “ और श्रीआचार्यजी के अंग द्वादश हे सो द्वादशात्मक हे ।

અહિ દ્વાદશ અંગ શબ્દથી સાકાર પુરુષોત્તમનું પ્રતિપાદન છે કારણ કે “ द्वादशो वै पुरुषः ” પુરુષ નિશ્ચે દ્વાદશાંગ છે એમ શ્રુતિ કહે છે અને તે પુરુષોત્તમ આનંદરૂપ છે તેથી શ્રીઆચાર્યજીનું નામ પણ “ आनंद ” એમ છે અને તે ભગવદ્ભાવરૂપ છે જેથી શ્રીહરિરાયજી આજ્ઞા કરે છે કે “ भगवद्भावभावितः ”।

४ ‘ चोरासि वैष्णव व्रजमें जो जीव जा लीला को संबंधी हे तिनकों तहां प्राप्त करन के अर्थ चोरासि वैष्णव अलौकिक प्रगट कीए ॥”

અહિં કેવલ વિપ્રયોગાત્મક દુઃખાશ્રયસ્વરૂપ કહેલું છે વિપ્રયોગ વિના કોઈ પણ વસ્તુની પ્રાપ્તિ નથી જ અત આગે વિપ્રયોગાત્મક સ્વરૂપે ભૂતલ ઉપર પધારીને, દૈવી જીવોને રસનાપાત્મક સ્વરૂપનું દાન કરી શુદ્ધ કર્યા અને ભગવલ્લીલાના સંબંધને પ્રાપ્ત કર્યા

આ પ્રકારે આ લેખમા શ્રીઆચાર્યજીના ચાર સ્વરૂપો કહ્યા છે ×

॥ श्रीद्वारिकेशो जयति ॥

કુંજ પ્રકરણ —: समस्त लीला प्रकरण:—

ચોર્યાશી કોસ વ્રજમાં ચોરાસી કુંજ મુખ્ય છે.

રસિક પુરુષો અને મહાત્માઓના નિકુંજાદિવર્ણનમા અનેક મત છે તેને પરસ્પર વિરુદ્ધ જોઇને શકા કરવી નહિ કારણ કે આ નિકુજલીલા ભાવસિદ્ધ છે જેનો જેવા ભાવનો અધિકાર હોય તેને તેવા પ્રકારના ભાવાત્મક સ્વરૂપના દર્શન થાય છે ગ્હસ્યપુરાણમા ૯૩ કોટિ રાસલીલાનુ વર્ણન છે અને ૯૩ કોટિ કુંજો પણ છે. વૃદાવન બે છે એક પૃથ્વી ઉપરનુ અને બીજુ ગોલોકનુ નિત્યવૃદાવન—આ નિત્ય વૃદાવનનો જ આવિર્ભાવ ભૌતિક વૃદાવનમા ભગવત્ક્રીડાર્થ થયેલો છે એટલે આ ભૌતિક વૃદાવન પણ તદ્રૂપ જ છે એવા જ પ્રકારે શ્રીગોકુલ ગોવર્ધન આદિ છે જેથી વારાહપુરાણમા તીર્થરાજ પ્રયાગના સમક્ષ પ્રભુએ વ્રજને પોતાનુ ઘર કહેલુ છે

આ નિત્યલીલાના શ્રીમદ્ગોકુલ આદિ સ્થલોના ભૌતિક ગોકુલ આદિ ધામોમા આવિર્ભાવનો પ્રકાર શ્રીગુસાંઇજીએ વિદ્વન્મડનમા નેત્રના દષ્ટાતથી સમજાવ્યો છે

જેમ અસલ નેત્રેન્દ્રિય આ દેખાતા પ્રાકૃત ચક્ષુની અદર રહેલી છે, (આ વાત આજના ડૉક્ટરી વિજ્ઞાનથી સિદ્ધ થાય છે) અને તેથી જ આ નેત્રમા તેની તદ્રૂપતા હોઈને આ ભૌતિક નેત્રદ્વારાજ સર્વ વસ્તુ પ્રત્યક્ષ થઈ શકે છે તેવા જ પ્રકારે આ દેખાતા ભૌતિક

× આ, શ્રીહરિરાયજીના ભાવરૂપ લેખનુ મૂલ સાધનપ્રકરણ છે તેમા વ્રતચર્યાપ્રસગના "वयस्यैरागतस्तत्र" આદિ શ્લોકોના શ્રીસુબોધિનીજીમા આધિદૈવિક ભાવરૂપ અતરગ ભક્તોની અગરૂપે સ્થિતિ આદિનો પ્રકાર શ્રીઆચાર્યચરણે સમજાવ્યો છે જીજ્ઞાસુઓએ ત્યા જોવું સ્થલસકોચથી અહિં તે ન લખતા ખાલી સૂચના માત્ર કરી છે

શ્રીમદ્ગોકુલ આદિના સેવનથી જ સર્વ લીલાનો સાક્ષાત્કાર થઈ શકે છે કારણ કે તે નિત્યલીલાના શ્રીમદ્ગોકુલ આદિ નિત્ય ધામોથી તદ્રૂપતાને પ્રાપ્ત થયેલા છે

આવા જ પ્રકારે શ્રીહરિરાયજીના સમગ્ર વાર્તા ઉપરના લેખમા રહેલા વૈષ્ણવોના બે સ્વરૂપો જાણવા ભૌતિક અને આધિદૈવિક સ્વરૂપોની ભાવ અને અગરૂપે સ્થિતિ હોવાથી તેમના સન્મુખ થતાં માત્રથી જ ભૌતિક સ્વરૂપમા શ્રીઆચાર્યજી દૃષ્ટિદ્વારા તેમના આધિદૈવિક મૂલસ્વરૂપોનો પ્રવેશ કરાવે છે તેથી વૈષ્ણવો અલૌકિકતાને પ્રાપ્ત થાય છે–

આ ભાવાત્મક સ્વરૂપોના સ્થાપનનો પ્રકાર વ્રતચર્યાપ્રસંગના શ્રીસુબોધિનીજીમા શ્રીઆચાર્યચરણે સારી રીતે સમજાવ્યો છે પૂતના દ્વારા સોપેલા કુમારિકાઓના પુભાવરૂપ સ્વરૂપોને શ્રીઠાકોરજીએ દૃષ્ટિદ્વારા કુમારિકાઓમા સ્થાપી રસયોગ્ય કર્યાં છે અસ્તુ

૯૩ કોટિ કુન્જોમા ચોર્યાશી કુન્જ મુખ્ય છે માટે તે તે કુન્જના અધિકારી નિર્ગુણ ચોરાશી સેવકો શ્રીઆચાર્યચરણે અંગીકાર કર્યા

હવે ચોર્યાશી કુન્જોના નામ લખીએ છીએ —

૧ પ્રીતિકુંજ, ૨ પ્રેમકુંજ, ૩ કંદર્પકુંજ, ૪ લીલાકુંજ, ૫ મજ્જનકુંજ, ૬ વિહારકુંજ, ૭ ઉત્કણ્ઠ કુંજ, ૮ મોહન કુંજ, ૯ યુગલ કુંજ, ૧૦ હાવકુંજ, ૧૧ ભાવકુંજ, ૧૨ કટાક્ષકુંજ, ૧૩ અલક કુંજ, ૧૪ મુક્તાકુંજ, ૧૫ ભ્રૂકુંજ, ૧૬ વેણીકુંજ, ૧૭ રોમરાજિકુંજ ૧૮ નીવીકુંજ, ૧૯ કટિક્ષીણકુંજ, ૨૦ માનકુંજ, ૨૧ ગમનકુંજ, ૨૨ તિષ્ઠનકુંજ, ૨૩ સંગીતકુંજ, ૨૪ આલસ્યકુંજ, ૨૫ કલકૂજિત કુંજ, ૨૬ વિવિધાકાર કુંજ, ૨૭ કુંડલકુંજ, ૨૮ નેત્રકુંજ, ૨૯ કુચકુંજ, ૩૦ હારકુંજ, ૩૧ તામ્બૂલકુંજ, ૩૨ આકુંજ, ૩૩ લાવણ્યકુંજ, ૩૪ હાસ્યકુંજ, ૩૫ ઉન્માદકુંજ, ૩૬ ઉગ્રતાકુંજ, ૩૭ મોદિરાસાપકુંજ, ૩૮ શીતકુંજ, ૩૯ આલિંગનકુંજ, ૪૦ ચુમ્બનકુંજ, ૪૧ અધરપાન

કુજ, ૪૨ દર્શનકુજ, ૪૩ દર્પનકુજ, ૪૪ પ્રલાપકુજ, ૪૫ ઉન્માદકુજ ૪૬ દર્પકુજ, ૪૭ ઉત્સાદનકુજ, ૪૮ ઉત્કર્ષકુજ, ૪૯ દીનકુજ, ૫૦ અધીનકુજ, ૫૧ સુરતકુજ, ૫૨ આકર્ષણકુજ, ૫૩ ઉચ્ચાટનકુજ, ૫૪ મૂર્છાકુંજ, ૫૫ વશીકરણકુજ, ૫૬ સ્તમ્ભનકુજ, ૫૭ પ્રિયાસ્કન્ધારોહણકુજ, ૫૮ આવેશકુજ, ૫૯ વાર્તાલાપકુજ ૬૦ પર્યંકકુજ, ૬૧ પ્રિયાચરણતાડકાનકુજ, ૬૨ નખક્ષતકુજ, ૬૩ દન્તક્ષતકુજ ૬૪ ક્ષપિતગ્ગકુજ, ૬૫ વિગતાભરણકુજ, ૬૬ ભૂષણકુજ, ૬૭ કપકુજ, ૬૮ રતિપ્રલાપકુજ, ૬૯ તુત્તલગિરકુજ, ૭૦ પ્રિયાવાસભવનકુજ, ૭૧ મદનગુહ્યકુજ, ૭૨ આસક્તપુજકુજ, ૭૩ પરમરસકુજ, ૭૪ પીડાવાદાકુજ, ૭૫ સુરતશ્રમનિષેધકુજ, ૭૬ કુતુકકુજ, ૭૭ વાગ્વિભ્રમ કુજ, ૭૮ વ્યવસ્તભાવકુજ, ૭૯ કામટકકુજ, ૮૦ કિકિનીરવકુજ, ૮૧ વીરવિપરીતકુજ—સુરતાન્તકુજ, ૮૨ કલિકાકૌતુકકુજ, ૮૩ સુરતકુજ, ૮૪ સહજપ્રેમકુજ

આ પ્રકારે ભાવાત્મક ચોર્યાશી કુજો કહી આ કુજોમા એક એક કુજમા બધી કુજો અન્તરભાવથી રહે છે અને કોઈ કોઈ જગાએ પ્રકાશિત થઈને રહે છે

હવે બીજુ કેટલુક મુખ્ય લીલાનુ રહસ્ય વર્ણન કરીએ છીએ. પ્રથમ શ્રીઠાકોરજી અને શ્રીસ્વામિનીજીના સ્વરૂપને જાણવાને અર્થે તેમના રહસ્યરૂપ સ્વરૂપોનુ વર્ણન કરીએ છીએ —

વ્રજમા સપ્તાવરણસ્વરૂપ શ્રીઠાકોરજીના બિરાજે છે તે આ પ્રકારે – વાસુદેવ, સકર્ષણ, પ્રદ્યુમ્ન, અનિરુદ્ધ, કાલાત્મા, સયોગરસાત્મક, અને વિપ્રયોગરસાત્મક, જ્યારે પૂર્ણ પ્રભુનુ પ્રાકટ્ય થાય (સારસ્વતકલ્પમા) ત્યારે ૭ સ્વરૂપ શ્રીમથુરાજીમા પ્રકટ થાય છે અને વિપ્રયોગરસાત્મક સ્વરૂપ વ્રજમા પ્રકટે છે તે સાતે સ્વરૂપની સ્થિતિ આ પ્રકારે જાણવી —

પૂતનાવધમા સંકર્ષણ ધર્મપાલનમા અનિરુદ્ધ—લઘુરાસસમયે પ્રથમ ધર્મને ઉપદેશ કર્યો ત્યારે અને દ્વારકામા

કામચાર પ્રદ્યુમ્ન-કુબ્જાને ત્યાં પધાર્યા ત્યારે

રાજલીલામા વાસુદેવ-મુચુકુંદપર કૃપા કરી ત્યાં

મહાભારતમા કાલાત્મા-(કાલાત્મા=काल के काल ईश ईशन के)

'कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।'

ગીતા ૧૧-૩૧

नंदस्त्वात्मज उत्पन्ने સંયોગાત્મક સ્વરૂપ-તેજ વસુદેવજીને ત્યાં પ્રાકૃત શિશુ થયા ' बभूव प्राकृत शिशुः '

વિપ્રયોગાત્મસ્વરૂપ વ્રજમાં સ્થિત છે. મથુરા પધારતી સમયે શ્રીસ્વામિનીજીના હૃદયઅંતર્ગત વિપ્રયોગાત્મક સ્વરૂપ પ્રવેશ્યુ-આ સ્વરૂપ મથુરા નથી પધાર્યું સદા તે તો વ્રજમા જ બિરાજે છે

અન્ય કલ્પોમા આ સાતમાથી એક અથવા બે એમ પ્રાકટ્ય થાય છે માટે તે અંશાત્મક રૂપે પ્રકટે છે, પૂર્ણ રૂપે નહિ શ્રીભાગવતમાં સારસ્વતકલ્પની લીલા છે. માટે "कृष्णस्तु भगवान् स्वयं" એમ કહેલુ છે

આનીજ રીતે શ્રીસ્વામિનીજીના સાત સ્વરૂપ છે —

૧ શ્રીશક્તિ, ૨ ભૂશક્તિ, ૩ લીલાશક્તિ, ૪ મનોરથાત્મક, ૫ સ્વામિન્યાત્મક, ૬ સંયોગાત્મક, ૭ વિયોગાત્મક

સારસ્વત કલ્પમા સાતે રૂપથી પ્રકટે છે. અન્ય કલ્પમા એક બે રૂપે પ્રકટે છે—

પ્રથમના પાચ સ્વરૂપનુ કીર્તિજીને ત્યાં પ્રાકટ્ય છે શ્રીઠાકુરજીના પ્રાકટ્યના પછી પદર દિવસે અને ત્યારે શ્રીઠાકોરજીનુ પ્રાકટ્ય થયુ ત્યારે તેની સાથે માયાકૃત સંયોગસ્માત્મક સ્વરૂપ પ્રકટ્યુ (નદાલયમા) અને વિયોગસ્માત્મક સ્વરૂપ બે વર્ષ પહેલા મેવાકુંજમા પ્રકટ્યુ છે.

જ્યાર કીર્તિજી પોતાને ત્યાથી શ્રીસ્વામિનીજીને નદાલયમા

પધરાવી લાવ્યાં ત્યારે શ્રીઠાકોરજી માતાની ગોદમા હસ્યા તે સમયે પાછળના બન્ને રસાત્મક સ્વરૂપો પહેલાના કીર્તિજીની પાસેના આધારભૂત પચવર્ણાત્મક સ્વરૂપમા સ્થાપન (શ્રીઠાકોરજીએ) કર્યા. આ પ્રકારે બન્નેના વિપ્રયોગરસાત્મક સ્વરૂપ પરસ્પર હૃદયમા વિદ્યમાન છે [**સૌંદર્યપદ્યનુ** ચિંતન અહીં કરવુ] જ્યારે શ્રીઠાકોરજી મથુરાજી પધાર્યા ત્યારે તે વિપ્રયોગરસાત્મક સ્વરૂપ શ્રીસ્વામિનીજીના હૃદયમાં પૂર્ણરૂપે સ્થાપ્યુ મથુરામાં આ સ્વરૂપનુ ગમન નથી

શ્રીસ્વામિનીજીનુ મનોરથાત્મક જે સ્વરૂપ છે તેમા અન્ય (સ્વામિની)ના પ્રભુથી રમણ કરવાના મનોરથ તથા વરદાન આદિથી જે સ્વામિની પ્રકટે છે તે મળી રહે છે અને સ્વામિન્યાત્મક સ્વરૂપમા પ્રતિકુજ પ્રતિમડલ પ્રતિયૂથમા જે સ્વામિનીજીના અશ સ્વરૂપ હોય છે તેમની એકતા છે.

પુષ્ટિ મપ્રદાયના મતે અષ્ટ સખીના નામ આ પ્રકારે છે,— શ્રીચન્દ્રાવલીજી, શ્રીલલિતાજી, શ્રીવિશાખાજી, શ્રીચમ્પકલતાજી, શ્રીચન્દ્રભાગાજી, શ્રીરાધાસહચરી, શ્રીશ્યામાજી અને શ્રીભામાજી આ આઠમા શ્રીચન્દ્રાવલીજીને સ્વામિનીત્વ છે અન્ય સાતને સખીત્વ છે. તેથી પચાધ્યાયીમા અન્તર્ધાન અને આવિર્ભાવ અને મહારાસમા **काचित्** **काचित्** કરીને સાત જ ગણાવ્યા છે *

(શ્રીચદ્રાવલીજીના પ્રાકટય આદિનો સર્વ પ્રકાર ભગવદિચ્છા હશે તો હવે પછી ગ્રન્થ પ્રકટ થશે તેમા આપીશુ. મુદ્રણખર્ચની પૂર્તિ થઈ નથી એટલે વાચકોએ આટલાથી સતોષ માનવો)

રસિક ભક્તો માટે ધ્યાનાર્થ લલિતાજીના સ્વરૂપ, સેવા આદિનુ કોષ્ઠક આપ્યુ છે

---

* આ સમસ્ત પ્રકરણ યુગલસર્વસ્વ અને અન્ય પ્રાચીન પુસ્તકોમાથી ઉદ્ધૃત કર્યુ છે.

નામ	લીલાનુ સ્વરૂપ	રંગ		
દામોદરદાસ હરસાની	લલિતાજીનુ સ્વરૂપ	ગોરોચનપ્રભા ઉજ્વલલાલાશયુક્ત		
વસ્ત્રનો રંગ	મુખ્ય સેવા	ચાતુર્ય	ભાવ	વાદ્ય
મયૂર પિચ્છ	પાનની બીડી	મધ્યામુખ્ય સ્નેહવર્દ્ધન	સખ્ય	બીન

શ્રીદ્વારકેશો જયતિ ॥

દામોદરદાસ હરસાનીજીની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને તેનું રહસ્ય.

આ સમગ્ર વાર્તા શ્રીભાગવતના દશમસ્કંધનિરોધરૂપ અને તેના પરમ ફલ-ભાવ-રૂપ છે આમા પરમ નિર્દુષ્ટ શબ્દાત્મક આતર રમણનુ વર્ણન છે, જેથી તે તામસ ફલપ્રકરણના પણ ફલ-ભાવ-રૂપ છે આ વાર્તાનુ મૂલ યુગલગીતમા છે. આ પરમ ફલરૂપ શબ્દાત્મક લીલા શ્રીઆચાર્યજીના હૃદયમા સ્થિત છે. અને આ વાર્તા શ્રીઆચાર્યજીના પરમ નિગૂઢ હૃદયરૂપ છે, અને તેમા ધર્મી વિપ્રયોગાત્મક નિરોધનુ સ્વરૂપ રહેલુ છે.

તે સમયે પુષ્ટિમાર્ગનો પ્રાદુર્ભાવ–ગદ્યમન્ત્રરૂપે "**भगवन्नामोपदेशक**" (સં વા) – તેજ સાધનરૂપ કહેલ છે "**साधनं भगवन्मार्गे**", અને તેજ ફલરૂપે છે કારણ કે આ માર્ગમા ફલ અને સાધન એક જ છે "**फल साधनमेव हि**"

બીજા પ્રકારે ભગવત્પ્રાકટ્ય એજ ભક્તિમાર્ગમા ફલ કહેવાય છે **भक्तिमार्गे भगवतः प्राकट्यं फलमुच्यते**" આથી અહીં ભગવાનનુ સાક્ષાત પ્રાકટ્ય એ ફલ જાણવુ

આ પ્રકારે બ્રહ્મસબધના પ્રસગમા ચારે વસ્તુનું નિરૂપણ કર્યું છે

આ નિરોધ તેજ ફલરૂપ આધિદૈવિક માનસી છે **चेतस्तत्प्रवणं सेवा मानसी फलरूपिणी। प्रोक्ता निरोधरूपा ॥२॥ (स्व. मा. से. फ नि॰)** અને તેનુ દાન શ્રીઆચાર્યચરણે દામોદરદાસજીને કર્યુ છે "**रसभावभृतां नित्यं**" (**स वा**)જેથી દામોદરદાસ શ્રીઆચાર્યજીના હૃદયનુ સ્વરૂપ છે, અને તેમની વાર્તા તે પરમ ફલરૂપ નિરોધલીલાનુ સ્વરૂપ છે

આ નિરોધાત્મક પુષ્ટિમાર્ગનુ પ્રાકટ્ય કેવલ દામોદરદાસજીના અર્થેજ છે આ માર્ગના અધિકારી સર્વ દૈવી જનોના મૂલ આધિદૈવિક રૂપ દામોદરદાસજી જ છે માટે શ્રીઆચાર્યજી આજ્ઞા કરે છે કે "**दमला, यह मार्ग तेरे लिए प्रकट कीयो है**" "**पुष्टिपथस्तव हितार्थं वै प्रकटितः**" (**सं. वा श्लो. २५**)

જેઓમા આવા પ્રકારની (ભાવાત્મક નિરોધરૂપ) પ્રભુની સ્થિતિ હોય તે સ્વતત્ર–નિર્ગુણ–ભક્તો કહેવાય અને આજ પ્રકારે તે પુષ્ટિભક્તિ–આધિદૈવિક નિરોધરૂપા માનસી–પણુ સ્વતન્ત્ર કહી કહી શકાય "**स्वतंत्रभक्तास्ते**" (**स्व० मा० से० फ० नि०**)

આવા સ્વતન્ત્ર ભક્તિવાળા ભકતોમાં મૂર્તિની માફક પ્રભુનો આવેશ થાય છે, અને તે ભકતો નિત્ય અને મૂર્તિની માફક સેવનીય

હોય છે દામોદરદાસજીનુ આવા પ્રકારનુ સ્વરૂપ છે માટે જ શ્રી ગુસા-
ઈજી આજ્ઞા કરે છે કે –" **वार्ताप्रायस्तवास्यतः** " (सं. वार्ता)

પ્રશ્નઃ—જ્યારે તમો દામોદરદાસજીની વાર્તાને નિરોધલીલા કહો
છો, તો શ્રીમદ્ભાગવતમા દશમસ્કંધ સમગ્ર નિરોધરૂપ હોઈ તેમા
જન્મપ્રકરણ–રાજસ પ્રકરણ સાત્વિક પ્રકરણ ગુણ પ્રકરણ આદિ
છે, તે આ વાર્તામા કયા છે ?

ઉત્તરઃ—તમારો પ્રશ્ન યથાર્થ છે પરતુ પ્રશ્નનો જવાબ શ્રીહરિ-
રાયજીકૃત ભાવરૂપ લેખમા આવી ગયેલો છે તેમા લખ્યુ છે કે ૮૪
વૈષ્ણવો નિર્ગુણ છે, અને શ્રીઆચાર્યજીના અગના ભાવરૂપ છે તેથી
તેમની વાર્તાઓ પણ તે તે અગની લીલાના ભાવરૂપ છે એટલે
નિર્દુષ્ટ શબ્દાત્મક રમણરૂપ છે એમા ગુણમય ક્રિયાપ્રાધાન્ય અગો-
ગાત્મક લીલાની ભાવના હોય જ નહિ આ વાર્તાઓમા કેવલ
ભાવાત્મક પ્રભુની જ સ્થિતિ છે જેથી આ નિરોધલીલારૂપ દામો-
દરદાસજીની વાર્તા ભાવાત્મક હોઈ પરમ ફલરૂપે કહી છે

બીજુ જન્મપ્રકરણ સબધી એવું કહેવાનુ છે કે–આ વાર્તામાં
ભાવાત્મક શ્રીગોપીજનવલ્લભનુ સાક્ષાત પ્રાકટ્ય પણ પ્રભુસંબધના
પ્રસગમા આવી ગયુ છે વળી વિનોમા જેમ શ્રીકૃષ્ણના જન્મનો
અલૌકિક પ્રકાર (**काल परमशोभनः**) શ્રીભાગવતમા વર્ણવ્યો છે
તેમ સ્વત પરમ ભાગવત શ્રીદામોદરદાસજીએ શ્રીગુસાઈજી સમસ્ત
શ્રીઆચાર્યજીના અલૌકિક પ્રાકટ્યના પ્રકારનુ વર્ણન કરેલુ છે, અને
તેનો શ્રીગુસાઈજીએ શ્લોકબદ્ધ " સદસંકૃત ? " નામનો ગ્રન્થ પણ
રચેલો છે (જુઓ સવાદ) તે ગ્રન્થ શ્રીગોકુલનાથજી પાસે હતો
આપના લીલામા પધાર્યા બાદ મલીન (?) ના હાથ લાગ્યો (હાલ અપ્રાપ્ય
છે) એવી સભવ છે કે શ્રીગોકુલનાથજીએ ભાવરૂપ શ્રીઆચાર્યજીના
જન્મનો પ્રકાર વાર્તામા ગોઠવ્યો નહિ હોય

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

दामोदरदास हरसानी की वार्ता.

जन्म (१) शरण आये पहेले को प्रकार *

– भौतिक स्वरूपको प्रसंगः –

पाछे आप श्रीआचार्यजी आगे पधारे ॥ तहां एक बडो नगर–वृद्रनगर (वर्धा)–आयो ॥ सो वा ठोर एक बडो नगरशेठ हतो ॥ सो क्षत्री हतो ॥ वाके चार वेटा हुते ॥ सो तीन वेटा तो बडे हते ॥ ओर सबतें छोटे दामोदरदास हते ॥ सो उन चारि भाईनने बिचार कियो ॥ जो होई तो यह द्रव्य अपनो अपनो हम चारों भाई बांटि लेई ॥ काहेते जो द्रव्य हे सो क्लेश को मूल हे ॥ पाछे हमारो आपस मे हित न रहेगो ॥ दामोदरदास तो छोटे हते ॥ सो इनसें कहे ॥ क्यों बाबा तू अपने बांटेको द्रव्य लेईगो ॥ तव दामोदरदास कहे मे तो कछु समुझत नाहि ॥ तुम बडे हो ॥ आछो जानो सो करो ॥ तब इनने द्रव्य सब घरमेसु काढी ॥ वाके चारि बांट किए॥ सो चारि चिठ्ठी लिख के वाके उपर डारि ॥ सो जा जाके नाम की चिठ्ठी आई ॥ सो सो वाने लीयो ॥ तब दामोदरदास सें कही ॥ तुमारो द्रव्य जहा तुम कहो वहां धरे ॥ ता समे दामोदरदास गोखमें बैठे हते ॥ सो गोख के नींचे राज-मारग हतो ॥ सो ता समें श्रीआचार्यजी महाप्रभु वा मारग होई निकसे ॥ सो उपरतें दामोदरदास की दृष्टि परी ॥ सो तत्काल ऊठी दोरे ॥ न कछु द्रव्य की सुधि रही । न कछु घर की सुधि रही ॥ सो आवत ही श्री आचार्यजी महाप्रभु को साष्टांग दंडवत् कीये ॥ तब श्रीआचार्यजी महाप्रभु

---

* कांकरोली सरस्वती भंडार में प्राप्त प्राचीन स्फुट लेखसु उद्धृत.

श्रीमुखतें कहें ॥ जो दमला तू आयो ॥ तब इनने कही. महाराज, हों कब का मारग देखुं हूं ॥ सो श्रीमहाप्रभुजी के चरणारविंद के पाछे पाछे दामोदरदास चले ॥ सो पाछे भाई कहन लगे ॥ जो दामोदरदास कहां गए ॥ तब काहुने कही जो या मारग में एक लरिका× जात हुते ॥ तिन के पाछे पाछे दामोदरदास जात हे ॥ तब ये तीन्यों भाई उहां ते चले ॥ सो आगे वा नगर के बाहर एक स्थल हुतो ॥ तहां श्रीआचार्यजी आप बिराजे हे ॥ आगे दामोदरदास बेठे हे ॥ तब इह देखत ही तिन्यो भाई चकित होय गये ॥ सो इनको श्रीआचार्यजी के दर्शन में जात तेजपुंज के भए ॥ सो इनतें कछु बोल्यो न गयो ॥ अपुने मन में बिचारे जो कदाचित कछु बोलेंगे ॥ तो इह अग्नि हम को भस्म कर डारेगी ॥ तब दामोदरदास भाईन को देखिके कह्यो ॥ जो जाउ ॥ सो भाईन दामोदरदास को स्वरूप ता समय तेजोमय देखे ॥ सो भय खाय के पाछे फिर आए* ॥ जो दैवी जीव होते तो शरन आवते ॥ श्रीआचार्यजी को नाम दैवोद्धारप्रयत्नात्मा हे ॥ तब दामोदरदास को संग लेके श्रीआचार्यजी आगे पधारे ॥ दामोदरदास कछु ब्याहे तो हते नाहि ॥ जो इनको स्त्री आदि आइ के प्रतिबंध करे ॥ बहोत दिना के बिछुरे हते ॥ सो जाय मिले ॥ तब श्रीआचार्यजी महाप्रभु को संग दामोदरदासजी चले ॥ सो आगे फेर विद्यानगर कछुक दिन में पधारे ॥

× संवत १५४९ में श्रीआचार्यजी वा समय ११ वर्षके हते ।

*१ आ त्रण भाइओ उद्वेग, प्रतिबंध, अने भोग ओना स्वरूपो छे. दामोदरदास निरोधरूप मानसी सेवानुं स्वरूप छे. जेथी ते आधिदैविकी सेवामां उद्वेग आदि ओ वगेरे प्रतिबंधरूप होई श्री आचार्यजीए पोताना आध्यात्मिक अग्निस्वरूपना दर्शन दई ने ओने भय उत्पन्न करावी दूर कर्या

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

श्रीकृष्णाय नमः ॥ श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥

अब श्रीआचार्यजीके चोरासि वैष्णव की वार्तामें गूढ आशय श्रीगोकुलनाथजी कहे हें ॥ तहां श्रीहरिरायजी कछुक भाव प्रकट करत हे ॥

पुष्टिमार्गीय वैष्णव के (अर्थ) जनाइवे के अर्थ ॥[1]

अब प्रथम सेवक सो श्रीआचार्यजी महाप्रभु के दामोदरदास जिनको श्रीआचार्यजी दमला कहते ॥

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो यातें ॥ दमला सो अमला ॥ मल करिकें रहित ॥ तहा यह संदेह होई जो साधारन वैष्णवमें मल नांहि ॥ तो दामोदरदासमें केसें सभवे ? दामोदरदास के दरसन तें इनके नाम लिए तें पाप जाय तो इनको नाम दमला सो अमला कहें ॥ ताको प्रयोजन कहा ? यह संदेह होई ॥ तहां कहत हें ॥ यह भक्तिमारग में श्रीठाकुरजीमें प्रीति होइ तहां तांई अमल हे ॥ जब श्रीठाकुरजी तें अधिक *श्रीआचार्यजी में प्रीति होई तब अमला कहिए ॥ दामोदरदास को एक दृढ भाव श्रीआचार्यजी में हे ॥ जो दामोदरदास की गोद में माथो धरके श्रीआचार्यजी पोढे हते ॥

---

१ स १७५२ में लिखित पुस्तक को अक्षरशः उतारो ।

* धर्मी विप्रयोगात्मक स्वरूप में प्रीति, माने सर्वात्मभाव होय सो अमला

सो श्रीगोवर्धनधर साक्षात् पधारे ॥ तब बरजे, "निकट मति आवो, महाप्रभुजी जगेंगे" एसो दृढ भाव हे ॥ जो ऊठि के श्रीठाकुरजी को दंडोत हू न कीए ॥ ओर श्रीगुसांईजी पूछे ॥ श्रीठाकुरजीसें बडे क्यों कहे ? तब दामोदरदासने कहि ॥ दान बडो के दाता बडो ! दाता जहां देई तहा दान चलो जाई ॥ जहां चाहे तहां दाता दानकुं राखे॥ यह भाव दृढ हे जातें श्रीआचार्यजी दमला कहते ॥ जो कोइ प्रकारसें अन्यसंबंध[1]को गंध हूं नांहि हें ॥ तातें अमला हें ॥ ओर इनको नाम दामोदरदास यातें हे जो पुरुषोत्तमसहस्रनाम में श्रीआचार्यजी कहें हे॥ "दामोदरो भक्तवश्यो ॥" ओर श्रीसुबोधिनीजी मे विस्तार करिके लिखे हे ॥ जो पुरुषोत्तम साक्षात् भक्तन के बस देखाए॥ सो अपनो बंधन छोटि न सके ॥ ओर जसोदाजी को व्रजभक्तन को (स्वरूप) दिखाए॥ जसोदाजी इतनें भक्त हे जो श्रीठाकुरजी को बांधे सो उन भक्तन क संमति देखि के बंधाने जो दाम व्रजभक्त लाए हे ॥ परंतु जसोदाजी को बंधन छुडाइबे कि सामर्थ नाहि हें ॥ तातें जमलार्जुन वृक्ष गिरें ॥ तब सोर भयो ॥ तब व्रजभक्तनने दाम छोरे हे ॥ तातें श्रीठाकुरजीसें जसोदाजी बडे ॥ श्रीदामोदरजी सें व्रजभक्त बडे. सो भक्तवत्सलता प्रग करी तेसें ही दामोदरदास नाम करि दामोदरदास के–अनन्य भक्त के बस श्रीआचार्यजी हें ॥ तातें कहतें "दमला यह मारग तेरे लिये प्र कीयो हें ॥" तातें यह आयो जो ओर भक्त बहोत हें परंतु दे बस हों यह जनाए ॥

---

[1] अन्यसंबंध=संयोगात्मक कामभाव [देखो प्रसंग १० के र

आर दामोदरदास को अलौकिक सरूप हें सो ललिताजी को प्रागटय हे ॥ उहां सगरी रहस्य लीला में श्रीस्वामिनीजी की आज्ञाकारी जेसें ललिताजी तेसे हि इहां श्रीआचार्यजी की आज्ञाकारनी ललितारूप दामोदरदास ॥ जो जनमते ही तें बाल ब्रह्मचारी सखीरूप गृहस्थाश्रम को जानत नाहीं ॥ सो ललिताजी को भाव यह कीर्तन में जाननो ॥

दामोदरदासको अलौकिक आधिदैविक स्वरूप

(जन्म ३)

राग केदारो ॥

हँसि हँसि दूध पीवत नाथ ॥

मधुर कोमल बचन कहि कहि प्रान प्यारी साथ ॥ १ ॥
कनक कटोरा भयौं अमृत दियो ललिता हाथ ॥
लाडिली अचवाय पहले पाछें आप अघात ॥ २ ॥
चिंतामनि चित बस्यो सजनी निरखि पिय मुसक्यात ॥
स्यामा स्याम कि नवल छबि परी रसिक बल बल जात ॥ ३ ॥

याको यह भाव कहत हें ॥ जो दोऊ स्वरूप रतन खचित सज्या पर बिराजे हें ॥ तहां ललिताजी कनककटोरा में दूध ओटि कें मिश्री सुगंध डारि ले आई ॥ तव ललिताजीने बिचार कीए जो दोउ स्वरूप बिराजे हें ॥ पहले मे श्रीस्वामिनीजी के हाथ में देउगी तो श्रीठाकुरजी कौ पान कराय कें पान करेगी ॥ तहां मनोरथ सिद्ध न होइगो ॥ तातें

श्रीठाकुरजी के हाथ में देउंगी ॥ तब पहले पान श्रीस्वामिनीजी करेंगी ॥
तातें दूध को कटोरा श्रीठाकुरजीके हाथ में दीयो ॥ तब ललिती अच-
वाय पहले पाछे आप अवात ॥ काहेतें इनके हाथसो वे अरोगे ॥ उनके
हाथ सो चिंतामनिरूप श्रीठाकुरजी श्रीस्वामिनीजीके हृदय में हैं ॥
तातें श्रीस्वामिनीजी के पान कीए श्रीठाकुरजी तृप्त होत हे ॥ या
प्रकार ललिताजी की प्रीतिचातुर्य देखि के श्रीठाकुरजी मुसिकाने ॥ यह
नवल छबि दूध पान करिवे के समय की सोभा उपर में (श्रीहरिरायजी)
बलिहारी जात हो ॥ या प्रकार को भाव दामोदरदास कों श्रीआचार्यजी
महाप्रभूनमे हे ॥ तातें न्यारी श्रीठाकुरजी की सेवा नाहि पधराई ॥
श्रीआचार्यजी महाप्रभु ठाकुर हे* ॥ इनकी " मानसी सा परा मता "
मानसी सेवा के अधिकारी हे ॥ लीलारसमे मगन रहत हे ॥

पाछे एक समें श्रीआचार्यजी महाप्रभु आप व्रजमें पाउ
धारें ॥ तब दामोदरदास साथ हे ॥

वार्ताप्रसंग १
आध्यात्मिक स्वरूप
(जन्म २)

श्रीआचार्यजी महाप्रभु आप दामोदर-
दासकु दमला कहते ॥ ओर कहेते जो
" दमला यह मार्ग तेरे लीये प्रगट
कीयो है" ॥ सो श्रीगोकुल में चोतरा
एक गोविंदघाट उपर हतो ॥ सो ता ठोर छोकर के नीचे श्री

---

१ पुरुषं न पुनस्तदन्तरगत प्राप्तीविशल्यविंद । (स्तो० पद्य)
* पुंभावरूप विप्रयोगात्मक स्वरूप (त्रिविधभावना)
२. हृदयगत धर्मी विप्रयोगरूप भावात्मक लीला " नमामि हृदये शेषे " यह भावमय लीला ।

आचार्यजी आप विश्राम करते ।। सो ताके पास श्रीद्वारिका-नाथजी को मंदिर हे ।। तहां श्रीआचार्यजी को चिंता उपजी[२] ।। जो श्रीठाकुरजीने आज्ञा दीनी हें ।। जो जीवन को ब्रह्मसंबंध करवाओ ।। तातें श्रीआचार्यजीने विचार्यो जो जीव तो दोष सहित हे ।। ओर श्रीपूर्णपुरुषोत्तम तो गुननिधान हे ।। एसें संबंध केसें होय ? तातें चिंता उपजी ।। सो अत्यंत आतुर भए ।। ता समें श्रीठाकुरजी तत्काल प्रगट होइके श्रीआचार्यजी महाप्रभु सों पूछी ॥ जो तुम चिंता–आतुर क्यों हो ? तब श्री आचार्यजी महाप्रभु आप कहे ।। जो जीवको स्वरूप तो तुम जानत ही हो, दोषवंत हे ।। जो तुमसो जीवन को सबंध केसे होइ ? तब श्रीठाकुरजी कहें जो तुम (जा) जीवनकू ब्रह्म-संबंध करो ताको हो अंगीकार करुंगो ।। तुम जीवन को नाम देउगे तिनके सकल दोष निवृत्त होइगे ।। तातें तुम जीवन को अंगीकार करो ॥

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

जीवन के उद्धारिवे की चिंता भई ।। ताको कारन यह ।। जो उत्तम वस्तु को अंगीकारि कराए सुख लेई ।। प्रीतम को मध्यम वस्तु दोषसहित जीव केसे अंगीकार कराइए ? यह मारगकी रीति हे ।। तथा जगत में महात्मी जीव हे ।। जो आप ब्रह्मसंबंध करावे तो लोक मे जीवको दृढ विश्वास कोइ एक को होइ ।।

---

२ यहा श्रीआचार्यजी की बेठक हे (ऐतिहासिकतत्त्व) सभव हे यह जगह पहले द्वारकाधीशके मदिरमें मिलि गई हो ।

तातें श्रीठाकुरजी के मुखतें ब्रह्मसंबंध की आज्ञा कराए ॥ तामें जीवनको विश्वास दृढ कराए जो श्रीआचार्यजी को वचन दीये हे ॥ जाको ब्रह्म संबंध होइगो ताकों न छोडेंगे ॥ यह माहात्म्य तें जीव ब्रह्मसंबंध सब करेगे ॥ तातें श्रीठाकुरजी सो कहवाए ॥

वार्ता प्रसंग १ शुरु

ए वार्तें श्रावन सुदि एकादशी[1] के दिन मध्यरात्र कों भई ॥ प्रातःकाल पवित्रा द्वादशी हती ॥ तातें पवित्रा सूत को सिद्ध करी राख्यो हतो ॥ सो पवित्रा ता समे के अक्षर हे ताको श्रीआचार्यजीने "सिद्धान्तरहस्य" ग्रन्थ कीयो हे ॥[2]

[3]ता समें दामोदरदास नेक दूरि सोये हते ॥ तातें दामोदरदास सो श्रीआचार्यजीने पूछी जो दमला, तें कछु सून्यो ? तब दामोदरदास नें कह्यो जो महाराज मेने श्रीठाकुरजी के वचन सुने तो सही ॥ परि समुझ्यो नाही ॥ तब श्री आचार्यजी आप कहे ॥ जो मोको श्रीठाकुरजीने आज्ञा कीनी हे ॥ जो तुम जीवनको ब्रह्मसंबंध करवावो ॥ तिनको हों अंगीकार करूंगो ॥ और जीनको तुम नाम देउगे ॥ तिनके सकल दोप निवर्त्त होइगे । ताते ब्रह्मसंबंध अवश्य करनो ॥

---

१ સન સં. ૧૫૫૦ના શ્રાવણ સુદ ૧૧ ના રોજ

૨ આ પ્રસંગની સત્યતારૂપે ગ્રન્થ વિદ્યમાન છે

૩ અહીં હાલ પણ દામોદરદાસજીની બેઠક છે,

दामोदरदास ने कही मेनें श्रीठाकुरजी के वचन सुने परि समुज्यो नाही ।। ताको कारन यह जताए जो एकादसाध्यायमें भगवद्गीतामें श्रीठाकुरजी के वचन हे सो अपुने पढिके समुझो चाहे सो समुझे न जाई[2] ।। जब गुरु कृपा करे तब समुझो जाई[3] ।। तातें श्रीठाकुरजी के कहेतें दामोदरदास समुझे तब श्री ठाकुरजीके सेवक भए ।। तातें दामोदरदास श्रीआचार्यजी के सेवक हे ।। जब श्रीआचार्यजी समजावे तब ही समुझे ।। यह कही (यह) जताए ।। जो हृदय में दृढ ज्ञान गुरुकी कृपाहिते होई ।। स्वामी सेवक भाव प्रगट दिखाए ।। जो दामोदरदास कहे समुझे ।। तो श्रीआचार्यजी की बरावरि ज्ञान कह्यो जाई तातें कहे में समुझ्यो नांहि ।। अथवा कहे में समुझे नाहीं मेरे समुझवे को कहा प्रयोजन हे[4] आप कहे ताके समुझवे को प्रयोजन मोकों हे ।।

श्रीहरिरायजी कृत भाव प्रकाश

वार्ताप्रसंग १ शुरु

(ख) ओर कथा कहेत में श्रीआचार्यजी दामोदरदास सों कहते ।। जो दमला बडी बार भई हे श्रीठाकुरजी का वार्ता नांहि करी ।।

---

१ न तु मां शक्यसे...એ શ્લોકનો ફલિતાર્થ—ગીતામા શ્રીકૃષ્ણ ઉપદેશક રૂપે હોવાથી ગુરૂરૂપે કહ્યા.

२ तत्स्वरूपं तु दुर्ज्ञेयं स्वसामर्थ्येन सर्वथा ।।
(શ્રીહરિ૦ કૃત૦ માર્ગસ્વરૂપ નિ૦)

३ ज्ञात तत्फलद, तत्र हेतुस्तद्गुरुसश्रय. ।।
(શ્રીહરિ૦ કૃત૦ સ્વમાર્ગમર્યાદા નિ૦)

ताको तात्पर्य यह हे जो श्रीठाकुरजी की वार्त्ता आपु श्रीस्वामिनी रूप, दामोदरदास ललितासखी रूप ॥ सो

श्रीहरिरायजी कृत भाव प्रकाश

ललिता सो एकांत रहस्यवार्ता श्रीठाकुरजी के मिलन को प्रसंग प्रथम जा प्रकार लीला करी हे सो नाही करी ॥ सो करन के लिए सबन के आगे एसे कहते ॥ (जो) कथा कहत समे ॥ श्रीठाकुरजी की वार्ता नाहीं करी ॥

इति प्र. १. समाप्त.

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

દામોદરદાસ હરસાનીજીની વાર્તાના પ્રસંગોનું પરિશિષ્ટ રહસ્ય

પ્રસંગ ૧ બ્રહ્મસંબંધનો:—

આ ભાવાત્મક પુષ્ટિમાર્ગના પ્રભુ કૃષ્ણ પણ "**रसो वै सः**" એ શ્રુતિને અનુસાર ભાવાત્મક રસ રૂપજ છે એટલે તેમના સબધી આ પુષ્ટિમાર્ગની સર્વ વસ્તુ ભાવરૂપ રસરૂપ જ—જાણવી આ ભાવાત્મક સ્વરૂપનો સબધ પણ ભાવાત્મક જ છે (**मुख्यो हि ब्रह्मसम्बन्धः, स भावात्मक एव हि**) તેમજ આ પુષ્ટિમાર્ગના પ્રકટકર્તા, શ્રીકૃષ્ણના મુખારવિંદરૂપ ભક્તોના અનુભવમા આવેલા શ્રીઆચાર્યજીનુ સ્વરૂપ પણ ભાવાત્મક જ છે એટલે આ સમગ્ર ભક્તિમાર્ગ પણ ભાવાત્મક જ છે (**तेन भावात्मको मार्गः**-) અત આ માર્ગના પ્રમાણ પ્રમેય સાધન અને ફલ પણ ભાવાત્મક શ્રીકૃષ્ણ જ છે. અને તે શ્રીગોકુલનાથજીએ આ પ્રસગમા સૂક્ષ્મરૂપે કહેલા છે (જુઓ દામો૦ ની વાર્તાનુ સ્વરૂપ અને રહસ્ય)

હવે આ પ્રસગમા એક શંકા થાય છે કે —

પૂર્વપક્ષી:—જેઓ પોતાના અને બ્રહ્મના સ્વરૂપને અજ્ઞાનથી ભૂલી ગયેલા છે, અને અવિદ્યાથી દોષને પ્રાપ્ત થયા છે, એવાને માટે બ્રહ્મસંબધની આવશ્યકતા છે એ તમારૂ કહેવુ ઠીક છે પરતુ દામોદરદાસજી તો શરણે આવ્યા પહેલા જ પોતાના અને શ્રીઆચાર્યજીના અલૌકિક સ્વરૂપને (જન્મથી જ) જાણતા હતા તેમજ તેઓની અતર્દષ્ટિ હોઈ અલૌકિક ભગવત્સબધને પ્રાપ્ત થયેલાજ હતા તે તેમના ભૌતિક ઇતિહાસમા કહેલુ છે ત્યારે એમને બ્રહ્મસબંધ લેવાની શી આવશ્યકતા? અને શ્રીઆચાર્યજીએ એમને પ્રથમ બ્રહ્મસબંધ કેમ કરાવ્યુ?

સિદ્ધાન્તી:—તમારો પ્રશ્ન યથાર્થ છે. પરંતુ આ ભાવાત્મક ભક્તિમાર્ગનું બ્રહ્મસંબંધ પણ ભાવાત્મક છે અને આ નિર્દોષ ભાવાત્મક સંબંધમાં શૃંગારરસના આધારભૂત સ્થાયીભાવની સ્થિતિ છે " **शृंगार रससंस्थानं स्थायी भावः प्रभुर्मत ।** " માટે આ બ્રહ્મસંબંધ તે સ્થાયીભાવના આલંબન ભાવરૂપ જાણવું પુષ્ટિમાર્ગમાં જે શ્રીકૃષ્ણ તત્ત્વરૂપે છે, તે રસરૂપ કહેવાય છે " **रसो व स** " **इति श्रुत्या रसात्मा स विनिरूपितः ॥** અને તે સ્વામિનીજીના હૃદયમાં સ્થિત સ્થાયી ભાવાત્મક પ્રભુ કૃષ્ણ છે. " **तदेकहृदयस्थायी तद्भाव-रूपण एव हि** " અને તે રસાત્મક કૃષ્ણની સેવાજ પુષ્ટિમાર્ગમાં છે, તે સેવાનો અધિકાર બ્રહ્મસંબંધદ્વારા પ્રાપ્ત થાય છે. માટે આ બ્રહ્મ-સંબંધ તે રસાત્મક સ્થાયીભાવરૂપ પ્રભુનો આલંબન ભાવ જાણવો. આલંબન વિના રસની સ્થિતિ નથી માટે શ્રીઆચાર્યજીએ બ્રહ્મસંબંધ રૂપી આલંબન દ્વારા સમગ્ર દૈવી જીવોના આધિદૈવિક મૂલભૂત દામોદર-દાસજીના હૃદયમાં પ્રમાણ તરીકે ભાવાત્મક સ્થાયીભાવરૂપ રસાત્મા પ્રભુને સ્થાપ્યા.

આ પ્રકારે દામોદરદાસજીના હૃદયમાં સર્વ પ્રથમ નિરોધાત્મક પુષ્ટિમાર્ગના ભાવાત્મક સ્વરૂપની સ્થિતિ કરી અને તેમની દ્વારા સમગ્ર પુષ્ટિસૃષ્ટિમાં રસરૂપ સ્થાયી ભાવ કૃષ્ણની સ્થાપનાર્થ તેમને સર્વ પ્રથમ બ્રહ્મસંબંધ કરાવવાનું કોઈ પ્રયોજન રહેતું નથી જ.

આ પ્રસંગમાં (બ્રહ્મસંબંધના) શ્રીગોકુલનાથજીએ શ્રીઆચાર્યજીના વલ્લભ (લીલામધ્યપાતી દાસ્યરૂપ) સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કર્યું છે અને તેના રહસ્યનું સૂક્ષ્મસ્વરૂપ શ્રીહરિરાયજીએ " **प्रीतमको मध्यम वस्तु दोषसहित जीव कैसे अंगिकारि कराइये.** " આ શબ્દોમાં સમજાવ્યું છે

આ દાસ્યરૂપ સ્વરૂપને શ્રીદ્વારકેશજી ભાવનાવાળા ગેર માહાત્મ્ય રૂપે ઓળખાવે છે, અને તે આ પ્રમાણે —

શ્રીઆચાર્યજીનું શેષ માહાત્મ્ય સ્વરૂપ

ફલપ્રકરણમા ભગવાને ગોપીજનોને કહ્યુ કે, '**न पारयेह निरवद्य संयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः**' દેવતાની આયુષ્ય લઈને તમારૂ ભજન કરીએ તો પણ પાર ન આવે આ શ્રીમુખથી આજ્ઞા કરી, પરતુ કૃતિમા ન આવી શ્રીમુખથી કહ્યુ માટે શ્રીમુખાવતારનુ પ્રાકટ્ય થાય ત્યારેજ વચનનુ પ્રતિપાલન થાય માટે શ્રીમુખાવતાર શ્રીવલ્લભાધીશે પ્રગટ થઈ સેવા કરી સેવાના અધિકારી તો વ્રજભક્તો છે, માટે તેમના ભાવનુ અનુસરણ કર્યુ (**सेवारीत प्रीत व्रजजनकी जनहित जग प्रगटाई**) આ પ્રકારે દાસ્યભાવ કર્યો તેથી આપ આજ્ઞા કરે છે કે, '**इति श्रीकृष्णदासस्य वल्लभस्य हितं वच** ॥ અહિ સેવા તે શ્રીગોપીજનોના હૃદયસ્થિત ભાવાત્મક સ્વરૂપ કૃષ્ણ (શ્રીગોપીજનવલ્લભ) ની માટે "**कृष्णसेवा सदा कार्या**" એમ આજ્ઞા કરી છે.

આ શેષ ભાવનો અનુભવ (આપ) "**नमामि हृदये शेषे**" એ વાક્યમા કરે છે

આ સ્વરૂપની કૃપાજ પુષ્ટિમાર્ગમા ફલરૂપ છે, અને તે અત્યત દુર્લભ છે

શ્રીઆચાર્યજી તૃતીય સ્વરૂપે (**रूपं तत्त्रितयात्मकं**) જેમ લીલાના મધ્યપાતી છે તેમ ભૂતલમા પણ વલ્લભસ્વરૂપે દૈવી જીવોના સમુદ્ધારક છે

જેમને અલૌકિક આભરણ હોય તેજ ઉદ્ધારક થઈ શકે—તે અલૌકિક આભરણ ("**हियें हार बिनु डोर**" એ દૃષ્ટાતરૂપ) શ્રીઆચાર્યજીમાં સૂચન કરવાને અર્થે શ્રીગુસાંઈજીએ આપનુ નામ સર્વોત્તમમા "**अप्राकृताखिलाकल्पभूषितः**" એમ યોજ્યુ છે તેમજ

" श्रीभागवतप्रतिपदमणिवरभावांशुभूषिता

સમશ્લોકીમા મૂર્તિઃ" એમ કહેલુ છે.

આ પ્રકારે લીલાસંપાદનકર્તાઅને જીવોના ઉદ્ધાર કર્તા દાસ્યરૂપ

શ્રીવલ્લભનુ સ્વરૂપ આ બ્રહ્મસંબંધના પ્રસગમા નિરૂપ્યુ છે

वार्ता प्रसंग २

ओर श्रीआचार्यजीनें श्रीठाकुरजीकी पास तीन वार यह मांग्यो ॥ जो मेरे आगे दामोदरदास की देह न छुटे ॥ ताको हेतु यह हे जो श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप संन्यास ग्रहण करिवेको विचार मनमें करे ॥ ता समें श्रीगोपीनाथजी तथा श्रीगुसांईजी दोउ भाई वालक हते ॥ तातें मार्गकी वार्ता श्रीआचार्यजी महाप्रभु दामोदरदासको समझाईके थापी ॥ दामोदरदास सों कछु गोप्य - राख्यो ॥ ओर श्रीआचार्यजी श्रीभागवत अहर्निश देखते, कथा कहते ओर दामोदरदास सुनते ॥ ओर मार्गको सब सिद्धांत भगवद्लीलारहस्य श्रीआचार्यजीने दामोदरदासके हृदय विषे स्थाप्यो' ॥ दामोदरदासके हृदे विषे मार्ग स्थापि केतेक दिन पाछे श्रीआचार्यजी आप संन्यास ग्रहण कीयो ॥ तब केतेक दिन पाछें श्रीगुसांईजीनें श्रीअक्काजीसों पूछी ॥ जो आचार्यजीने मार्ग प्रकट कीयो हे सो उच्छवको कहा प्रकार

---

१ અહીં શૃંગારરસનો સ્થાયી ભાવ જણાવ્યો છે અહીં આ વાક્યનું અનુસંધાન કરો-'दमला प्रभुदास बडभागी ताको पुनि पुनि आप सिरावे ॥

हे ॥ हम तो कछु जानत नाही ॥ तब श्रीअक्काजीने कह्यो ॥ जो मारग तथा उत्सव को प्रकार सब दामोदरदास सों कहे हे ॥ सो उनसों तुम पूछो ॥ तुमसों दामोदरदास सब कहेंगे ॥ तब श्रीगुसांईजी दामोदरदास के घर पधारे ॥ तब दामोदरदासने बहुत सन्मान करी भक्तिभावसों घरमें पधराए ॥ ता पाछे श्रीगुसांईजीने उच्छव के प्रकार पूछे ॥ सो दामोदरदासने कहे[1] ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

यामें संदेह बहोत हे ॥ जो श्रीआचार्यजी कर्तुं, अकर्तुं अन्यथा कर्तुं सर्वसामर्थ्ययुक्त हे ॥ सो श्रीठाकुरजी पास क्यों मागे ? ताको अभिप्राय यह हें जो दामोदरदास कों प्रेमलक्षना भक्ति दृढ होई चुकि हे ॥ ओर ललिताजी को स्वरूप हे ॥ सो श्रीठाकुरजी कों परमप्रिय हे ॥ सो ललिताजी मध्याजी हे ॥ दोउ स्वरूप की सेवा मे मगन हे ॥ सो श्रीआचार्यजी के दर्शन ओर श्रीठाकुरजीके दर्शन दोउ में भाव हे ॥ जातें श्रीआचार्यजी श्रीठाकुरजी सों कहे जो में दामोदरदास कों जैसे नित्य अनुभव करावत हों तेसें तुमहू नित्य अपने स्वरूप कों अनुभव कराईयो ॥ यह कहिके यह जताए जो दामोदरदास पर अत्यंत प्रीति श्रीआचार्यजी की हें ॥ तातें जाने जो मति कहू मेरे पाछे दमला कोई बात सों दुख पावे ॥ तातें श्रीठाकुरजी सों कहे ॥

---

१ આ પ્રસંગમાં શૃંગારરસનો સંચારી ભાવ કહ્યો છે

ओर मारग दामोदरदासके हृदयमें स्थापन किये (सो) श्रीगुसांईजी के लीए ॥ ताको तात्पर्य यह हे जो यद्यपि श्रीगुसांईजी ईश्वर हे, बालक हें, तो कहा भयो? परंतु श्रीआचार्यजी महाप्रभु अपुनो भक्तिमारग दामोदरदास के हृदयमें स्थापन करते ॥ आपु श्रीमुखतें कहतें "यह मारग दमला तेरे लिए प्रगट कियो हे" तातें वैष्णवके हृदयमें स्थापन करे तो आगे वैष्णव में फेले ॥ जो श्रीगुसांईजीके हृदय मे प्रथम धर्म रहे ॥ तो गोकुलमें हि धर्म रहतो ॥ गोकुलमें तो पहलेंहीसों शेष अशेष माहात्म्य धारन कीए हें ॥ काहेतें बिंदुसृष्टि हे। ओर वैष्णव सो तो नादसृष्टि हे ॥ तातें इनकों तो भक्ति दिये तें होई ॥ तातें गोपालदास गाये हें ॥ "भक्तिमारगीय जीव स्वतंतर केवल भक्त न थाय" ॥ तातें भक्तिमार्गीय जीव स्वतंत्र हे ॥ दैवी ॥ परंतु केवल आपतें भक्ति न वढे ॥ तातें श्रीआचार्यजी नवरत्न में कहे हें ॥ "निवेदनं तु स्मर्त्तव्यं सर्वथा तादृशैरपि" या प्रकार भक्तनके हृदयमे राखें ॥ तातें भक्तिमारग प्रकट भयो ॥ नहिं तो ईश्वरमारग कहावतो ॥ (तहां केवल) ईश्वरमारग कहावें ॥ भक्तिमारगमें ईश्वर हू मारग कहावे ॥ जहां भक्ति तहां भगवान ॥ जहा भक्ति नांहि तहां भक्तिमारगकी रीति सों भगवान न रहें ॥ अंतर-जामी व्है आप रहे ॥ ताते भक्तनको उत्कर्ष जामें होई सो भक्तिमारग कहावें ॥

॥ इति ॥ प्रसंग २ समाप्त ॥

---

१ कृष्णाधीना तु मर्यादा स्वाधीना पुष्टिरुच्यते ॥ દામોદરદાસમાં આ પ્રકારની સ્વતન્ત્ર ભક્તિ સ્થાપી.

પ્રસંગનું પરિશિષ્ટ રહસ્યઃ—

આ પ્રસગમા શ્રીગોકુલનાથજીએ આચાર્યસ્વરૂપનુ પ્રતિપાદન કર્યું છે. પુષ્ટિમાર્ગના સ્થાપક ભક્તિરૂપ કમલના સૂર્ય શ્રીકૃષ્ણની સેવારૂપ કર્મના પ્રવર્તક, શ્રીકૃષ્ણરૂપ જ્ઞાનના દેવાવાળા–ગુરુરૂપ શ્રીઆચાર્યજીનુ સ્વરૂપ છે આપ પુષ્ટિમાર્ગના સ્થાપનકર્તા હોઈ તે માર્ગની રક્ષાના અર્થે તેમજ પુષ્ટિમાર્ગના કર્મરૂપ શ્રીકૃષ્ણની સેવાની ઉંત્સવપ્રણાલી આદિની રક્ષાને અર્થે શ્રીઠાકુરજી પાસે દામોદરદાસની સ્થિતિ માગી.

ત્રણવાર માગવાનુ કારણ એ કે જે વાત ત્રણવાર કહેવામા આવે તે લોકમા પણ પ્રમાણરૂપ થાય છે. બીજુ, મન વાણી અને ક્રિયા એમ ત્રણે પ્રકારે દામોદરદાસને અનુભવ કરાવવાનો શ્રીઆચાર્યજીએ શ્રીઠાકોરજીને સકેત કર્યો. જેથી સયોગરસનુ દાન થવાથી દેહ ટકી રહે એ મૂળ હેતુ છે

આચાર્યસ્વરૂપને શ્રીદ્વારકેશજી ભાવનાવાળા અશેષ માહાત્મ્યસ્વરૂપે ઓળખાવે છે તે આ પ્રકારે —

પ્રભુએ પોતાના નિજમાહાત્મ્યને દૈવીજનો પ્રતિ ભૂતલમા પ્રકટ કરવાના અર્થે નિજ મુખારવિંદરૂપ શ્રીઆચાર્યચરણને ત્રણ પ્રકારે પ્રકટ થવાની આજ્ઞા આપી

૧ સન્મનુષ્યાકૃતિરૂપે પ્રકટ થાવ, જેથી સુંદર સ્વરૂપ નિરખીને દૈવી જીવો પ્રેમપૂર્વક શરણ આવે

૨ અતિકરુણાવત રૂપે પ્રકટ થાવ, જેથી દોષવત જીવો નિકટ આવી ઉપદેશ લઈ શકે

૩ હુતાશરૂપે પ્રકટ થાવ જેથી શરણે આવેલા જીવોના પાપપુજનો દાહ સહજે થઈ જાય

આ ત્રણ પ્રકારનુ જનઉદ્ધરણરૂપ શ્રીઆચાર્યજીનુ સ્વરૂપ તે અશેષ માહાત્મ્યરૂપ જાણવુ

આ અશેષ માહાત્મ્યનુ સ્વરૂપ શ્રીઆચાર્યજીએ સકલ બાલકત્વાવચ્છિન્ન વિષે ભૂમિમા ભક્તિરૂપી ભગવન્માહાત્મ્યના પ્રચારાર્થે સ્થાપન કર્યું છે.

बहुरी एक समय दामोदरदास ओर श्रीगुसांईजी एकांतमें वेठे हते ॥ तव श्रीगुसांईजी दामोदरदाससों पूछे ॥ जो तुम श्रीआचार्यजी को कहा करि के जानत हो ? तव

वार्ता प्रसंग ३

दामोदरदासने कह्यो जो हम तो श्रीआचार्यजी महाप्रभून को जगदीस सो संसार में सव कोऊ कहत हें जो सवतें वडे जगदीस श्रीठाकुरजी हें, तिनतें अधिक करि जानत हें ॥ तव श्रीगुसांईजी दामोदरदास सों कहे ॥ जो तुम एसे क्यों कहत हो ! जो, श्रीठाकुरजी तें वडे हे ? तव दामोदरदास नें श्रीगुसांईजीसों कह्यो जो महाराज, दान वडो के दाता वडो ? काहुके पास धन वहोत हें तो कहा करे ? देई ताको जानिये ॥ ओर श्रीआचार्यजी महाप्रभुनको सर्वस्व धन श्रीनाथजी हे ॥ सो हम जेसे जीवनको आपु दान कीयो हें ॥ तातें हम श्रीआचार्यजी को सर्व ते वडे करि जानत हें ॥[1]

इति वार्त्ता प्र. ३ समाप्त ॥

---

१ અહિં શ્રીઆચાર્યજીના સુધાસ્વરૂપનુ પ્રતિપાદન છે દેહભાવ રહિત પુરુષાકાર સુધાનુ સ્વરૂપ આ પ્રમાણે સમજવું.—ત્યાં દેહ અને આત્મા ભિન્ન નથી દેહ એજ આત્મા છે અને આત્મા એજ દેહ છે દૃષ્ટાન્ત રૂપે—સિદ્ધ ગર્વપાગ્મો દ્વારા તાદૃશ થતુ સાકાર ગગનુ સ્વરૂપ આવી જ રીતે આ સુધા ભાવાત્મક સાકારરૂપ છે. તે સાકારપણામાં દેહભાવ નથી તેથી તે નિર્ગુણ છે અને તે પુરુષાર્થરૂપ હોવાથી પુરુ-

૨ सेवकः सेव्य यादृशरूप पश्यति स्वस्यापि तादृशं रूपं सपादयति। (१–२–२३)

આ શ્રીહરિરાયજીકૃત ભાવપ્રકાશનુ મૂળ શ્રીહરિ૦કૃત સ્વમાર્ગીયસેવાફલનિ૦ મા છે જુઓ.—

एवमेव हि तद्भक्ते. स्वातन्त्र्य नान्यथा भवेत् ॥ ५ ॥ ત્યાથી यतो भगवता प्रोक्त.. ત્યા સુધી (૧૦ફે) ના શ્લોકોને આ ફલિતાર્થ સમજવો તે શ્લોકોમા બતાવેલી રાસસ્ત્રીઓની સ્વતત્રભક્તિ શ્રીઆચાર્યજીએ નિજ સેવકોમા સ્થાપી છે–તેથી શ્રીઆચાર્યજીના સેવકોમા મુખ્ય દામોદરદાસ આદિ સ્વતન્ત્ર ભક્તો છે અને તેમના અર્થે જ સમર્પણની આજ્ઞા અને પુષ્ટિમાર્ગનુ પ્રાકટ્ય છે એવા શુદ્ધ પુષ્ટિભક્તોમા શ્રીમહાપ્રભુજીનો આવેશ નિત્ય હોવાથી શ્રીગુસાઈજીએ પણ આજ્ઞા કરી કે "जो हमकों यह वार्ता श्रीआचार्यजी महाप्रभू तुम द्वारा कहे" (वार्ताम्प्रायस्तवास्यत ॥ (सस्कृत वार्ता) તેજ વાતની પુષ્ટિને અર્થે શ્રીહરિરાયજી स्वमार्गीयसेवाफलनि० ના ૧૧ મા શ્લોકમા આ પ્રકારે આજ્ઞા કરે છે કે –श्रीमत्प्रभोस्तु तद्दानमाचार्येभ्यो न सशय ॥ શ્રીગુસાઈજીને જે ભાવપ્રાપ્તિ (સ્વતન્ત્રભક્તિ) થઈ, તે અસ્મદાચાર્યવર્ય શ્રીમદ્દ વલ્લભાધીશદ્વારાજ થઈ, તેમા કશો શક નથી માટે જ શ્રીહરિરાયજીએ અહીં ભાવપ્રકાશમા કહ્યુ છે કે दामोदरदास की देह मात्र दीखत हे ॥ परतु श्रीआचार्यजी को आवेश अष्टप्रहर रहत हे ॥ जो मुखतें श्रीआचार्यजी बोले हे ॥ આ પ્રમાણે શ્રીહરિરાયજીના સસ્કૃત ગ્રન્થો શ્રીહરિરાયજીએ વ્રજભાષામા કરેલા આ ભાવપ્રકાશ સાથે સર્વ સમત રૂપે હોવાથી આ ભાવપ્રકાશની પ્રામાણિકતા પણ સિદ્ધ થાય છે શુ આવા રહસ્યો અને અન્તરગી પ્રકારો લીખીયાઓ સમજી શકે ?

આ પ્રસગમા શ્રીઆચાર્યજીનુ ભક્તહૃદયસ્થિત વિપ્રયોગાત્મકૃષ્ણાસ્ય સ્વરૂપનુ પ્રતિપાદન છે આ પ્રસગમા શૃગારરસનો સચારી ભાવ કહ્યો છે.

(क) ओर एक दिन दामोदरदास के पिता को श्राद्ध दिन हतो ॥ ता दिन श्रीगुसांईजी तहां

वार्ता प्रसंग ५

पधारे ॥ वाके पिता को श्राद्ध करवायो ॥ पाछें उत्थापन के समें दामोदरदास दरसनकों आए ॥ तब श्रीगुसांईजी ने कही ॥ जो मोकूँ श्राद्ध की दक्षिणा देउ ॥ तब दामोदरदास ने कही जो दक्षिणा में एक वात कहूंगो ॥ सो सिद्धान्तरहस्य के डेढ श्लोक को व्याख्यान कहे ॥ यह एसी बात हे ॥ तब श्रीगुसांईजी कहे जो आगे कहो ॥ तब दामोदरदास ने कही जो मेने तो इतनो संकल्प कीयो हे ॥ तब श्रीगुसांईजी चुप करि रहें ॥ पाछें दामोदरदासने मारग की मणालिका कही ॥ ॥ श्रीभागवतकी टीका श्रीसुबोधिनीजी श्रीआचार्यजी महाप्रभूनके ग्रन्थनकी टीका ओर रहस्यवार्ता श्रीगुसांईजीकी आगे सब कहें ॥

(ख) ता पाछें श्रीगुसांईजी दामोदरदास को नमस्कार करन न देते ॥ याते जो श्रीगुसांईजी अपने मनमें यों विचारे जो श्रीआचार्यजी महाप्रभु दामोदरदास के हृदे विषे (सदा) सर्वदा वसत हें ॥ तो इन पास क्यों नमस्कार करन दीजे ? याते नमस्कार न करन देते ॥ ओर दामोदरदासको श्रीगुसांईजी अपनो चरणोदक हू न देते ॥

पाछें श्रीआचार्यजी महाप्रभूनने दामोदरदासको दरशन

दीनो ओर आज्ञा दीनी जो तू श्रीगुसांईजीको चरणोदक नित्य लिजियो ॥ तब प्रातःकाल दामोदरदास श्रीगुसांईजी के पास आए ॥ चरणोदक माग्यो ॥ तब श्रीगुसांईजीने चरणोदककी नाहीं कीनी ॥ तब दामोदरदासने श्रीगुसांईजी सो कह्यो जो मोकों श्रीआचार्यजीकी आज्ञा भई हे ओर श्रीआचार्यजी को दरशन भयो हे ॥ ओर कह्यो हें जो चरणोदक लीजियो ॥ तब श्रीगुसांईजीने चरणोदक दीनो ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

(क) श्राद्ध करायवेको अभिप्राय यह (हे) जो दामोदरदास के पितरन को उद्धार तो होइ चुक्यो ॥ जब ए भक्त में (हे) ॥ मर्यादामारग मे नृसिंहजीने प्रह्लाद सों कह्यो हें[1] एकीस पुरषा भक्त के तरे ॥ सो दामोदरदास तो पुष्टिमार्गीय हे ॥ तातें इनके पितर तरे यामें कहा सदेह हे ? परंतु पुष्टिमार्ग के संबंध दिना पुष्टिमार्ग मे अंगीकार न होई ॥ तातें श्रीगुसांईजी को सबंध श्राद्धद्वारा पाय पुष्टिमार्ग मे अंगीकार भयो ॥ जो दामोदरदास के श्राद्ध तें पुष्टिमार्गमे अंगीकार होई ॥ परंतु गुरुकी अपेक्षा हे ॥ गुरु विना अंगीकार मे दृढ अगीकार नांहि ॥ तातें श्रीगुसांईजीको सबंध कराए ॥

तहां यह सदेह होय जो दामोदरदासको श्राद्ध कराए ॥ इनके

---

१ त्रि सप्तभि पिता पूत पितृभिः सह तेऽनघ ।
यत्साधोऽस्य गृहे जातो भवान्वै कुलपावन ॥ श्री भा ७-१०-१८

नाहिं कराए ॥

पितरन को पुष्टिको संबंध भयो ॥ और भगवदीय को नाहिं कराए ॥ सो उनके पितरनको केसें होइगो ? यह संदेह होय तहां कहत हे ॥ यह पुष्टिमार्गीय देवी जीव के आधिदैविक (मूलभूत) दामोदरदास हे ॥ जहा इनके पितरन को पुष्टिसबंध भयो तब सगरे पुष्टिमार्गीयके पितरनको पुष्टिसंबंध भयो ॥ जेसे मारग, दामोदरदास के पितरन को पुष्टिसंबन्ध (भयो) एसे मारग दामोदरदास के लिए ॥ तामें सगरे पुष्टिमारग के (जीवन के) लिए ॥ या प्रकार मूलमें भक्ति ता करि के सबमें फेले ॥ या प्रकार दामोदरदासकी भक्ति करि के जीवमें भक्ति बढि हें ॥ जीवको सामर्थ्य नाहि हें ॥ जो पुष्टिमारगको भक्ति एक छिन करि शके ॥

और दक्षिणामें दामोदरदासने सिद्धांतरहस्य के डेढ श्लोक को व्याख्यान कियो ॥ तब श्रीगुसांईजी कहे आगे कहो ॥ तब दामोदरदासने कही जो मेंने तो इतनो (ही) संकल्प कीयो हे ॥ ताको कारन यह हे जो सत्यसंकल्प (तो) इतनेही में सगरो मारग हे ॥

(ख) श्रीगुसांईजी चरणोदक दामोदरदास को न देते दंडोत करन न देते ॥ सो यातें जो श्रीस्वामिनीजीको अनन्य सखी हे ॥ उनही को फेर ॥ तातें दामोदरदासने हठ नाहि कीयो ॥ पहले चरणोदक न लीयो ॥ तातें श्रीआचार्यजी (ने) दामोदरदास को समझायो ॥ जो तूं श्रीगुसाईजी को चरणोदक लिजीयो ॥ दडोत करियो में श्रीगुसाईजी के ह्रदय में विराजत हूं ॥ मेरो स्वरूप मोतें प्रगटे हे ॥ तब दामोदरदास

श्रीगुसांईजीसों यह भेद 'कहे' ॥ तब श्रीगुसांईजी कहे लेहू ॥ प्रसन्न होइके चरणोदक दीये ॥ जाने जो श्रीआचार्यजी के भावतें लेत हैं ॥ मेरे भावतें नांहि ॥

याही तें श्रीगोपीनाथजी यद्यपि (श्रीआचार्यजी के बडे पुत्र) श्रीगुसांईजी के बडे भाई हे ॥ परंतु काहू वैष्णवने चरणोदक नांहि लियो ॥ या भावतें श्रीगुसांईजी के सात बालक ओर वल्लभकुलके चरनोदकमें श्रीआचार्यजीको भाव जनायो ॥ तातें चरनोदक लेनो ॥ दंडोत करनो ॥ यह सिद्धांत जनायो ॥

इति प्र. ५ समाप्त.

---

१ भेद શબ્દથી લીલાના પ્રાકટ્યનો ભેદ સમજવો. "સંવાદ" માં દામોદરદાસજીએ શ્રીગુસાંઈજીને આ પ્રકાર સમજાવ્યો છે' તેનો ભાવાર્થ આ પ્રમાણે છે -જ્યારે દામોદરદાસ શ્રીગુસાંઈજીના ચરણમા પડ્યા ત્યારે શ્રીગુસાંઈજીએ તેમને શ્રીહસ્તથી ઉઠાડી અને પોતાને નમન આદિ ન કરવાની આજ્ઞા કરી ત્યારે દામોદરદાસજીએ આ ભેદ કહ્યો કે -લીલામાં મારૂં પ્રાકટ્ય આપથી જ છે (લલિતાજીનુ પ્રાકટ્ય ચંદ્રાવલીજીથી જ છે.) આ અર્થ અહિં ન લઈએ તો શ્રીગોપીનાથજી પણ શ્રીઆચાર્યજીના પુત્ર હતા તેથી તેમનું ચરણોદક લેવામા કશો વાધો ન જ હોય પરતુ જે ભગવદ્‌ભક્તોને મૂલ લીલાનું જ્ઞાન અને પોતાના સ્વરૂપનો અનુભવ છે તેઓની સર્વ ક્રિયા વાણી અને ભાવના પોતાના મૂલ સ્વરૂપ રૂપે જ સ્થિત રહે છે અને તે મૂલ સબધથી જ તે સર્વ કાર્ય અહીં પણ તે પ્રમાણે કરે છે શ્રીગોનાથજીનું મૂલ સ્વરૂપ લીલામા બલદેવજીનુ છે " બલદેવ 'શ્રીગોપીનાથ

ओर दामोदरदास को श्रीआचार्यजी तीसरे दिन दरसन देते ॥ मारग की रहस्यवार्ता कहते ॥

वार्ता प्रसंग ६ एसी कृपा करते ॥ ओर कदाचित तीसरे दिन दरशन न होतो तो ता दिन दामोदरदास के पेट में पीडा वहुत होती, अत्यंत कष्ट पावते ॥ ओर पाछे दरसन होतो तब तत्काल कष्ट निवर्त्त होई जातो ॥ एसी भांति केतेक वर्षपर्यंत श्रीआचार्यजी दरशन दीनो एसी कृपा करते ॥ जो वात होती सो सब दामोदरदास श्रीगुसांईजीकी आगे कहते ॥ ओर मारग के प्रकार (प्रकाश?) की वार्ता अहर्निश करते ॥ श्रीगुसांईजी दामोदरदास की उपर वहोत कृपा करते ओर कहते जो दामोदरदास के हृदयमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभू सदा विराजे हे ॥

કહીએ" (વલ્લભાખ્યાન) માટે તે મર્યાદાપુષ્ટિ છે ત્યારે શ્રી આચાર્યજીના સેવકોના સ્વરૂપ નિર્ગુણ આધિદૈવિક ભાવરૂપ છે. જેથી શ્રીગોપીનાથજીની ભક્તિ તેમને અનુકૂલ હોય જ નહિ તે સહજ છે. આ પ્રસંગમા શૃંગારરસનો ઉદ્દીપન ભાવ કહેલો છે.

सर्वात्मभावसाध्यो हि स्वरूपानन्द उच्यते । (श्रीहरि०) સર્વાત્મભાવથી પ્રાપ્ત થતો આનંદ તે સ્વરૂપાનંદ કહેવાય છે
સર્વાત્મભાવની વ્યાખ્યા —

'अहं भगवतः सर्वं' इति सर्वात्मभावनम् । (श्रीहरि०) હું સમગ્ર પ્રભુનો એનુ નામ સર્વાત્મભાવ વધુ સર્વાત્મભાવ સમજવા માટે જુઓ "વાર્તારહસ્ય"

श्रीगुसांईजीसों यह मेद कहे[1] ॥ तब श्रीगुसांईजी कहे लेहू ॥ प्रसन्न होइके चरणोदक दीये ॥ जाने जो श्रीआचार्यजी के भावतें लेत हें ॥ मेरे भावतें नांहि ॥

याही तें श्रीगोपीनाथजी यद्यपि (श्रीआचार्यजी के बडे पुत्र) श्रीगुसांईजी के बडे भाई हे ॥ परंतु काहू वैष्णवने चरणोदक नांहि लियो ॥ या भावतें श्रीगुसांईजी के सात बालक ओर वल्लभकुलके चरनोदकमें श्रीआचार्यजीको भाव जनायो ॥ तातें चरनोदक लेनो ॥ दंडोत करनो ॥ यह सिद्धांत जनायो ॥

इति प्र. ५ समाप्त.

---

१ મેદ શબ્દથી લીલાના પ્રાકટ્યનો ભેદ સમજવો "સંવાદ" મા દામોદરદાસજીએ શ્રીગુસાંઈજીને આ પ્રકાર સમજાવ્યો છે તેનો ભાવાર્થ આ પ્રમાણે છે -જ્યારે દામોદરદાસ શ્રીગુસાંઈજીના ચરણમાં પડ્યા ત્યારે શ્રીગુસાંઈજીએ તેમને શ્રીહસ્તથી ઉઠાડી અને પોતાને નમન આદિ ન કરવાની આજ્ઞા કરી ત્યારે દામોદરદાસજીએ આ ભેદ કહ્યો કે -લીલામાં મારૂં પ્રાકટ્ય આપથી જ છે (લલિતાજીનુ પ્રાકટ્ય ચદ્રાવલીજીથી જ છે) આ અર્થ અહિં ન લઈએ તો શ્રીગોપીનાથજી પણ શ્રીઆચાર્યજીના પુત્ર હતા તેથી તેમનુ ચરણોદક લેવામા કશો વાધો ન જ હોય પરતુ જે ભગવદ્ભક્તોને મૂલ લીલાનું જ્ઞાન અને પોતાના સ્વરૂપનો અનુભવ છે તેઓની સર્વ ક્રિયા વાણી અને ભાવના પોતાના મૂલ સ્વરૂપ રૂપે જ સ્થિત રહે છે અને તે મૂલ સબધથી જ તે સર્વ કાર્ય અહીં પણ તે પ્રમાણે કરે છે શ્રીગોનાથજીનું મૂલ સ્વરૂપ લીલામાં બલદેવજીનુ છે "બલદેવ શ્રીગોપીનાથ

ओर दामोदरदास को श्रीआचार्यजी तीसरे दिन दरसन देते ॥ मारग की रहस्यवार्ता कहते ॥

वार्ता प्रसंग ६ एसी कृपा करते ॥ ओर कदाचित तीसरे दिन दरशन न होतो तो ता दिन दामोदरदास के पेट में पीडा बहुत होती, अत्यंत कष्ट पावते ॥ ओर पाछे दरसन होतो तब तत्काल कष्ट निवर्त्त होई जातो ॥ एसी भांति केतेक वर्षपर्यंत श्रीआचार्यजी दरशन दीनो एसी कृपा करते ॥ जो बात होती सो सब दामोदरदास श्रीगुसांईजीकी आगे कहते ॥ ओर मारग के प्रकार (प्रकाश?) की वार्ता अहर्निश करते ॥ श्रीगुसांईजी दामोदरदास की उपर बहोत कृपा करते ओर कहते जो दामोदरदास के हृदयमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभू सदा बिराजे हे ॥

કહીએ" (વલ્લભાખ્યાન) માટે તે મર્યાદાપુષ્ટિ છે ત્યારે શ્રી આચાર્યજીના સેવકોના સ્વરૂપ નિર્ગુણ આધિદૈવિક ભાવરૂપ છે જેથી શ્રીગોપીનાથજીની ભક્તિ તેમને અનુકૂલ હોય જ નહિ તે સહજ છે. આ પ્રસંગમા શૃંગારરસનો ઉદ્દીપન ભાવ કહેલો છે

सर्वात्मभावसाध्यो हि स्वरूपानन्द उच्यते । (श्रीहरि०) સર્વાત્મભાવથી પ્રાપ્ત થતો આનંદ તે સ્વરૂપાનંદ કહેવાય છે

સર્વાત્મભાવની વ્યાખ્યા:—

'अहं भगवत् सर्वं' इति सर्वात्मभावनम् । (श्रीहरि०) હું સમગ્ર પ્રભુનો એનું નામ સર્વાત્મભાવ. પણ સર્વાત્મભાવ સમજવા માટે જુઓ "વાર્તારહસ્ય"

श्रीगुसांईजीसें यह भेद कहे[१] ॥ तब श्रीगुसांईजी कहे लेहू ॥ प्रसन्न होइके चरणोदक दीये ॥ जाने जो श्रीआचार्यजी के भावतें लेत हें ॥ मेरे भावतें नांहि ॥

याही तें श्रीगोपीनाथजी यद्यपि (श्रीआचार्यजी के बडे पुत्र) श्रीगुसांईजी के बडे भाई हे ॥ परंतु काहू वैष्णवने चरणोदक नांहि लियो ॥ या भावतें श्रीगुसांईजी के सात बालक ओर वल्लभकुलके चरनोदकमें श्रीआचार्यजीको भाव जनायो ॥ तातें चरनोदक लेनो ॥ दंडोत करनो ॥ यह सिद्धांत जनायो ॥

इति प्र. ५ समाप्त.

---

१ भेद શબ્દથી લીલાના પ્રાકટ્યનો ભેદ સમજવો. "સંવાદ" મા દામોદરદાસજીએ શ્રીગુસાંઈજીને આ પ્રકાર સમજાવ્યો છે તેનો ભાવાર્થ આ પ્રમાણે છે -જ્યારે દામોદરદાસ શ્રીગુસાંઈજીના ચરણમા પડ્યા ત્યારે શ્રીગુસાંઈજીએ તેમને શ્રીહસ્તથી ઉઠાડી અને પોતાને નમન આદિ ન કરવાની આજ્ઞા કરી ત્યારે દામોદરદાસજીએ આ ભેદ કહ્યો કે -લીલામાં મારૂં પ્રાકટ્ય આપથી જ છે (લલિતાજીનુ પ્રાકટ્ય ચદ્રાવલીજીથી જ છે) આ અર્થ અહિં ન લઈએ તો શ્રીગો-પીનાથજી પણ શ્રીઆચાર્યજીના પુત્ર હતા તેથી તેમનું ચરણોદક લેવામા કશો વાધો ન જ હોય પરતુ જે ભગવદ્‌ભક્તોને મૂલ લીલાનું જ્ઞાન અને પોતાના સ્વરૂપનો અનુભવ છે તેઓની સર્વ ક્રિયા વાણી અને ભાવના પોતાના મૂલ સ્વરૂપ રૂપે જ સ્થિત રહે છે અને તે મૂલ સબધથી જ તે સર્વ કાર્ય અહીં પણ તે પ્રમાણે કરે છે. શ્રીગો-નાથજીનું મૂલ સ્વરૂપ લીલામા બલદેવજીનુ છે "બલદેવ શ્રીગોપીનાથ

जानत हूं ॥ तब श्रीआचार्यजी महाप्रभू दामोदरदास सों कहे जो जेसें तूं मोकों जानत हे । तेसें इनको स्वरूप जानियो[२] ॥

इति प्र ७ समाप्त.

वार्ता प्रसंग ८

एक समें श्रीगुसांईजी बेठे हें ॥ तब दामोदरदास ने कही ॥ महाराज, अपनो मारग निसंगता को नांही ॥ रूप प्रगट कर्ता (हे) ॥ (ओर कही जो) एक समें श्रीमहाप्रभुजी पोढे हते ॥ तब श्रीगोवर्धननाथजी आप कहे जो जीव को उद्धार करो ॥ लीलाकर्त्ता अवलंबन सुद्धि करता उद्दीपन भाव या प्रकार डेढ श्लोक कहे ॥

ત્યા લોકવત્ સ્નેહ થઈ જવાથી ભાવની હાનિ થાય
લોક અને વેદથી દામોદરદાસજીનુ આ પ્રકારે બેસવુ
તો પણ દાસ્યભાવને જણાવવાને અર્થે જ શ્રીઆચાર્ય
કેટલા લોકમા પિતાના મુખ્ય માનનીય સેવક પુત્ર
માન પ્રાપ્ત કરી શકે છે તે ગજદારમા પણ દેખાય છે
પણ પટ્ટ શિષ્ય અને પુત્રનો એક સમાન અધિકાર
વત જ કહેલો છે-પરંતુ અહિં તો સ્વરૂપમા પણ
બિરાજતા હોઈ શ્રીઆચાર્યજીની સમાન જ દાસ્યભાવ
જોઈએ અન્યથા દાસ્યભાવમા ત્રુટિ પ્રાપ્ત થાય ય
આ કાર્ય બાધકરૂપ ન હતુ છતા પણ દામોદ
કરી જીવો પ્રતિ શ્રીઆચાર્યજીએ આ શિક્ષા ક
તો શ્રીઆચાર્યજીના તદ્રૂપ જ છે

૨. શ્રીવિઠ્ઠલેશે સ્વાતિરમાહાત્મ્યભાવગભાવ :

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

दामोदरदास कों तिसरे दिन श्रीआचार्यजी दरशन देतें ॥ ताको हेतु यह जो तिन दिन लों दरसनको आवेस तामें मगन रहते ॥ तिसरे दिन सरीर की सुधि होती ॥ सो विरह कष्ट होतो ॥ सो दरशन करि फेरि स्वरूपानंदमें मगन होई जातें ॥

इति प्र. ६ समाप्त.

वार्ता प्रसंग ७

ओर पहले दामोदरदास श्रीगुसांईजीकी आधो गादी दावि के बेठते[1] ॥ सो एक दिन श्रीआचार्यजी महाप्रभूने देख्यो ॥ तब श्रीआचार्यजी ने दामोदरदाससों पूछी जो दमला, तु श्रीगुसांईजी को कहा करिके जानत हे ? तब दामोदरदासने कही जो महाराज, हों तो इनकों तुमारे पुत्र करिके

---

[1] આ પ્રસગ લગભગ સવત ૧૫૮૦ ના અરસામા બનેલા છે જ્યારે શ્રીગુસાઈજી આઠ વર્ષના હતા અહિ ગાદી દાબીને બેસતા એવા શબ્દો છે પ્રાચીન તમામ હસ્તલિખિત પુસ્તકોમા આજ શબ્દો જોવામા આવે છે તેનો ગુજરાતી અનુવાદ કરનારાઓએ "અડધી ગાદી ઉપર બેસતા" એમ અર્થ કર્યો છે, તે અત્યત ભ્રમોત્પાદક છે દાબવો શબ્દ વાળવાના અર્થનો દ્યોતક છે સારાશ એ છે કે દામોદરદાસજી શ્રીગુસાઈજીની અડધી ગાદી વાળીને પાસે બેસતા (આજ પણ કેટલાક બાલકોને ત્યા તેમના પિતાના પ્રાચીન સેવકોને એ પ્રમાણે કવચિત્ બેસતા જોવામાં આવે છે. પરતુ તેમ કરવુ તે ઉચિત નથી તે કૃતિમા માહાત્મ્યજ્ઞાનનુ વિસ્મરણ હોવાથી-

तब श्रीआचार्यजी महाप्रभू दामोदरदास सों कहे
जानत हूं ॥ तब श्रीआचार्यजी महाप्रभू दामोदरदास सों कहे जो जेसें तूं मोकों जानत हे । तेसें इनको स्वरूप जानियो[२] ॥

इति प्र. ७ समाप्त.

एक समें श्रीगुसांईजी बेठे हैं ॥ तब दामोदरदास ने कही ॥
महाराज, अपनो मारग निसंगता को
वार्ता प्रसंग ८ नांही ॥ रूप प्रगट कर्ता (हे) ॥
(ओर कही जो) एक समें श्रीमहा-
प्रभुजी पोढे हते ॥ तब श्रीगोवर्धननाथजी आप कहे जो जीव
को उद्धार करो ॥ लीलाकर्त्ता अवलंबन शुद्धि करता उद्दीपन
भाव या प्रकार डेढ श्लोक कहे ॥

त्यां लोकवत् स्नेह थई जवाथी भावनी हानि थाय छे) यद्यपि
लोक अने वेदथी दामोदरदासजीनुं आ प्रकारे बेसवुं विरुद्ध नथी.
तो पण दास्यभावने जणाववाने अर्थे ज श्रीआचार्यजीए तेमने
टोक्या लोकमां पिताना मुख्य माननीय सेवक पुत्रनी बरोबरनुं
मान प्राप्त करी शके छे. ते राजदरबारमां पण देखाय छे तेमज वेदथी
पण पट्ट शिष्य अने पुत्रनो एक समान अधिकार छे शिष्यने पुत्र
वत् ज कहेलो छे—परंतु अहिं तो स्वरूपमां पण श्रीआचार्यजी ज
बिराजता होई श्रीआचार्यजीनी समान ज दास्यभावनुं अनुकरण करवुं
जोईए अन्यथा दास्यभावमां त्रुटि प्राप्त थाय यद्यपि दामोदरदासजीने
आ कार्य बाधकरूप न हतुं तो पण दामोदरदासजी द्वारा सर्व
दैवी जीवो प्रति श्रीआचार्यजीए आ शिक्षा करी छे—दामोदरदासजी
तो श्रीआचार्यजीना तद्रूप ज छे

२. श्रीविट्ठलेशे दामोदरदासस्यापराध नम ॥ (श्रीहरि०)

श्रावणस्यामले पक्षे एकादश्यां महानिशि ॥
साक्षात् भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते ॥ १ ॥

ब्रह्मसंबंधकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः ॥ यह डेढ श्लोक में सब आयो ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

सो (अभिप्राय) कहत हे ॥ श्रावण महिना के पति भगवान हे ॥ एक अमल जो उजियारो पक्ष भक्तजननको हे ॥ तिन एकादशी को दिन प्रभून को हे ॥ एकादश्यां ॥ एकादश इंद्रिय की सुद्रि भक्तजननको करायवे को ॥ महा निशि जो अर्द्धरात्रि रासलीलामें साक्षात् भगवान (भक्तन) सों निसंक होई रहस्यवार्ता करत हे लीलामें तेसेही श्रीआचार्यजीसों बोले ॥ सगरे अक्षर कहत हे ॥ यहा ताई श्रीआचार्यजो उपर भाव ॥ श्रीगोवर्द्धननाथजी अब कहें ॥ ब्रह्मसंबंध करावो ॥ सबको देहजीवकों ॥ (तातें दामोदरदासने श्रीगुसांईजीसों कह्यो) जो भक्तिमारगके विस्तार की आज्ञा हे सो तुम करो ॥ अज्ञान जीव हे ॥ याही ब्रह्मसंबध तें दोष जाइगें ॥ अंगीकार कराए ॥ एक श्लोकमें लीला ॥ आधे श्लोकमें मारग की रीति ॥ सब इनमें आयो ॥ या प्रकार श्रीगुसांईजी सों दामोदरदासने कह्यो ॥

ओर ता पाछे दामोदरदासकी सहायतासु आपने शृंगाररसमंडन ग्रन्थ कियो ॥ *

इति प्र. ८ समाप्त.

---

* यस्मात् सहायभूतो.. (शृ. रसमडनम्)

પ્રસંગ ૮—પુષ્ટિ સૃષ્ટિના જીવોને આસુરભાવરૂપ દોષની ઉત્પ-
ત્તિનો પ્રકાર—સૃષ્ટિ પ્રક્રિયાના પ્રારંભમાં દૈવી જીવ જેમ આસુરી જીવથી
જુદા થયા, તેમ ઇંદ્રિય પણ દૈવી અને આસુરી એમ બે પ્રકારની થઈ.
ત્યારે આસુરી જીવ દૈવી જીવ પાસે આવીને કહે કે મારૂં પણ ગાન કર.
ત્યારે દૈવી જીવે કહ્યું કે "यो यदंश: स तं भजेत" હું ભગવદંશ છું
ભગવદ્ગાન કરીશ. તેથી દૈવી જીવને પાપવેધ ન થયો ત્યારે આસુરી
જીવ દૈવી ઇંદ્રિય પાસે ગયો અને દૈવી ઇંદ્રિયને ભયગ્રસ્ત કરીને કહ્યું કે
મારૂં ગાન કર. તે વખતે દૈવી જીવનો દેહ તો હતો નહિ કે જેથી
દૈવી ઇંદ્રિય તેમાં પ્રવિષ્ટ થઈ શકે જેથી ઇંદ્રિયે સભય થઈ આસુરી
જીવનું ગુણગાન કર્યું ત્યારે દૈવી ઇંદ્રિયને પાપવેધ થયો જેથી દૈવીજીવ
શુદ્ધ તથા દેહ શુદ્ધ ઇંદ્રિયમાં દ્વૈવિધ્ય. ઇંદ્રિય સ્વયં દૈવી, પરંતુ આસુ-
રીના ગાનથી આસુર ભાવવાળી થઈ. એ મૂલ દોષ છે. આ પ્રકાર
"द्वयाह प्राजापत्या" એ શ્રુતિમાં કહ્યો છે વ્યાસજીએ પણ "द्वैधा
र्थभेदात्" એ સૂત્રમાં નિરૂપણ કર્યું છે આ દોષનિવારણના અર્થે
શ્રીઆચાર્યજીનું પ્રાકટ્ય થયું ([illegible]) અને આગે ભગવદા-
જ્ઞાને લોકમાં પ્રમાણરૂપ કરી પુષ્ટિસંપ્રદાય આ મૂલ દોષ અને
તેથી ઉત્પન્ન થતા પાંચે દોષની નિવૃત્તિ કરી

શ્રીહરિ૦ કૃત૦ ભાવનું સ્પષ્ટીકરણ

રાસાદિ લીલાની માફક અહીં પણ શ્રીઆચાર્યજી (स्वामिनीभा-
वस्रुप) સાથે શ્રીગોવર્ધનધરે પાંચ પ્રકારે ભાવાત્મક નિર્બંધ અને
સ્વતંત્ર રૂપે રમણ કર્યું તે આ પ્રકારે—પાંચ પ્રકાર-આત્માથી-મનથી-
વાક્-પ્રાણથી--ઇંદ્રિયથી અને શરીરથી.

સાક્ષાત્ ભગવાન ([illegible]) સ્વરૂપ દ્વારા પ્રકટ થઈ
જીવોને કૃષ્ણનું દાન કર્યું તે આત્માથી આપ-શ્રીઆચાર્યજીની ચિંતાને
[illegible] જીવોને કૃષ્ણનું દાન કર્યું તે આત્માથી એકતા વિના [illegible]
આપે લાગી એટલે બન્નેના મનની એકતા વિના ... આપ વિના કેમ
પરસ્પર ક્રિયા ન થાય માટે મનથી, મનથી રમણ!

वार्ता प्रसंग ९

ओर प्रथम श्रीआचार्यजी महाप्रभू दामोदरदास सों कह्यो जो यह मारग तेरे लिए प्रगट कियो हे ॥ जो जहां लगि श्रीआचार्यजी के मारग की स्थिति हे तहां तांई दामोदरदास की (भी) मारगमें स्थिति गोप्य हे ॥

ओर दामोदरदासने कह्यो जो मेनें श्रीठाकुरजीके वचन सुने परि समुझ्यो नांहि ॥ ता समें श्रीआचार्यजीने कह्यो अज हू दश जन्मको अंतराय हे ।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

ताको हेतु यह ॥ जो जब लगी श्रीआचार्यजी महाप्रभूके मारग की स्थिति हे तब लगी दामोदरदास को प्रागटच फेरि फेरि हे ॥ (गोप्य रीतिसों) मारग को स्तभ यातें हे ॥ जो श्रीआचार्यजीने दामोदरदास के हृदयमें भगवदलीला स्थापी ॥ सो सपूर्ण सृष्टि के उद्धार के निमित्त ॥ दामोदरदासके जनम दसलों मारग की स्थिति हे * जेसे वल्लभकुल को प्रागटच हे ॥ तेसें

કરો છો એ વાણીથી લીલા કરી અને તે શ્રવણ કરી આચાર્યજી-એ પ્રતિ ઉત્તર કર્યો તેથી આપ સયોગાત્મક વાણીદ્વારા-પ્રાણમા પ્રવેશ્યા--વાક્પ્રાણથી, પ્રાણને ધર્મ બળ છે પ્રભુના પ્રાણ અલૌકિક છે માટે ભગવાનને વશ કરી વચન લીધુ—ઈંદ્રિયથી પછી આપ અતર્ધ્યાન થયા તે કાયિક લીલા આ પ્રકારે સ્વામિની સ્વરૂપે ભાવાત્મક રમણ શ્રીઆચાર્યજી સાથે શ્રીજીએ કર્યુ

* ભાવાત્મક આધિદૈવિક માર્ગની, તે માર્ગ આ પ્રકારે ભક્તોના

हि भक्ति दृढ करन के लिए दामोदरदास को हू अनेक वैष्णवनमें प्रागट्य हे ॥

इति प्र. ९ समांत.

वार्ता प्रसंग १०

एक समें श्रीआचार्यजी सुंदर सिलाके पास [जाको पूजनी सिला कहें हे तहां छोंकर के निचे श्रीआचार्यजीकी बेठक हें तहां] दामोदरदासकी गोदमें मस्तक धरि आप पोढे हे ॥ ता समय श्रीगोवर्द्धननाथजी मंदिरतें श्रीआचार्यजी के पास पधारे ॥ तब दामोदरदासने सेनहीमें श्रीगोवर्द्धननाथ-

---

હૃદયમાં રહ્યો છે—શ્રીઠાકુરજી અને તેમની સેવાના પદાર્થો અને ક્રિયાઓમાં ભાવનાસહિત ભક્તોને અનુભવ—ગોસ્વામિબાલકોમાં અને તેમની પ્રત્યેક ક્રિયામાં શ્રીઆચાર્યજીના આધિદૈવિક સ્વરૂપનો અનુભવ વૈષ્ણવોમા અને તેમની ક્રિયાઓમા લીલાસૃષ્ટિની ભાવનાનો પ્રત્યક્ષ અનુભવ-વ્રજ ગિરિરાજજી જમનાજી ગોકુલ અને વ્રજવાસી-ઓમાં લીલાના આધિદૈવિક સ્વરૂપોની ભાવનાનો અનુભવ ઉપર્યુક્ત ચાર પ્રકારથી પ્રકટ થએલા આધિદૈવિક પુષ્ટિમાર્ગનો અનુભવ એક પણ ભક્તને જ્યાં સુધી છે ત્યાં સુધી આધિદૈવિક પુષ્ટિમાર્ગની સ્થિતિ ભૂતલ ઉપર છે પછી ક્રિયાત્મક (ભૌતિક સેવા) અને જ્ઞાનાત્મક (શુદ્ધાદ્વૈત સિદ્ધાંત) માર્ગની જ વિદ્યમાનતા રહેશે

આધિદૈવિક પુષ્ટિમાર્ગના તિરોધાનના કારણભૂત ભાવાત્મક સ્વરૂપો અને ભાવાત્મક અર્થોથી બાહ્ય અને વૈષ્ણવોનું ચિત્તભ્રમ જાગતું માટેજ શ્રીજીથી (ભાવાત્મક સ્વરૂપ) બહિર્મુખ ન થવાનો ઉપદેશ આપ્યો અને વૈષ્ણવોને સાવધાન કરેલા છે.

जीसों कहे जो तुम अब हि यहां मति आवो ॥ तुम चंचल हो॥ (तातें) श्रीआचार्यजी जागि उठेंगे ॥ तब श्रीगोवर्द्धननाथजी ठाडे होय रहे ॥ तब श्रीआचार्यजी जागि उठें ॥ कहे बाबा उहां क्यों ठाडे होय रहे हो पास पधारो ॥ तब श्रीगोवर्द्धन-धर पास आय श्रीआचार्यजीसों कहे ॥ जो तुम्हारो सेवक (ने) मोकूं वरज्यो जो यहां मति आवो ॥ श्रीआचार्यजी जागि उठेंगे ॥ तातें में दूरि ठाडो रह्यो ॥ तब श्रीआचार्यजी दामो-दरदास उपर खीजन लागें ॥ जो नें श्रीगोवर्द्धननाथजीको क्यों वरजे ? तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कहें ॥ इनसों क्यों खीझत हो ? इननें अपनो धर्म राख्यो ॥ इनकों ऐसेहि चाहियें ॥ तब श्रीआचार्यजी श्रीगोवर्द्धनधर को गोदिमें बेठाय कपोल परस करि कहें बाबा, कछु आज्ञा करो ॥ तब श्रीगोवर्द्धनधर कहे ॥ मोकों गाय बहुत प्रिय हें ॥ तब श्रीआचार्यजी सदूपांडे को बुलाय वेदकर्म करिवे की पवित्री हती सो दे कहे याके दाम करि श्रीगोवर्द्धननाथजीकों गाय ल्याय देउ × ॥

इति प्र १० समाप्त.

× ક્વચિત્ નૂપુર માગ્યાનો પણ ઉલ્લેખ પ્રાપ્ત છે

આ પ્રસંગમા શ્રીઆચાર્યજીનુ દાસ્યરૂપ વલ્લભસ્વરૂપનુ પ્રતિ-પાદન છે

પ્રસંગ ૧૦ નું પરિશિષ્ટ રહસ્ય.—

આ પ્રસંગમા શ્રીગોકુલનાથજીએ શ્રીવલ્લભ સ્વરૂપ (મધ્યરૂપ) નો અનુભવ કહેલો છે. તે આ પ્રકારે:—

આપ કદી નિદ્રાધીન થતા નથી. નિદ્રાના મિષથી આપ કેવલ વિપ્રયોગરસનો અનુભવ કરતા લોકદષ્ટિથી પણ આપનુ નિદ્રાધીન થવુ યુક્તિસગત લાગતુ નથી કારણ કે લોકમાં પણ જ્યારે કોઈ મનુષ્યને મહાન્ હર્ષ અથવા શોકને પ્રાપ્ત કરાવે એવો પ્રસંગ ઉપસ્થિત થાય છે, ત્યારે તે પુરુષને નિદ્રા સર્વાંશે સ્વત ત્યાજ્ય થઇ જાય છે એ સર્વાનુભવગોચર છે. તેવીજ રીતે શ્રીઆચાર્યચરણને લીલાના વિયોગરૂપ અત્યત દુ ખ અને દૈવી જીવોના ઉદ્ધારરૂપ આનદ પ્રાપ્ત થયો છે. તેવા પ્રસંગે નિદ્રા કેમ આવે ? નજ આવે

બીજા પ્રકારે આપનો નિત્ય નિયમ જોવાથી જ્ઞાત થાય છે કે આપ બન્ને અનોસરમા નિદ્રાના મિષથી સૂક્ષ્મ વિશ્રામ કરતા. બપોરના અનોસરમાં વ્રજભક્તોની વેણુગીત યુગલગીત આદિની ભાવનાનો અનુભવ કરતા. પછી નિજ સેવકો ઉપર તે અનુભવેલો મહાન્ રસ કથારૂપે વરસાવતા "भोजन कर विश्राम छिनक है निज मण्ली बुलाई । वेणुगीत पुन युगलगीत की रस बरखा बरसाई" ॥

રાત્રિના અનોસરમા ભગવત્કથા કર્યા પછી દામોદરદાસની સાથે આપ રહસ્યવાર્તા કરતા ત્યારબાદ મધ્યરાત્રિનો ભોગ ધરીને આરોગાવના પછી આપ સર્વ વૈષ્ણવોની ગુપ્ત રીતે તપાસ કરતા (જુઓ ગોપાલદાસ જટાધારીની વાર્તા) કેટલોક સમય વીત્યા પછી આપ પોઢવા પધારતા. (લગભગ એક વાગે) અને ત્રણ વાગે આપ શાચાદિક કરતા આ પ્રમાણે આપનો નિત્યનિયમનો ક્રમ હતો આપના આહાર અને નિદ્રા બહુજ અલ્પ હતા આ બન્ને અનોસરના વિશ્રામમા ગમ્ભીરતાત્પર્ય આપ રાસાદિક લીલાનો હૃદયસ્થિત ધર્મી વિપ્રયોગરૂપે

અનુભવ કરતા " नमामि हृदये शेषे " એ ભાવાત્મક માનસી લીલામાં મગ્ન રહેતા

આ પ્રકારના ધર્મી વિપ્રયોગના અનુભવમા બાહ્ય (ધર્મ સહિત સયોગાત્મક) સ્વરૂપની અપેક્ષા રહેતી નથી બાહ્ય પ્રાકટચમા કામાત્મભાવની સ્થિતિ રહેલી છે એટલે તેમા ક્રિયાપ્રાધાન્ય અને અન્યસાપેક્ષતા રહેલી છે જેથી આમા દ્વૈતપણાનુ ભાન રહે છે " પ્રભુ મારા છે " એ પ્રકારના ભાવને કામભાવ કહેવામા આવે છે, આમા દેહાદિની સ્ફુરણા અને વિષયોનો સમાવેશ હોવાથી દ્વિધા ભાવ રહેલો છે ધર્મી વિપ્રયોગાત્મક રસમા સર્વાત્મભાવની સ્થિતિ છે " હું સમગ્ર પ્રભુનો " એ પ્રકારના ભાવને સર્વાત્મભાવ કહેવામા આવે છે આમા દેહાદિના પૃથક્પણાનુ ભાનજ રહેતુ નથી તે કેવલ પ્રભુમય થઈ જાય છે આમા ક્રિયાદ્વારા અનુભવ નથી પરતુ ભાવદ્વારા અનુભવ થાય છે આ ભાવ આતરરમણ રૂપ હોઇ અન્યનિરપેક્ષ છે આમા બાહ્ય સ્વરૂપના આવિર્ભાવની અપેક્ષા મુદ્દલે રહેતી નથી ઉલટુ બાહ્ય સ્વરૂપનો આવિર્ભાવ આ અનુભવમા બાધકરૂપ છે આ વિપ્રયોગરસમા કેવલ ભાવભાવનજ હોય છે આ નિરપેક્ષીત ભક્તો સ્વતત્ર હોવાથી શુદ્ધ પુષ્ટિ કહેવાય છે, " कृष्णाधीना तु मर्यादा स्वाधीना पुष्टिरुच्यते " કૃષ્ણનુ આધીનત્વ (અપેક્ષિતા) ત્યા સુધી મર્યાદા કહેવાય (ભાવ સિદ્ધ થયા પછી સ્વરૂપની અપેક્ષા રહેતી નથી ભાવથી કોટાનકોટિલીલાવિશિષ્ટ સ્વરૂપો સ્વેચ્છાનુસાર પ્રકટ થાય છે)

स्वतन्त्रफलरूपो य स्वरूपावेशतो हरे ।
धर्मी रूप स विज्ञेयो नाविर्भावप्रयोजनम् ॥ (शिक्षा०)

આ ધર્મી વિપ્રયોગ રસનો શ્રીઆચાર્યચરણ અનુભવ કરતા તેનુ જ્ઞાન દામોદરદાસને છે કે નહિ ? તેની પરીક્ષાને અર્થે અને દામોદરદાસનો ઉત્કર્ષ લોકમા પ્રસિદ્ધ કરવાને અર્થેજ શ્રીજી આ અનોસરના સમયમા

પધાર્યા નહિ તો આપ સર્વજ્ઞ હતા. આ સમયે પધારી શ્રીમહા-પ્રભુજીને શ્રમ શું કરવા દે ? કારણ કે બન્ને સ્વરૂપ પરસ્પર અત્યંત ગાઢ સ્નેહી છે. શ્રીનાથજી તો શ્રીઆચાર્યચરણની પાછળ પાછળ ફરે છે (જુઓ વિદ્યાનગરનો પ્રસંગ) તે બન્ને સ્વરૂપ એક બીજાના શ્રમને સહન કરી શકતાજ નથી. છતા પધાર્યા તેનું કારણ એજ કે દામોદરદાસની ઉત્કંઠાના નિ. કરવી છે દામોદર-દાસજી તો શ્રીઆચાર્યજીનુ હૃદય છે એટલે શ્રીઆચાર્યજીના હૃદયની ક્ષણક્ષણની બધી લીલાનો તેમને અનુભવ છે આ વખતે શ્રીઆચાર્ય-ચરણ ધર્મી વિપ્રયોગાત્મક રસનો અનુભવ કરે છે. તે જાણીનેજ દામોદરદાસે શ્રીજીને રોક્યા કારણકે-આપના પધારવાથી શ્રીઆચાર્ય-ચરણ જે અત્યારે પરમ આનંદરમણરૂપ સુખનો અનુભવ કરે છે તેમા વિક્ષેપ પડે તેથી દૂરથીજ રોક્યા.

આ પરમ સુખરૂપ સર્વાત્મભાવવાળા આનંદરમણમા કામભાવ-વાળુ બાહ્ય રમણ અન્યસબંધના ગંધરૂપ કોઈ બાધક છે કારણ કે બાહ્ય સયોગમા એકલીલાનોજ એક કાલમા અનુભવ છે. ત્યારે આતર સયોગાત્મક રમણમા એકકાલાવચ્છિન્ન અનેક લીલાના પરમ રસ દનો અનુભવ ભક્ત કરે છે માટે આ આનંદરમણ આગળ કામાત્મક બાહ્ય રમણ અન્યસંબંધરૂપ હોવાથી ત્યાજ્ય છે ભક્તની સાધનદશામા જેમ અન્યાશ્રય બાધકરૂપ છે. તેમ અહીં અન્ય-સબંધનો ગંધ પણ બાધકરૂપ છે આ આતરરમણમા બાહ્ય સ્વરૂ-પની અપેક્ષા નથી જો બાહ્ય સ્વરૂપ પ્રગટ થાય તો રસાભાસ થઈ જાય તેથી દામોદરદાસજીએ શ્રીજીને રોક્યા નહિ દામોદરદાસજીએ શ્રીઆચાર્યજીનુ પરમ અલૌકિક સુખ વિચારી પોતાનો દાસ્ય ધર્મ પ્રકટ કર્યો તેથી નહિ શ્રીઆચાર્યજી બીજા ત્યારે શ્રીજીએ પણ કર્યો. સંપ્રદાયના સિદ્ધાંતમા હાનિ આવે

શ્રીજી તે વખતે ત્યા જઈ તીમે ઉભા કેમ રહ્યા ? પાછા ત્રિ-કમાં કેમ ન પધાર્યા ? તેમાં પણ શ્રી રહસ્ય છે કે—શ્રીનાથજીનુ

વૃક્ષની ઓટમાં ઉભા રહેવાનુ પ્રયોજન એ હતું કે "वैष्णवा वै वनस्पतय" એવી શ્રુતિ છે. એટલે વૃક્ષ વૈષ્ણવ છે. તેથી વૈષ્ણવની

ઓટ (હૃદય)મા આપ સ્થાયીભાવ રતિરૂપે દામોદરદાસની ઇચ્છાથી સ્થિત રહ્યા કારણકે શ્રીઆચાર્યચરણના સેવકોની કા'ન શ્રીજી અને શ્રીગુસાંઇજી બન્ને રાખતા તેમનો કદિ અપરાધ પણ બને તો કંઈ કહેતા નથી મોટાના સેવકો પણ મોટાજ હોય

શ્રીઆચાર્યચરણના હૃદયમા સ્થાયીભાવ રતિરૂપે આપની સ્થિતિ હોવાથી, તરતજ આ (બાહ્ય) સ્થાયીભાવ રતિના સ્વરૂપને આપે જાણ્યુ જેથી આપનુ ચિત્ત આતરરમણમાથી બ્હાર આવ્યુ અને જ્યારે દષ્ટિ ખોલીને જોયુ તે સમયે શ્રીનાથજીને જોયા પછી શ્રીઆચાર્યજીએ પૂછ્યુ ત્યારે બધો પ્રકાર શ્રીજીએ કહ્યો તેથી શ્રીઆચાર્યજી આપ દામોદરદાસ ઉપર ખીજ્યા ત્યારે શ્રીજીએ પક્ષ કર્યો આ પ્રકારે દામોદરદાસનો ઉત્કર્ષ સહજ સિદ્ધ થયો

આ પ્રકારે દામોદરદાસ હરસાની અને તેમની વાર્તાનો ભાવ કહ્યો.

વૈષ્ણવ ૧ વાર્તા ૧ સમાપ્ત

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

કૃષ્ણદાસ મેઘનની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને તેનું રહસ્યઃ—

આ સમગ્ર વાર્તા શ્રીઆચાર્યજીના હૃદયની નિરોધલીલાના ધર્મી સ્વરૂપ છે, એટલે હૃદયવત્ છે. શ્રીઆચાર્યજીએ કૃષ્ણદાસમાં સમગ્ર ઐશ્વર્ય (ષડૈશ્વર્ય) સ્થાપ્યું હતું માટે શ્રીહરિરાયજી કૃષ્ણદાસના આધિદૈવિક સ્વરૂપનું વર્ણન કરતા આ પ્રકારે શબ્દો બોલે છે –"कृष्णदासमें ऐश्वर्य को आवेश बहोत हैं।" તે ૭ પ્રકારના ઐશ્વર્યનું શ્રીગોકુલેશે વાર્તામાં વર્ણન કર્યું છે. તે આ પ્રમાણે જાણવું.—

પ્રસંગ ૧ —प्रथम परिक्रमा में बद्रीनारायन के पहली ओर किरणी नाम पर्वत है॥ तहांतें एक बडी शिला गिरी॥ सो कृष्णदास मेघन ने हाथ सों थांभि॥

અહિં અલૌકિક સામર્થ્યરૂપ વીર્યનું પ્રતિપાદન છે.

પ્રસંગ ૨ —ता पाछें वेदव्यासजी सों बिदा होय के श्रीआचार्यजी तिसरे दिन पधारे॥ तब कृष्णदास कों ठाढो देखि प्रसन्न भए॥

અહીં શ્રીઆચાર્યજીની આજ્ઞામાં પરમ વિશ્વાસરૂપ શ્રીધર્મનું નિરૂપણ છે.

"श्रियो हि परमा काष्ठा सेवकास्तादृशा यदि।" इति वाक्यात्।

પ્રસંગ ૩ —ताकी अटकर तें फेरि के गंगाजी के पार गए।

અહીં દેહનો પૂર્ણ વૈરાગ્ય ધર્મ કહ્યો. ભગવદર્થે ક્ષણભંગુર શરીરનો વિચાર કર્યા વિના, ભયંકર ગંગાસાગરમાં ઝંપલાવવું એનાથી શ્રેષ્ઠ વૈરાગ્ય ધર્મ બીજો કયો હોઈ શકે?

तहांतें मेघन नें तो गीलो पान पठवायो। टका की जगे द्वे टका देके कुरकुरा लिख पठाए।

રાત્રિના સમયે એકનો ધાન લીધા ન હોવા છતાં કૃષ્ણદાસે પોતાના પ્રેમ વડે તે એકને (એક નર વ્યક્તિ કે જે પોતાની પડોશી

વાતને છોડે નહિ તે)ના નિશ્ચયને ફેરવી રાત્રિના ધાન નીંદાવ્યુ અને ભાડભૂજા (મૂઢ વ્યક્તિ) પાસે સિદ્ધ કરાવ્યુ (જુઓ ભાવસિન્ધુ) અહીં કૃષ્ણદાસનુ ઐશ્વર્ય કહ્યુ "ईश्वर पूज्यते मूढे" इति वाक्यात् ।

સજ્ઞાન પુરુષ તો આકર્ષાય, પરતુ મૂઢ પુરુષો પણ ઐશ્વર્યના પ્રભાવે આજ્ઞાધીન થાય તે ઐશ્વર્ય

તેમજ વાસુદેવદાસ છકડા, વિષ્ણુદાસ છિપા, નારાયણદાસ આદિને કૃષ્ણદાસેજ ભગવત્પ્રાપ્તિ કરાવી ત્યા પણ કૃષ્ણદાસના ઐશ્વર્યનુ નિરૂપણ છે તે પ્રસગો તે તે વાર્તામા છે "सर्वेषामितरसाधनासाध्य-भगवत्प्राप्तिसपादन"મા ઐશ્વર્ય (नामरत्नाख्यटीका)

પ્રસંગ ૩ (ख)—जो श्रीआचार्यजी पूर्ण पुरुषोत्तम होइ तो मेरे हाथ मति जरियो ॥

અહીં જ્ઞાનનુ નિરૂપણ છે

જ્ઞાનનુ ફલ તે પુરુષોત્તમના સ્વરૂપનો અનુભવ, જેમ નદીમાં જ્ઞાન છે 'भग्नगतय सरितो वै' તેમ કૃષ્ણદાસને પણ પુરુષોત્તમના સ્વરૂપનો બોધ થઈ ગયો છે તે હાથમા અગ્નિ લઇ સિદ્ધ કર્યુ

પ્રસગ ૪—बहुरी मार्ग हृदयारूढ भए पाछे कदाचित् गोप्य वार्ता होई सो सवन के आगे कहे ॥

અહીં યશ ધર્મનુ નિરૂપણ છે.

'स्वयशोगानसहृष्ट' એવા પ્રભુનો સ્વાનુભવાર્થ સર્વત્ર યશોગાન કરતા આ છએ ધર્મ જેમા સિદ્ધ છે એવા વિપ્રયોગનુ દાન પણ કૃષ્ણદાસને હતુ માટે શ્રીઆચાર્યચરણે વ્યામોહ કર્યો ત્યારે વિરહાનલથી આ દેહને બાળી નાખી ભૂતલનો ત્યાગ કર્યો (જુઓ પ્ર૦ ૮)

માટે કૃષ્ણદાસને ધર્મી રૂપ કહ્યા

———×———

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

अब श्रीआचार्यजी महाप्रभुनके सेवक कृष्णदास मेघन क्षत्री सोरोंमें रहते तिनकी वार्ता ॥

शरण आये पहेले को प्रकार* (जन्म १)

सो कृष्णदास दस वर्षके घर छोडि के आये हते ॥ हृदयमें वैराग्य हतो ॥ सो प्रथम सोरमजी गंगा न्हायवेकुं आये ॥ सो वहां एक बडो योगी महात्मा रहतो ॥ सो चेला करतो ॥ उनके चेला भये ॥ सो वा महात्माकु योग सिद्ध हतो ॥ दोय बरस पाछें ये सं. १५३५ की सालमें वैशाख कृष्ण ११ के ब्रह्ममुहूर्त समय योगाभ्यास साधत हतो ॥ वा समय कृष्णदास पास बैठे हते ॥ सो वाहि समय योगके प्रभावसूं गुरुने जानी ओर कही जो या समय भूतल विषे भगवदवतार भयो है ॥ तब कृष्णदासके मनमें दर्शनकी परम उत्कंठा भई ॥ वह संवत मिती मास सब याद करि लियो। पाछें गुरुसों बदरिकाश्रम जायवेकी आज्ञा मांगी ॥ सो गुरुने नाहि करी ॥ ओर कही ॥ जो अभी तु बालक है ॥ सो रहा जायगो ॥ फेर कृष्णदास दस वर्ष ओर गुरुके यहां रहे ॥ फेर गुरुकी आज्ञा ले बदरिकाश्रम के मिष पृथ्वीपर्यटनको चले ॥

सो प्रयाग आये ॥ (यहां दामोदरदास संभरवारे को मिलाप भयो) (देखो दा. सं. की वार्ता) तब उनने सुनी जो श्रीवल्लभाचार्यजी

---

*एक प्राचीन प्रतसूं।

प्रकट भए हें ॥ सो दक्षिणमें पधारे हें ॥ कृष्णदेव राजाकी समीप मायावाद खंडन कीए हें ॥ यह सुनत ही कृष्णदास दक्षिण देश गये ॥ तब राजाके यहां खबरि पाए ॥ जो पांच दिन ॥ यहां ते पधारे हे ॥ सो कृष्णदास रात्रि दिन चले ॥ सो तीन दिन में दक्षिण के झारखड में श्रीआचार्यजी को दर्शन पूर्ण पुरुषोत्तम (रूपसो) पाए ॥ तब श्रीआचार्यजीने कही कृष्णदास आयो ॥ तब कृष्णदास (ने) दंडोत करि के (कह्यो)महाराज मे आयो ॥ अब मो पर कृपा करि के सरन लेऊ॥ बहोत संसारमें भटक्यो ॥ अब मे आपको सरन में आयो हों ॥ तब श्रीआचार्यजोनें कृष्णदास सें कहि ॥ (जो) तेरे तो गुरु हे ॥ अब क्यो तू शरन आवत हें? ॥ तब कृष्णदास ने कहि महाराज आप साक्षात् पुरुषोत्तम हो ॥ में तिहारो हों ॥ तुम अब मोकों मति छोडो ॥ में संसारसमुद्र में डूबत हों ॥ या प्रकार बहोत दैन्य करी ॥ तब श्रीआचार्यजी कृष्णदास कों नाम सुनाये ॥ सरनि ले पृथ्वीपरिक्रमा को पधारे ॥+

+ ષષ્ઠપુત્ર શ્રીયદુનાથજી રચિત "દિગ્વિજય"મા પણ કૃષ્ણદાસ ઝારખડમાજ અને આજ સમયે શરણે આવ્યાનો ઉલ્લેખ છે જુઓ. –

ततसविधे सूकरक्षेत्रान्मेघनकृष्णदासक्षत्रिय प्रयागं समेत्य, दामोदर हस्ते ताम्रपात्र निरीक्ष्य, विद्यापुरजय श्रुत्वा, भगवदवतारो जात इत्यनुमाय, द्रुतमाचार्यानुपेत्य, पादयोर्निपतित । तत आचार्यें समुत्थाय कुशल पृष्ट्वा तस्मै निजमन्त्रमाले दत्ते ।

अथ पम्पाया समागताः ।

(प्रथम दक्षिण यात्रा)

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

કૃષ્ણદાસ મેઘનનો શેષ ભૌતિક ઇતિહાસઃ—

કૃષ્ણદાસ મેઘન ઘણું કરીને પૂર્વના હતા. તેમના પિતા શ્રી રામચંદ્રજીના ઉપાસક હતા, જેથી કૃષ્ણદાસ પણ નાનપણથી જ રામભક્ત હતા. તેમનો જન્મ સં. ૧૫૨૩માં થયો હતો. તેઓ ક્ષત્રિય હતા, અને તેમની અટક મેઘનની હતી. સંવત ૧૫૩૩માં તેઓને વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થવાથી તેઓ મોરમજીમાં ગંગા-સ્નાનાર્થે આવ્યા. ત્યાં કેશવાનંદ નામના એક પ્રસિદ્ધ મહાત્માના ચેલા થયા.

જ્યારે તેમણે સંવત ૧૫૩૫ના વૈશાખ કૃષ્ણ ૧૧ના રોજ પોતાના ગુરુના મુખથી ભગવદવતાર થયાનું સાંભળ્યું, ત્યારથી તેમને ભગવદ્દર્શનની તીવ્ર ઉત્કંઠા થઈ. પરંતુ તે વખતે તેમની ઉંમર ફક્ત બાર વર્ષની જ હોવાથી ગુરુએ કોઈ પણ જગ્યાએ જવાની ના પાડી. ×સંવત ૧૫૪૫માં જ્યારે તેઓ ૨૨ વર્ષના થયા ત્યારે ગુરુની આજ્ઞા લઈ બદરીકાશ્રમના મિષે પૃથ્વી પર્યટન કરવા નિકળ્યા.

કૃષ્ણદાસ અનેક ગામો અને તીર્થોમાં ફર્યા. દરેક સ્થળે સં. ૧૫૩૫ના વૈશાખ કૃષ્ણ ૧૧ના રોજ પ્રગટેલા બાળકની ખબરમાં તપાસ કરી પરંતુ સફળ ન થયા. તોપણ તેઓ નિરાશ ન થયા. સંવત ૧૫૪૭માં મકરસ્નાનાર્થે અનેક સાધુસંતોનો મોટો મેળો પ્રયાગમાં ભરેલો. ત્યાં કૃષ્ણદાસ પણ આવ્યા. તે સમયે તપાસ કરતાં કૃષ્ણદાસે સાંભળ્યું કે દક્ષિણમાં શ્રીવલ્લભાચાર્યજીએ કૃષ્ણદેવ રાજાની સભામાં દિગ્વિજય કરી, વૈષ્ણવ મતનું સ્થાપન કર્યું છે. તેઓ ઘણા તેજસ્વી છે અને સાક્ષાત્ ભગવાનનો જ અવતાર છે. નાની વયમાં તેઓએ પ્રખર પંડિતોને જીત્યા છે. સ્માર્ત અને વૈષ્ણવ સંપ્રદાયના સમસ્ત આચાર્યોએ આપને વિજયતિલક કરી આચાર્યપદવી આપી છે.

આ શ્રવણ કરતાં જ કૃષ્ણદાસ દક્ષિણ તરફ ચાલી નિકળ્યા.

× જ્યાં જ્યાં સંવત, માસ આદિનો ઉલ્લેખ છે ત્યાં ત્યાં ચૈત્રાદિ સંવત્ (મહિનો) અને માસ આદિ સમજી લેવા.

લગભગ બે અઢી મહીનામા સવત ૧૫૪૮ના વૈશાખ વદી ૮ ની સાજે વિદ્યાનગર આવ્યા

ત્યા તપાસ કરતા સમાચાર મળ્યા કે અહિંથી શ્રીવલ્લભાચાર્યજી વૈશાખ વદ ૨ ઉપરાત ૩ ના[1] રોજ પૃથ્વીપરિક્રમા કરવા પધાર્યા છે આપશ્રીને વિદ્યાનગરથી પધારે ફક્ત પાચ દિવસજ થયા છે

આ સાભળીને કૃષ્ણદાસ શીઘ્ર ગતિએ ત્યાથી ચાલી નિકળ્યા. રાત્રિ દિવસ ચાલતા ત્રીજા દિવસે વૈશાખ કૃષ્ણ ૧૧ ના રોજ (શ્રી આચાર્યજીના પ્રાકટ્યોત્સવના દિવસેજ) દક્ષિણમા આવેલા ઝારખડમા તેઓ શ્રીઆચાર્યજીને આવી મળ્યા. ત્યા તેઓ શ્રીઆચાર્યજીને શરણે આવ્યા[2]

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

—:સમસ્ત લીલા પ્રકરણ:—

શ્રીવિશાખાજીનું ધ્યાન કરવા માટે કોષ્ટક આ પ્રમાણે –

પિતાનુ નામ	માતાનુ નામ	વર્ણ (રગ)	ચાલ વસ્ત્ર	ગુણ	વય	બાજા	રાગ
ગુણભાનુ	ગુણકલા	ગુલાબી શ્વેત	રગશહાના	વિદ્યા	૧૫	મૃદગ	[illegible]

આ પ્રકારે વિશાખાજીનુ ધ્યાન કરવુ તે મુખ્ય અષ્ટ સખીમા છે એમને સા ૨૧૦૦૦૦૦ એકવીસ લાખ ગાયો છે અને બીલછુ કુડ ઉપર વિશાખાજીની નિકુજ છે એ સકલ વિદ્યામા નિપુણ છે શ્રીસ્વામિનીજી અને શ્રીઠાકોરજીની લીલામા લલિતાજીની માફક સહાયક છે

કૃષ્ણદાસ મેઘન વિશાખાજીનુ સ્વરૂપ છે

---

૧ જુઓ વલ્લભીયસર્વસ્વ, અને સપ્રદ્રાયકલ્પદ્રુમ

૨ સપ્રદાયકલ્પદ્રુમમા શ્રીઆચાર્યજીની સાત વર્ષની વય હતી, ત્યારે કાશીમા જનોઇના સમયે શરણે કૃષ્ણદાસ આવ્યા, તેમ ઉલ્લેખ છે પરતુ દિગ્વિજય આદિ અન્ય સમગ્ર પ્રાચીન પુસ્તકોમા વિદ્યાનગરની સભા જીત્યા બાદ શરણ આવેલા તેવા ઉલ્લેખો છે, અને તેજ ઉચિત પણ લાગે છે, ઐતિહાસિક તત્ત્વોની શોધમા ઉત્તરોત્તર પ્રાચીન પુસ્તકોના લેખોજ વધુ પ્રમાણરૂપે ગણાય છે જેથી સર્વ પ્રાચીન પુસ્તકોમા આજ સમયનો ઉલ્લેખ છે તેથી તે સબળ પ્રમાણ રૂપ ગણાય

आधिदैविक स्वरूपको वर्णन

(जन्म ३)

श्रीहरिरायजी कृत

सो कृष्णदास विसाखा सखी तें प्रगटे हें ॥ विसाखाजी श्रीस्वामिनीजी की छायारूप हे ॥ जेसे छाया सरीरके संग लागी डोले तेसें विसाखाजी श्रीस्वामिनीजी के संग रहत हें ॥ ताही प्रकारसों कृष्णदास हू श्रीआचार्यजीके संग रहत हें ॥ कृष्णदासमें ऐश्वर्यको आवेश वहोत हें ॥ सो आगे (वार्तामें) वरनन करत हें ॥

वार्ताप्रसंग १

(जन्म २)

आध्यात्मिक स्वरूप

श्रीआचार्यजी महाप्रभुनें पृथ्वी परिक्रमा करी ॥ तीनों वेर कृष्णदास संग रहे ॥ प्रथम परिक्रमामें वद्रीनारायनके परली ओर किरणी नाम पर्वत हे तहांते एक वडी सिला गिरी ॥ सो कृष्णदास मेघनने हाथसो थांभी × ॥ तव श्रीआचार्यजी-महाप्रभु आप वहुत प्रसन्न भए ॥ सो अलौकिक फल देते ॥ परंतु परीक्षा देखन अर्थ कहे ॥ कृष्णदाससों कह्यो जो तु मागि कहा मागत हे ? तव कृष्णदास तीन वस्तु मांगे ॥ १ मारग को सिद्धांत हृदयारूढ होइ ॥ २ मुखरता दोष जाइ ॥ ३ मेरे गुरुके घर पधारो ओर इनको अंगीकार करो ॥ तामें दोइ वस्तु दीनी ॥ गुरुके घर पधारिवेकी नांहि कीनी ॥

× કૃષ્ણદાસમાં ધર્મધર્મીની સ્થિતિ છે. તેથી તેઓ ધર્મીરૂપ છે વિશેષ જુઓ " કૃષ્ણદાસની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને તેનું રહસ્ય " આદિ શીર્ષનું નિરૂપણ છે. જુઓ ? વાર્તાનું ૨૪. અને રહસ્ય.

यह पहलेको गुरुभाव हृदयमें हतो सो बाहिर प्रगट्यो ॥ तातें अलौकिक दान श्रीआचार्यजीने छिपाय लीयो ॥ दो वस्तु दीए ॥ गुरुकी नांहि कीए ॥ सो दैवी न हतो ॥ दैवी बिना एतन्मारगमें अंगीकार नांहि ॥ या प्रकार दो वस्तु दीए ॥ परंतु ओर को गुरुभाव रहे ॥ तातें मारगको अनुभव हू न भयो ॥ मुखरताको दोष हू न गयो ॥ प्रथम सामर्थ्य तें कछुक सामर्थ्य हू घटी ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

इति प्र. १ समाप्त.

પ્રસંગ ૧ નો પરિશિષ્ટ ઐતિહાસિક ભાગઃ—

આ પ્રસગ અધુરો છે તે “ યદુનાથ દિગ્વિજયમાથી પૂર્ણ કરી અહીં આપ્યો છે —

वदरिकाश्रमान्त गत्वा तन्नाथ नत्वा व्यासाश्रम गता । तत्र शिला पतिता सा कृष्णदासेन गृहीता । तत्राऽऽचार्यैरस्मै वरद्वय दातु प्रतिज्ञातम् । ततोऽन्त प्रविश्य व्यास श्रीविल्वमङ्गलाऽऽज्ञया प्रमाणचतुष्टये सशयान-पृच्छन् । स तान्निरूप्याह । भक्ति प्रवर्त्तनीया, सिद्धान्तमन्था विधेया, प्रतिपक्षा निवार्या., गार्हस्थ्य विधेयमित्यादि । तथेत्युक्त्वा प्रणेमु । ततः प्रचलिता हरिद्वारोपमार्गेण सूकरक्षेत्र समागता ॥

સારાંશ—કૃષ્ણદાસને બે વરદાન આપવાની પ્રતિજ્ઞા કરી પછી આપ ભીતર પધાર્યા. બિલ્વમગળની આજ્ઞાથી શ્રીવ્યાસજી પાસે પ્રમાણચતુષ્ટયમા જે સદેહ હતા તે પૃછ્યા વ્યાસજીએ તે વર્ણન કર્યા, અને એમ કહ્યુ કે “ આપ ભક્તિનો પ્રચાર કરો, સિદ્ધાન્ત ગ્રન્થોનુ

નિર્માણ કરો, પ્રતિપક્ષોનુ નિવારણ કરો, અને ગાર્હસ્થ્ય ધારણ કરો- આચાર્યચરણે તે આજ્ઞા સ્વીકારી અને તેમને પ્રણામ કરી હરિદ્વારના ઉપમાર્ગથી સૂકર ક્ષેત્ર (સોરાં) પધાર્યા.

નોંધ:—"દિગ્વિજય"માં આ પ્રસંગ બીજી પરિક્રમા વખતે વર્ણવ્યો છે. અને અહીં પણ બીજી પરિક્રમા વખતે પ્રથમ (પહેલ-વહેલા) બદરીકાશ્રમ પધાર્યા, એમ ઉલ્લેખ છે કારણ કે લગ્નની પહેલી આજ્ઞા બીજી પરિક્રમા વખતે પાડુરંગ શ્રીવિઠ્ઠલનાથજીએ કરી. તે આજ્ઞાને ફરી વ્યાસજીદ્વારા શ્રીબદરીનાથજીએ પ્રમાણ કરાવી આ પરિક્રમાનો સમય લગભગ સં ૧૫૬૦નો આવે છે પહેલી પરિક્રમા શ્રીઆચાર્યજીએ ૧૫૪૯–૫૦ થી સંવત ૧૫૫૮–૫૯ સુધીમા નવ વર્ષમા પૂર્ણ કરી છે (જુઓ "યદુનાથદિગ્વિજય") બીજી પાચ વર્ષમા એટલે ૧૫૬૩–૬૪ સુધીમા અને ત્રીજીવાર ચાર વર્ષમા એટલે સં ૧૫૬૭-૬૮ સુધીમાં આપે ત્રણે પરિક્રમા પૂર્ણ કરી ત્યારપછી પણ આપનુ પૃથ્વીપર્યટન સ્થલે સ્થલે ચાલુજ હતુ. ત્યાં ત્યા શાસ્ત્રાર્થ થતો અથવા તીર્થસ્નાનાદિ પ્રસંગ હોય ત્યા આપ પૃથ્વીપર્યટનના મિષથી પધારતા હતા (જુઓ હરદ્વારની બેઠક ચરિત્ર) પહેલી પરિક્રમા પુર્ણ કરી બદ્રીકાશ્રમ પધાર્યા. બીજી પરિક્રમા ત્યાથી શરૂ કરી છે.

वार्ताप्रसंग २

बहुरि श्रीआचार्यजी श्रीबदरिकाश्रमतें आगे व्यासजीकी गुफामें पधारे ॥ सो (कृष्णदासकों संग नांहि ले गये)॥ तहां जीव की गम्य नांहि ॥ तातें कृष्णदास सों श्रीआचार्यजीने कह्यो जो तू ठाड़ो रहियो ॥ जब श्रीआचार्य-जी आगे कों पधारे ॥ तब वेदव्यासजी सामें ही आए ॥ सो

श्रीआचार्यजी को पधराइ के अपने धाम ले गए ॥ पाछे वेद-व्यासजीने श्रीआचार्यजीसों कह्यो ॥ जो तुमने श्रीभागवतकी टीका करी हे सो मोको सुनावो ॥ तब श्रीआचार्यजी जुगल गीतके अध्याय को एक श्लोक कहे ॥ सो श्लोक ॥ " वाम-बाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम् ॥ कोमलांगुलि-भिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः " ॥१॥ या श्लोक को व्याख्यान कियो सो तीन दिवस में संपूर्ण भयो ॥ तब वेदव्यासजीने कह्यो जो में यह व्याख्यान की अवधारना नाहीं करि सकत, तातें अब क्षमा करो ॥ पाछें श्रीआचार्यजी कह्यो जो तुम वेदांत के एसे सूत्र कहा कीए जो माया-वाद पर अर्थ लग्यो ॥ तब व्यासजी ने कह्यो जो मे कहा करूं ? मोकूं आज्ञा ही एसी हती ॥ जो एसे करियो ॥ जामें दोइ अर्थ प्राप्त होइ ॥ तब श्रीआचार्यजीने कह्यो ॥ जो हमने तो ब्रह्मवाद पर अर्थ कीयो हे ॥ सो सुनायो ॥ सो सुनके वेदव्यासजी बहोत प्रसन्न भए ॥ तापाछें वेदव्या-सजी सों विदा होइ के श्रीआचार्यजी तीसरे दिन पधारे ॥ तब कृष्णदास कों ठाडो देखि प्रसन्न भए * ॥ कहे तू ठाडो हे ॥ तू गयो नांहि ॥ सो काहेते ? ॥ तब कृष्णदासने कह्यो जो महाराज हों कहां जाऊं ॥ मोकों तुमारे चरणारविंद विना कछू ओर आश्रय नांहि हे ॥ तब यह सुनिके श्रीआचार्यजी-महाप्रभू आप वहुत प्रसन्न भए ॥ ओर कह्यो जो मागि ॥

---

* અહિં શ્રીધર્મનુ નિરૂપણ છે (જુઓ ૬૦ની વાર્તાનુ રહસ્ય)

तब फेरि वेई तीनि वस्तू मांगि ॥ तामें दोइ तो दीनी ॥ गुरु के घर की नांहि कीनी ॥

ओर को गुरुभाव हतो ॥ तातें प्रथम तें कछुक सामर्थ्य हू घटी ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

सो व्यासजी की गुफामें श्रीआचार्यजी कृष्णदासको संग नहि ले गये ॥ सो यातें जुगलगीतको प्रसंग कहनो है ॥ ताकी धारना अब ही कृष्णदास सों होइगी नाहि ॥ व्यासजी सों हू धारना ना भई ॥ सो यातें व्यासजी कलाअवतार हैं ॥ पुरुषोत्तम की वानी भावरूप की धारना केसें होइ ॥ यह श्रीभागवत व्यासजीमें श्रीपुरुषोत्तम आप बिराज कें कहि गए ॥ व्यासजी द्वारा मात्र हैं ॥ श्रीभागवतके रसको अनुभव नाहि है ॥ सो रहस्य हरजीवनदासनें या पदमें कह्यो है ॥

॥ राग केदारो ॥

जोलों हरि आपुनपो न जनावें ॥
*तोलों वेद पुरान स्मृति सब पढे सुनें नहि आवें ॥१॥
सुनि बिरंचि नारायन मुख सों नारदसों कहि दिनो ॥
नारद कहि वेदव्याससों आप सोर नहि कीनो ॥२॥
वेदव्यास ओसर को नांहि पढि तन ताप नसायो ॥
तिनतें सुनि सुकदेव परीक्षित राजाको जु सुनायो ॥३॥
जदपि नृपति मनि तजी देह सब कहा सुकदेवा ॥
तेऊ सर्वात्मभाव न उपज्यो तातें फेरि न सेवा ॥४॥

---

*तोलों सास्त्र पुरान भागवत पढे सुने नहि आवे ॥ ऐसों हू पाठ है ॥

श्रीभागवत अमृत दधि मथिके श्रीवल्लभ सर्वोत्तम ॥
करि आवरन दूरि निजजनके हाथ दिये पुरुषोत्तम ॥५॥
सेवा अरु शृंगार विविध रस श्रीवल्लभ प्रगटायो ॥
करि कृपा निज जीवन उपर हरजीवन स्वाद चखायो ॥६॥

या प्रकार श्रीआचार्यजी की कृपातें रसकी प्राप्ति हे ॥

इति प्र. २ समाप्त.

શ્રી આચાર્યચરણુ સવત ૧૫૬૮ (વ્રજ) ના જ્યેષ્ઠ માસમાં બદરીકાશ્રમ પધાર્યા તે વખતનો આ પ્રસંગ છે (શ્રીસુબોધિનીજીની શરૂઆત બીજી પરિક્રમામા માધવ ભટ્ટ શરણે આવ્યા ત્યારે કરી દીધી હતી તે સ્પષ્ટ છે) આ પ્રસગના પ્રમાણુમા શ્રીબદ્રીનાથજીના પુરો-હિત વાસુદેવને શ્રીઆચાર્યચરણે લખી આપેલા વૃત્તિપત્રનો નવમો શ્લોક છે. જુઓ,—

विद्वद्भि किल कृष्णदासकमुखै· शिष्यैरनेकैर्वृत·
सोहं श्रीबदरीवनान्तमगमं शुक्रे शकाब्दे तथा ।
देवाम्भ·पतिभूमिते सह नरं नारायणं वीक्षितुं
तत्र ' व्यासमुनीश ' सङ्गतिरभूदाकस्मिकी मे शुभा ॥९॥

નોંધ --

શ્રીઆચાર્યચરણુ બદરીકાશ્રમ ત્રણુ વખત પધારેલા છે તેમ યદુનાથદિગ્વિજયથી સ્પષ્ટ થાય છે અને તેની પુષ્ટિ આ વાર્તાથી થાય છે

યદ્યપિ આ વાર્તામા (પ્રાચીન હસ્તલિખિત પ્રતોમા) બદરી-કાશ્રમ પધારવાનુ બેજ વારનુ વર્ણુન સાધારણ દૃષ્ટિથી જેવામા આવે છે, તો પણુ સૂક્ષ્મ દૃષ્ટિથી જેતા ત્રણુવાર પધારવાનું સ્પષ્ટ માલુમ પડે છે.

અત્રે આપેલા પ્રસંગ (૧) અને પ્રસંગ (૨) નું સર્વ પુસ્તકોમાં (હસ્તલિખિત) એકજ પ્રસંગ તરીકે વર્ણન જોવામાં આવે છે. જ્યાં અત્રે આપેલા પ્રસંગની શરૂઆતમાં बहुरि શબ્દ દરેક ગ્રન્થમાં જોવામાં આવે છે. અને તેથી તે પ્રસંગ અલગ પડી જાય છે જેમ શ્રીભાગવતના અધ્યાય ૧૯ મા વ્રતચર્યાના પ્રસંગ પછી ૨૯ મા શ્લોકમાં "अथ गोपैः परिवृतो" ત્યાં अथ શબ્દથી અલગ પ્રકરણ ચાલુ થાય છે તેમ અહિં बहुरि શબ્દથી બીજીવારનું સ્પષ્ટ નિરૂપણ છે. એથીજ અમે તેનો પ્રસંગ ૨ તરીકે ઉલ્લેખ કર્યો છે

એટલે વૃત્તિપત્ર ત્રીજી પરિક્રમામાં બીજી વખતે બદ્રીકાશ્રમ પધાર્યા ત્યારે લખી આપ્યું છે અને વામન દ્વાદશીનો પ્રસંગ ત્રણ પરિક્રમા પૂર્ણ કર્યા પછી કેટલાક વર્ષ બાદ સં. ૧૫૭૬ મા-કુંભ ન્હાવા-હરિદ્વાર પધાર્યા છે. ત્યાં કેટલાક મહિના બિરાજી પછી બદ્રીકાશ્રમ પધાર્યા તે સમયનો છે. (જુઓ બેઠક ચરિત્ર) અને પહેલો પ્રસંગ બીજી પરિક્રમા વખતનો છે એમ બન્ને પ્રસંગ અલગ થઇ જાય છે

(क) बहुरि एक समय श्रीआचार्यजी गंगासागर पधारे ॥
तहां श्रीआचार्यजी आप पोढे हते ॥
वार्ता प्रसंग ३ ओर कृष्णदास पांव दाबत हते ॥
तब श्रीआचार्यजी आप मनमें विचारे ॥
जो धानके मुरमुरा होंइ तो आरोगें ॥ तब यह बात श्रीआचार्यजीके मनकी कृष्णदास मेघनने जानी ॥ सो इननें श्री आचार्यजीको निद्रा आई ॥ तब कृष्णदास उठिके गंगासागर ऊपर आये ॥ तब देखे तो पार एक होवा वरत है ॥ ताकी

अटकर तें पेरि कें गगाजी के पार गए¹ ॥ तहां एक गांव हतो ॥ तहांते खेतमें ते गीलो धान कटवायो ॥ टका की जगे द्वै टका दे के मुरमुरा सिद्धि करवाए ॥ पाछें कृष्णदास श्रीगंगाजी में पेरिके श्रीआचार्यजी के पास आये ॥ तब श्री आचार्यजी के चरणारविंद दाबि के जगाए ॥ मुरमुरा आगे राखे² ॥ कह्यो जो महाराज आरोगो ॥ तब श्रीआचार्यजी-महाप्रभूनने पूछी जो तू कहां ते लायो ॥ तब कृष्णदासने सब वृत्तांत कह्यो ॥ तब श्रीआचार्यजी प्रसन्न होइ कहें जो कछु मागि ॥ तब वेई तीन वस्तू मागी ॥ तब श्रीआचार्यजीने कह्यो जो जीव कहा मागि जाने ॥ या समें जो मागतो सोई देतो ॥ जो कहेतो तो श्रीठाकुरजी को स्वरूप दिखावतो॥

(ख) पाछे श्रीआचार्यजी आप सोरों पधारे ॥ तब कृष्ण-दासने विनती करिके कह्यो जो मेरे गुरु को ले आउं ॥ तब श्रीआचार्यजीने कह्यो जो तू खेद पावेगो ॥ पाछें कृष्णदास ईकेलेई गुरु के इहां गये ॥ सो जब गुरुने कृष्णदास को देख्यो ॥ तब कह्यो ॥ जो तेनें ओर गुरु कीये ॥ तब कृष्ण-दासनें कह्यो ॥ जो मेंने तो ओर गुरु नांहि किये ॥ मेरे गुरु तो आप ही हो ॥ परि तुमारे प्रतापतें मेनें पूर्ण पुरुषोत्तम पाये हें ॥ तब वाने कह्यो ॥ जो पूर्ण पुरुषोत्तम कैसें जानीए ? तब गुरुके आगे अग्नि की अंगीठी धकधकात हती ॥ तामें ते

---

१ અહિં વૈરાગ્ય ધર્મ. २ અહિં ઐશ્વર્ય ધર્મ (જુઓ ૬૦ની વાર્તાનુ રહસ્ય)

कृष्णदासनें दो हाथकी अंजुली भरि के अंगार हाथमें लीये ओर कहें जो श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप पूर्ण पुरुषोत्तम होइ तो मेरे हाथ मति जरियो ॥ ओर जो अन्यथा होई तो मेरे हाथ जरि बरि भस्म होइ जैयो ॥ सो एक मुहूर्त्त लों अग्नि हाथमें राखी ॥ तब उन गुरुने भय खाई ॥ तब कह्यो के डारी दे ॥ पाछे उन गुरुने कृष्णदास के हाथ पकरी के अपने हाथ सों अग्नि डारि दीनी ॥ तब कृष्णदास तहांते खेद पाइ के उठि आए ॥

(यह प्रसंग सब वल्लभाष्टक की टीकामें श्रीगोकुलनाथजी ने विस्तारपूर्वक कह्यो है ॥)

(क) सो गंगासागर के तीर पधारे ॥ सो रात्रिको पोढे हते ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

अर्धरात्रिको सुरसुरीकी मनमें आई जो भोग धरिये ॥ सो कृष्णदास पर कृपा करन के लिये ॥ काहेतें पुरुषोत्तमको कछू वस्तु की अपेक्षा होत नाहि ॥ कदाचित होई तो याहुके उपर कृपा करन के अर्थ ॥ सो कृष्णदास कों जनाई ॥ तब कृष्णदास तरिके पार जाय के आए ॥ यह ईश्वरकार्य हैं ॥ जीवसो न होइ ॥ तब कृष्णदास चरण दाबि के जनाए (जगाए) तब श्रीआचार्यजी आप अरोगि के बहोत प्रसन्न भए ।

तब कहे मागि । पाछे वही तीन वस्तू मांगे ॥

तब श्रीआचार्यजी कहे जीव कहा मांगे ? जीवको मांगनो हि बाधक है ॥ तातें परमानंददासने गायो है " मागे सर्वस्व जात है परमानंद भाखे" ॥

(ख) ओर गुरु को भाव चित्त मे हतो ॥ ता करि महाप्रभू के वचन को विश्वास न भयो ॥ जो एकवार दिए सो दृढ हैं ॥ फेरि कहा मागनो [१] ओर मारग की दुर्लभता दिखाए ॥ श्रीमहाप्रभूजी के मनकी बात सुरसुगाकी जाने ॥ परतु मारग हृदयारूढ कृपाही ते होइ ॥ दोष को स्वरूप हे जो मुखरता दोष, जीवको स्वभाव हू जीन के हाथ नाहीं ॥ जब श्रीआचार्यजी छोडावें तब ही छूटे ॥ तातें श्रीआचार्यजी विना ओर मे इश्वरबुद्धि तथा गुरुबुद्धि करे ताको एतन् मारगको फल कबहू सिद्ध न होइ ॥ यह भाव जताए ॥ पाछे कृष्णदास गुरु के यहां सूं दु ख पाय, अन्याश्रय छोडि, महाप्रभूके पास आए ॥ तब मारग को सिद्धांत हृदयारूढ भयो ओर मुखरता दोष हू गयो ॥ ताते फेरि श्रीआचार्यजी सो नाहिं माग्यो ॥ अन्याश्रय एसो बाधक हे ॥ *

इति प्र २ समाप्त.

---

१ સરખાવો શ્રી હરિરાયજીની વાણી —

निजाचार्येषु सतत मनस्तत्प्रियसूनुषु ।

स्थापनीय न चान्येषु सममत्या कदाचन । (चतु श्लोकी)

* ગગાસાગરનો સમય ૧૫૬૦–૬૧ લગભગનો અનુમાન થાય છે અહી શ્રીઆચાર્યજીને દેહત્યાગની આજ્ઞા થઇ "गगासागर सगमे" (જુઓ અત કરણ પ્રબોધ) તે આજ્ઞા સ્વીકારી નહિ કારણ કે આપનો દેહ અલૌકિક છે તેમજ લીલામા થયેલી પ્રથમ આજ્ઞાનુ પાલન પૂર્ણ રૂપથી થયુ નથી આ આજ્ઞા અત કરણમા થઇ છે અને તેજ વખતે આપે સુરસુગ ભોગ ધરવાની ઇચ્છા કરી અને શીઘ્ર કૃષ્ણદાસે તે ઇચ્છા જાણી કાર્ય સિદ્ધ કર્યું. અહી કૃષ્ણદાસે દાસધર્મ દેખાડયો સ્વામીની ઇચ્છા (વિના આજ્ઞા કરે) જાણીને કાર્ય કરવુ તે દાસધર્મ તેથી આપ પ્રસન્ન થયા

वार्ता प्रसंग ४

बहुरि मार्ग हृदयारूढ भये पाछे कदाचित् गोप्य वार्ता होइ सो सबन के आगे कहे ॥ तब काहू वैष्णवने श्रीआचार्यजी सों कही जो महाराज कृष्णदास गोप्य वार्ता सबन के आगे कहत है ॥ तब श्रीआचार्यजीने कृष्णदास सों पूछी, जो तू गोप्य वार्ता सबन के आगे क्यों कहत है? तब कृष्णदासने कह्यो जो महाराज, आप उनही सों पूछिये ॥ जो मेंने कहा कह्यो है? तब उन वैष्णव सों श्रीआचार्यजीने पूछी जो तुमसों इन कृष्णदासनें कहा वार्ता कही? तब उन वैष्णवनें कह्यो ॥ जो महाराज हमको तो कछु सुधि रही नाहीं ॥ तब श्रीआचार्यजी मुसिकाईके चुप करि रहे ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

मारग हृदयारूढ भयो ॥ सो रसके भरते रह्यो न जाइ ॥ सो रहस्यवार्ता वैष्णवसों कहे ॥ तामें यह जताए ॥ कृष्णदास अपने अनुसार सबन सों कहते ॥ परंतु पात्र बिना रस रहे नाहि ॥ (तातें वैष्णवने कही, परंतु सुधि रही नाहि)

और कृष्णदासकी यह दासीनदास नें इनसों कहा ॥ जो यह तिन सों न जानो ॥ यह देऊ भाव जताए ॥

इति प्र ४. समाप्त.

(क) ओर एक समें श्रीआचार्यजी सों कृष्णदासनें प्रश्न पूछ्यो जो महाराज श्रीठाकुरजी को

वार्ता प्रसंग ५

प्रिय वस्तू कहा हे ॥ ताको प्रतिउत्तर श्रीआचार्यजी कहत हें ॥ जो श्रीठाकुरजी उत्तम तें उत्तम वस्तु के भोक्ता हें ॥ परंतु गोरस अति प्रिय हे ॥ गोरस शब्देन वाणी कहियति हे ॥ ताको भाव अनिर्वचनीय हे ॥ ओर सबन ते भक्तको स्नेहमय प्रभाव अतिप्रिय हें ॥ जातें भक्तवत्सल कहवावत हे ॥

तब कृष्णदासने फेर पूछी जो श्रीठाकुरजी कों अप्रिय वस्तु कहा हे ? तब श्रीआचार्यजीनें कह्यो ॥ जो श्रीठाकुरजी कों धुंआ समान अप्रिय ओर नाही हे ॥ ताहूतें अप्रिय श्रीठाकुरजी कों भक्तको द्वेषी हे ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

गोरस सो वैष्णव को स्नेह परस्पर ओर वैष्णव को कलेश सो धुंवा ॥ जहां स्नेह तहां श्रीठाकुरजी पधारे जानिए ॥ जहां क्लेश तहां ते श्रीठाकुरजी दूरि जानिए ॥

(ख) फेरि कृष्णदासने प्रश्न पूछयो ॥ जो महाराज श्रीरघुनाथजी संपूर्ण सृष्टि को लेके स्वधाम पधारे ॥ ओर राजा दशरथ को स्वर्ग दीयो ॥ सो काहेते ? ताको प्रति उत्तर श्रीआचार्यजी कहे जो श्रीरघुनाथजी तो परमदयाल हें ॥ तातें स्वर्ग दीनो ॥ नातर स्वर्ग की योग्यता राजा दशरथ को न हती ॥ काहेते जो अपनो वचन सत्य करिवे को श्रीरामचंद्रजी को वनवास पठाए ॥ एसो कर्म कीया ॥

यह प्रश्न हीनाधिकारी को है काहे ते साक्षात पुरुषोत्तमकी लीला

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

ते मन बहार करी यह प्रश्न कह्यो ? यामें यह जनाए ॥ (कृष्णदासनें) अबहो " मानसी सा परा मता " यह फल नाहि भयो ॥ तब कृष्णदास के समाधान के अर्थ आप कहे जो रामचन्द्रजी दयाल हें . . (देखो वार्ता)

यह कहि अपने मार्ग को सिद्धान्त जनाए ॥ जो अपने हठधर्म करि धर्मी जो श्रीठाकुरजी तिनको श्रम करावे तो हीन फल धर्मको स्वर्ग ही मिले ॥ श्रीठाकुरजीको फल न मिले ॥

इति प्र ५ समाप्त.

वार्ता प्रसंग ६

ओर एक समें श्रीआचार्यजी सों कृष्णदासनें फेरि प्रश्न पूछ्यो जो भक्त होइ के श्रीठाकुरजी की लीला को भेद नांहि जानत सो काहेतें ? तब श्रीआचार्यजीनें कह्यो जो ये विधिपूर्वक समर्पन ज्यों कयो हे त्यो नांहि करत ॥

* विधि सो समर्पन पदारथ को ज्ञान नांहि ॥ अहंता ममता अपनी सत्ता अहंकार को समर्पन ॥ जो अब दास भयो ॥ प्रभु आधीन हों ॥ प्रभु करे सो सर्वोपर सिद्धांत हे ॥ यह भेद अपने में नांहि ॥ ओर अपनि योग्यता मानि भगवदीय को संग नांहि करत हे ॥ तातें योग्यता मानें

* स्त्रोधी ... [illegible]

तब प्रभु अप्रसन्न होई जात हें ॥ यह मारग दैन्य को हे ॥ सो दैन्य नांहि हे ॥ इत्यादिक अंतरायतें अपनो स्वरूप ओर भगवदीय को स्वरूप श्रीठाकुरजी को स्वरूप नांहि जानत हें ॥ ओर भगवद्भक्त को संग करे तो श्रीठाकुरजी की लीला को भेद जाने ॥ सो तो योग्यता समज नांहि करत हे ॥ ओर जो कछू करत हे सो अंतःकरण पूर्वक नांहि करत हे ॥ ता ते श्री ठाकुरजी को स्वरूप ओर लीला को भेद नांहि जानत हे ॥+

उत्तम भक्त को संग करे ॥ श्रीभागवत श्रीसुबोधिनीजी आदि ग्रन्थ को अहर्निश अवगाहन करे ॥ तब भगवद्भाव उत्पन्न होइ ॥ श्रीठाकुरजी व्रजभक्तन विषे सदैव रहत हें ॥ तहां सेवा करि के बंधे हें ॥ तहां एतन्मार्गीय वैष्णव ताके हृदय में श्रीठाकुरजी विराजत हें ॥ ताको संग करनो ॥ तहां गजनधावन आदि वैष्णव को दृष्टांत दीनो ॥ जिन जिन ने भावपूर्वक सेवा करी तिन तिन के सकल मनोरथ सिद्ध भये ॥ जातें लीलास्थ व्रजभक्तन के भाव को विचार करनो ॥

जो वैष्णव श्रीठाकुरजी को स्वरूप जानत हे ॥ तिनको स्वरूप अलौकिक दृष्टि सों जान्यो जाय ॥ जो आज्ञा होइ सो जाने ॥ जो वैष्णव श्रीठाकुरजी को जानत हे सो जो कछू काज करत हे सो श्रीठाकुरजी के अर्थ करत हें ओर श्रीठाकुरजी विषें विरह ताप भाव करत हें ॥ अपुने स्वदोष

को विचार करत हैं ॥ (ऐसे जीव) अपुने स्वरूप विचारे जो हों कोन हों ? पहले कहा हतो ? भगवद् संबंध कीये तें हों कोन हो गयो ? अब मोकों कहा-कर्तव्य ? रात्रदिवस ऐसे विचार करत रहै ॥ तब अपनो स्वरूप जाने ॥ ये प्राकट्य श्रीव्रजभक्तन के अर्थ है । ताते उत्तम संग होइ तो एतन्मार्गीय ठाकुर को जाने ॥ और शास्त्र पुरान अनेक इतिहास हैं ॥ ताते व्रजराज के घर प्रगटे सो स्वरूप जान्यो न जाय ॥ ये ठाकुर तो तबही जाने जब भगवद्भक्त को संग करे ॥ सेवा को प्रकार एतन्मार्गीय वैष्णव जानत है ॥ तिनसों पिछी भाव पूछि के सेवा करनी । तब भगवद्भाव उत्पन्न होइ ॥ श्रीठाकुरजीकी लीला को सब भेद जाने ॥

इति वार्ता प्र ६ समाप्त ॥

---

१ और श्रीआचार्यजी श्रीबद्रीनाथजी के मंदिर पाउ धारे ॥ तब वेदव्यासजी साथ है ॥

वार्ता प्रसंग ७ तब श्रीआचार्यजी वेदव्यासजी सों पूछी जो भ्रमर गीत के अध्याय में

उद्धव कों व्रजभक्त पास पठाए ॥ ता प्रसंग में आधो श्लोक पढत है ॥ तब वेदव्यासजीने अर्द्धश्लोक कयो सो श्लोक ॥ " आत्मत्वाद्भक्तवद्यस्यात्मत्यवात्त्वात्स्वभावतः" सो यासों

टीका श्रीआचार्यजीनें पहले ही कीनी हे* ॥ सो सुनि के वेद व्यासजी कहे जो तुम धन्य हो ॥ ता पाछें श्रीआचार्यजी महा प्रभु श्रीबद्रीनाथजी के मंदिर में पधारे ॥ ता दिन वामनद्वा-दशी हती ॥ ता दिन श्रीआचार्यजी व्रत करते ॥ सो फला-हार श्रीव्यासजी हूं ढूंढे ॥ आर कृष्णदास हूं ढूंढे ॥ परंतु मिल्यो नांहि ॥ तब श्रीबद्रीनाथजीने श्रीआचार्यजी सों कह्यो ॥ जो मेनें फलाहार को सर्वत्र खोज कीयो ॥ परि पावत नांहि ॥ तातें तुम रसोई करि के श्रीठाकुरजी को भोग समर्पि के भोजन करो ॥ तब श्रीआचार्यजी विचारे जो श्रीठाकुरजी की इच्छा एसी ही दीसत हे ॥ इतने में कृष्णदासने आइ के कह्यो जो महाराज, इहां कछु फलाहार पाइयत नांहि ॥ तब वेदव्यासजी द्वारा श्रीठाकुरजीने कही जो सामग्री करि भोजन करो ॥ "उत्सवांते च पारणा" यह वचन हे ॥ तापाछे श्रीआचार्यजी आपु रसोई करिके श्रीठाकुरजी को भोग समर्पि के आप भोजन कियो ॥

पाछें ता दिनतें वामनद्वादशी के दिना व्रत न करते ॥ पाछे श्रीआचार्यजी श्रीबद्रीनाथजी ते बिदा होइके कृष्णदास को साथ ले के पधारे ॥[1]

---

* अत्र प्रायेण साधनचतुष्टयप्रतिपादकमर्धमन्तरितमिति प्रतिभाति 'आत्मस्वाद . ..' (सुबोधिनी १०-४४-२९)

૧ આ પ્રસંગ ત્રણે પરિક્રમા બાદ અડેલવાસ કર્યો ત્યાર પછી સં ૧૪૭૬મા હરિદ્વાર થઈ અહીં (બદ્રીકાશ્રમ) પધાર્યા તે વખતનો છે. (જુઓ હરિદ્વાર બેઠક ચરિત્ર)

फलाहार ना मिल्यो ॥ ताको प्रयोजन यह जो, श्रीआचार्यजी चाहैं सो सबहि मिले ॥ व्यासजी कृष्णदास सगेवि ढूंढनहार ॥ सो फलाहार या तें न मिल्यो जो श्रीआचार्यजी के मनमें सामग्री उत्सवकी करनी ॥ ऊपर ते मर्यादा राखिवे के लिए फलाहारकी करी ॥ सो फलाहार न मिल्यो ॥ तातें वेदव्यासजी द्वारा श्रीठाकुरजीने करवाई ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

तातें श्रीगुसाईजीने सात बालकोन मे ॥ बड़े घर (प्रथम पुत्र श्रीगिरिधरजी के घर) यह रीति राखी उपवास ॥ और टोग "उत्सवाने च पारणा" श्रीठाकुरजी सब सामग्री अरोगे ॥

इति प्र. ७ समाप्त.

वार्ता प्रसंग ८

श्रीआचार्यजीने जब आसुरव्यामोह लीला करी, तब कृष्णदास ने हू विप्रयोग करी देहको त्याग कीयो ॥ ×

इति प्र. ८ समाप्त.

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

દામોદરદાસ સંભરવાળાની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને તેનું રહસ્યઃ–

"चेतस्तत्प्रवण सेवा" इति ॥ ઇશ્વરમા ચિત્તનુ પૂર્ણ પરોવાવવુ તેનુ નામ સેવા દરેક મનુષ્યનુ ચિત્ત ત્રણ વિભાગમા વટાએલુ છે ૧ ખાનપાન, ૨ ગાનતાન અને ૩ સુદર પહેરવુ ઓઢવુ તે ત્રણે પ્રકારની ચિત્તવૃત્તિને **ઇશ્વરમાં યોજવાને અર્થે** શ્રીમદાચાર્યચરણે ૧ ભોગ, ૨ રાગ અને ૩ શૃગાર પ્રાધાન્ય ઐશ્વર્યયુક્ત સેવાનો દામોદરદાસને ત્યા સર્વ પ્રથમ પ્રાદુર્ભાવ કર્યો છે શ્રીઆચાર્યચરણે દામોદરદાસને ત્યા આ સેવા ભાવાત્મક ઐશ્વર્યરૂપે સ્થાપન કરી એટલે અભોગ્ય ઉત્તમોત્તમ વસ્તુ શ્રી પ્રભુને અગીકાર કરાવવી એવી આજ્ઞા કરી (જુઓ પ્ર૦ ૧) **શ્રી દ્વારકાનાથજીએ તેનો બાહ્ય પ્રાદુર્ભાવ સાંગોપાંગ પ્રકટ કરાવ્યો.** (જુઓ પ્ર૦ ૩) એથી મદિર, ટેરા, ઝારી ઝરોખા આદિ **સર્વ લીલા સૃષ્ટિનો ઐશ્વર્યક્રમ પ્રથમ દામોદરદાસને ત્યાં પ્રકટ થયો.**

આ રીતે સજ્ઞાન પુરુષ અને અજ્ઞાન પુરુષ બન્નેના મનને આકર્ષીને પ્રભુમા યોજવાને અર્થે ઐશ્વર્યરૂપ સેવાનો પ્રાદુર્ભાવ કર્યો આથી અનેક જીવો કૃતાર્થ થયા "**રાજ કાજે જોડીયા જન ઉચ્ચાવચ નરનાર**" દરેક ઉચ્ચ નીચ તેમજ વિવિધ અધિકારવાળા જીવોનો પણ આ ઐશ્વર્યરૂપ સેવામા અગીકાર છે, અને તેની કૃતાર્થતા પણ છે માટે આ સેવા વિના ચિત્તમા રહેલી અનેક પ્રકારની વાસનાઓનો નિરોધ દુ શક્યજ નહિ પણ અશક્યજ છે માટે ઉપરના દેખાવ પૂરતા પાખડ ધર્મયુક્ત સંન્યાસાદિ કરતા ભગવત્સેવાનિમગ્ન ગૃહસ્થાશ્રમજ એક સર્વસુલભ ભગવત્પ્રાપ્તિના સાધનરૂપ છે આ સેવાથી અહતા મમતા સહજમા નષ્ટ થાય છે (જુઓ દામોદરદાસની સ્રીનુ પુત્ર ઉપરનુ મમત્વ કેવુ દૂર થયુ ? પ્રસગ ૭-૮) અને

આગળ ઉપર પુષ્ટિના સંન્યાસરૂપ વિપ્રયોગ અવસ્થાની સિદ્ધિ પ્રાપ્ત થાય છે

આથી આ દામોદરદાસની વાર્તામા અપ્રાકૃત ઐશ્વર્યનુ આધિદૈવિક સેવા અર્થે પ્રાકટ્ય નિરૂપ્યુ છે માટે આ વાર્તા શ્રીઆચાર્યજીના ભાવાત્મક નિરોધના આધિદૈવિક ઐશ્વર્યરૂપ કહી

अब श्रीआचार्यजी महाप्रभूनके सेवक दामोदरदास संभलवारे क्षत्री कन्नोज के वासी तिनकी वार्ता ॥

शरण आये पहेले को प्रकार (जन्म १)

दामोदरदास को बालपनें तें विरह हतो जो श्रीठाकुरजी की प्राप्ति कोंन प्रकार सो होई ? सो दामोदरदास एक समय प्रयाग में आए हते मकरस्नानको ॥ सो कृष्णदास सो मिलाप भयो ॥ तब चर्चा करत कृष्णदास (मेघन) ने कही श्रीवल्लभाचार्यजी प्रकट भये हैं ॥ सो दक्षिण में पधारे हे ॥ कृष्णदेव राजा की समिपे मायावाद खंडन कीए हे ॥ उनकी कृपातें निश्चय श्रीठाकुरजी मिलेंगे ॥ मेरे गुरु सों नेह हे तिनसो कछू कार्य मेरो भयो नांही ॥ तातें जब में जहां श्रीआचार्यजी

* १ શ્રીહરિરાયજીકૃત, સંશોધિત ઈતિહાસ.

होइंगे तहां जाऊंगो ॥ यह दामोदरदाससों कहे के कृष्णदास दक्षिण देश गए ॥

जब तें दामोदरदास के पास तें कृष्णदास मेघन श्रीआचार्यजी पास गए ॥ तब तें दामोदरदासको विरह बहोत रहे॥ जो मोकों श्रीआचार्यजी कोन प्रकार मिलेगे ? ॥ या प्रकार विरह करत माह महिना में मकरस्नान दामोदरदास कोए॥ सो महा सुद १५ को दामोदरदास मकरस्नान करत हते॥ ता समय एक तांबे को पत्र गंगा यमुना के सगम में तें दामोदरदास के हाथ आयो ॥ सो दामोदरदास घर लाए ॥ जब रात्रिकों दामोदरदास सोए ॥ तब दामोदरदास को स्वप्न भयो ॥ यह पत्र वांचे ताकी तू शरन जैयो ॥ तब सवारे उठि के प्रयाग में वडे २ पडित ब्राह्मण महापुरुष मकरस्नानको आए हते ॥ तिन सबन को वंचायो ॥ कोई बांचि न सके ॥ तब दामोदरदास काशी में शेठ पुरुषोत्तमदास के इहां व्योहार हतो ॥ (तहां गये) खरच की हुंडी सेठ पुरुषोत्तमदास के यहां ले गये हते ॥ तिनसों सगरी बात दामोदरदासने कही जो यह पत्र श्रीआचार्यजी बांचेंगे ॥ और काहूकी सामर्थ्य नांहीं ॥ मोसो कृष्णदास मेघन कहे गए हैं ॥ जो श्रीआचार्यजी की सरन तें श्रीठाकुरजी मिलेंगे ॥ (सो) यह सुनिके सेठ पुरुषोत्तमदास हू को चटपटी लागी ॥ जो मोको कब श्रीआचार्यजी को दरसन होइंगे ? सो शेठ पुरुशोतमदासकी वार्ता के भाव में वर्णन करेंगे ॥ या प्रकार दामोदरदास दिन १९

कासो रहे ॥ परंतु पत्र कोउ न वांच्यो ॥ तब कन्नोज में अपने घर आए ॥ एसे विरह करत * कछूक महिनामें श्री आचार्यजी महाप्रभू कन्नोज पधारे ॥ तब गामके बाहर बागमें उतरे ॥

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

દામોદરદાસ સંભરવાળાનો શેષ ભૌતિક ઇતિહાસઃ-

દામોદરદાસ જાતે ક્ષત્રિય હતા. તેમનો જન્મસમય સંવત ૧૫૩૦ લગભગનો છે તેમના પિતા કરોલીના ચંદ્રવંશીય રાજાના દિવાન હતા. જ્યારે તેમના પિતાએ દેહ છોડયો ત્યારે તેઓ લગભગ ૨૦ વર્ષના હતા તેમના પિતાએ તેમને નાનપણથીજ રાજ્યનીતિના પ્રખર અભ્યાસી કર્યા હતા અને રાજા સાથે તેમનો ઘનિષ્ઠ પરિચય કરાવેલો હતો દામોદરદાસની બુદ્ધિ અત્યંત તીવ્ર હતી અને બહુજ નાની અવસ્થામાં પણ તેમના પિતાને કવચિત્ રાજ્યનીતિને અત્યંત ઉપયોગી એવી સલાહ આપતા કે જેથી પિતા પોતાના એકના એક પુત્રનું મુખ જોઈ રહેતા અને પોતાના પુત્રની બુદ્ધિ ઉપર મુગ્ધ થતા હતા જ્યારે રાજાને દામોદરદાસની તીવ્ર બુદ્ધિનો પરિચય થયો ત્યારે દામોદરદાસના પિતાને તેઓએ હુકમ કર્યો કે પોતાના પુત્રને નિત્ય રાજ્યદરબારમાં સાથે લાવ્યા કરો અને રાજ્યથી માહિતગાર કરો. તેમ કરતા કરતા લગભગ પાંચેક વર્ષમાજ જ્યારે દામોદરદાસના પિતાએ દેહ છોડયો ત્યારે રાજાએ દામોદરદાસને તેમના પિતાની દિવાનગીરી ઉપર કાયમ કર્યા યદ્યપિ દામોદરદાસ રાજ્યનીતિમાં પૂર્ણ

---

* સંવત ૧૫૫૧-૫૨ મા શ્રીઆચાર્યજી કન્નોજ પધારેલા હોવા જોઇએ (જુઓ શેષ ભૌતિક ઇતિહાસ)

સડોવાયેલા હતા છતા તેમનુ ચિત્ત વૈરાગ્યથી પૂર્ણ હતુ અને ભગવત્પ્રાપ્તિના અર્થે અનેક સાધુ પુરુષોનો સગ કરતા હતા

વ્રજ સ ૧૫૪૮ ના વૈશાખ વદ ૨ ઉપરાત ત્રીજના દિવસે શ્રીઆચાર્યજીએ વિદ્યાનગરથી પ્રયાણ કર્યુ સર્વ પ્રથમ દક્ષિણના ઝારખડમા પધાર્યા ત્યા ભગવદાજ્ઞા થઈ કે આપ વ્રજમા પધારી મારી સ્થાપના કરો તેથી આપ વ્રજ તરફ પધાર્યા રસ્તામા કન્નોજ મુકામ કર્યો ત્યા ભગવદાજ્ઞા થઈ કે અહીંના જીવોને શરણે લેવાના છે પ્રથમ આજ્ઞાનુ પાલન કરવા આપ શીઘ્ર સવત ૧૫૪૯ ના ફાલ્ગુન માસમા વ્રજમા પધાર્યા ત્યા શ્રીજીને પાટ બેસાડી સ ૧૫૫૦ મા બ્રહ્મસબધનો મત્ર શ્રીજીના શ્રીમુખથી પ્રકટ કરાવી આપ વ્રજયાત્રા કરી પૃથ્વીપરિક્રમા કરવા પધાર્યા સંવત ૧૫૫૧–૫૨ મા આપ કન્નોજ પધાર્યા

આપના પધારવાના એક દિવસ પહેલા દામોદરદાસને સ્વપ્નમા શ્રીદ્વારકાધીશે જણાવ્યુ કે મારૂજ બીજુ સ્વરૂપ શ્રીવલ્લભાચાર્યજી કાલે કન્નોજમા પધારશે અને તે તને તાબાપત્રનો અર્થ સમજાવશે માટે તુ તેમને શરણે જજે જ્યારે શ્રીઆચાર્યજી કન્નોજ પધાર્યા ત્યારે ગામ બહાર ગગાતટ ઉપર આપે બગીચામા મુકામ કર્યો અને કૃષ્ણદાસને સામાન લેવા બજારમા મોકલ્યા આપણે પહેલા વાચી ગયા છીએ કે કૃષ્ણદાસનો અને દામોદરદાસનો પ્રથમ મિલાપ સં ૧૫૪૭ ની મકરસક્રાતિ વખતે પ્રયાગમા થયો હતો (જુઓ કૃષ્ણદાસનો ઈતિહાસ) જ્યારે દામોદરદાસ રાજદ્વારમાથી ઘોડા ઉપર બેસીને ઘેર આવતા હતા, તેવામા બજાર વચ્ચે તેમણે કૃષ્ણદાસને જોયા જેથી તેમણે શ્રીવલ્લભાચાર્યજી પધાર્યા છે કે નહિ તેમ પૂછ્યુ (વિશેષ જુઓ વાર્તા)

× × ×

શ્રીઆચાર્યચરણે તાબાપત્ર વાચીને તેમાની આકૃતિના થતા

બન્ને અર્થ દામોદરદાસને સમજાવ્યા. માહાત્મ્યજ્ઞાનરૂપ આધ્યાત્મિક અર્થ સમજાવતા આપશ્રીએ તે આકૃતિઓનુ આ પ્રમાણે રહસ્ય કહ્યુ —

આ ગીધ અને સ્ત્રીના જેવી જે આકૃતિ જોવામા આવે છે તે પૂતનાની છે, અને તે અવિદ્યા (અજ્ઞાન) રૂપ છે. એની પાસે ગર્દભ (ગધેડા) ની જે આકૃતિ છે, તે 'ધેનુક' રાક્ષસની છે અને તે 'દેહાધ્યાસ' નુ રૂપ છે એની પાસે જે ઘોડાની આકૃતિ છે, તે કેશી દૈત્યની છે, અને તે 'ઇન્દ્રિયાધ્યાસ' રૂપ છે એની પાસે જે રાક્ષસની આકૃતિ છે તે 'પ્રલમ્બાસુર' છે અને તે અતઃકરણાધ્યાસનું સ્વરૂપ છે. એની પાસે જે અગ્નિમડલ છે તે દાવાનલ છે તે પ્રાણાધ્યાસરૂપ છે અને આ સન્મુખ વેણુનાદ કરતી જે મૂર્તિ છે તે સાક્ષાત શ્રીકૃષ્ણની છે એ શ્રીકૃષ્ણ અવિદ્યા (પૂતના) દેહાધ્યાસ (ધેનુક) ઇન્દ્રિયાધ્યાસ (કેશી) અત કરણાધ્યાસ (પ્રલમ્બ) ને નષ્ટ કરે છે. અને પ્રાણાધ્યાસ (દાવાનલ) નુ પાન કરે છે. અને આ પાસેજ જે સર્પની આકૃતિ છે તે 'કામક્રોધ' રૂપ છે તેના ઉપર શ્રીકૃષ્ણ નૃત્ય કરે છે કારણ કે શ્રીકૃષ્ણની આગલ કામક્રોધનુ પ્રાબલ્ય નથી ચાલતુ અને આ 'ગોલાકાર' આકૃતિ છે તે બ્રહ્મરૂપ છે અને આ સાકાર 'બ્રહ્મવાદસૂચક' ચિહ્ન છે, એને આ શ્રીકૃષ્ણની સામે હાથ જોડી ઉભેલી સ્ત્રીની આકૃતિ તે 'ભક્તિ'રૂપ છે તેના તરફ શ્રીપ્રભુ પ્રસન્નતાથી જોઈ રહ્યા છે આ ભક્તિની પાસે જે બે બાલકોની આકૃતિ છે, તે જ્ઞાન અને વૈરાગ્ય છે. એ એમ સૂચન કરે છે કે ભક્તિ થવાથીજ જ્ઞાન અને વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થાય છે. એની પાસે પજાની આકૃતિ છે તેમાં આ દીર્ઘરેખા છે તે પૂર્ણ આયુષ્યની છે. અને આ નાની રેખા છે તે સાધુતાની છે એની પાસે આ બીજી સમ્મિલિત રેખા છે તે ઐશ્વર્યની છે. આની પાસે ભક્તિનુ સ્વરૂપ અને ભક્તિ નિરૂપણુ તત્ત્વ છે તેથી એ સિદ્ધ છે કે મનુષ્ય ભક્તિનિષ્ઠ થાય તે દીર્ઘાયુષ્યવાન, સાધુસ્વભાવ, અને ઐશ્વર્યવાન થાય છે. આ પ્રમાણે

બધી આકૃતિની એકવાકયતા કરીને આધ્યાત્મિક અર્થ દામોદરદાસજીને કહ્યો પછી ભક્તિ (ભાવ) રૂપ આધિદૈવિક અર્થ આ પ્રમાણે આજ્ઞા કરવા લાગ્યાઃ--

આ સર્વ આકૃતિઓ અનેક પ્રકારની કુન્જોના ચિત્રામણ રૂપ છે અને તારૂ જ આધિદૈવિક સ્વરૂપ (સ્ત્રી આકૃતિ રૂપ) આ ચિત્રા સખીનુ છે શ્રીસ્વામિનીજીની નિકુજ મહલમા ચિત્રામન કુજ સમ્હારવી એ તારી સેવા છે. અને તું શ્રીસ્વામિનીજીની સખી છે

આ પ્રકારે જ્યારે શ્રીઆચાર્યજીએ બન્ને અર્થરૂપ લીલાનું સમગ્ર સ્વરૂપ અને ભાવનુ દામોદરદાસને દર્શન કરાવ્યુ ત્યારે દામોદરદાસને સમગ્ર લીલા અને પોતાના સ્વરૂપનુ જ્ઞાન થયુ ત્યાર પછી તેઓ શરણે આવ્યા *

શ્રીઆચાર્યજીએ રાજસેવાનુ પ્રથમ મડાણ દામોદરદાસને ત્યા (વ્રજ) સ ૧૫૫૨ ના ચૈત્ર માસમા સ્થાપ્યુ અને તેથી જ શ્રીઠાકુરજીનુ નામ પણ શ્રીદ્વારકાધીશ કાયમ રાખ્યુ.

પછી દામોદરદાસે શ્રીઆચાર્યજીને બે હાથ જોડી વિનતિ કરી કે કૃપાનાથ! વ્રજલીલામા નદનદન તો દ્વિભુજ છે, અને આ શ્રીદ્વારકાધીશનુ સ્વરૂપ ચતુર્ભુજ છે, તેમજ પુષ્ટિલીલામા આયુધધારણનુ કારણ શુ ? તે કૃપા કરીને સમજાવો

ત્યારે શ્રીમહાપ્રભુજીએ અત્યત પ્રસન્ન થઈ આ પ્રકારે દામોદરદાસને આજ્ઞા કરી કે —

શ્રીદ્વારકાધીશનુ સ્વરૂપ અતિપ્રાચીન છે આ સ્વરૂપનુ વર્ણન શ્રીમદ્ભાગવત, ગીતા, ઉપનિષદ, મહાભારત, વાલ્મીકીય રામાયણ, તુલસીકૃત રામાયણ અને પદ્મપુરાણ આદિ અનેક ગ્રન્થોમા છે

---

*तत्र कलिकस्थान दृष्ट्वा कान्यकुब्ज समेत्य गङ्गातटे स्थिता । तत्र दामोदरदासदत्तताम्रपत्रस्थलीलासम्बन्धार्थं निरूप्य तदभिज्ञान तत्कर पल्लवस्थ चित्र प्रदर्श्य, त सकुटुम्ब च शिष्य कृत्वा, तत्कृते श्रीद्वारकेश्वर प्रतिष्ठाप्य । (यदुनाथ दिग्विजय प्रथम उत्तरयात्रा)

શ્રીદ્વારકાધીશ પરમ ગુપ્ત રહસ્યલીલાનુ સ્વરૂપ છે. આ સ્વ-
રૂપને કોઈ જાણી શકયુ નથી. તેં પૂર્વે આજ સ્વરૂપની રાજા અબરીષ
રૂપે મર્યાદામાર્ગની રીતિથી સેવા કરેલી છે અને આ જન્મમા તારે
પુષ્ટિરીતથી સેવા કરવાની હોઇ હું તને આ સ્વરૂપનુ અતિગુપ્ત
રહસ્ય કહુ છુ, તે તુ દૃઢ ચિત્તથી શ્રવણ કર તારા દ્વારા અનેક
દૈવી જીવોને આ સ્વરૂપનો અનુભવ થશે

શ્રીઆચાર્યજીએ શ્રીદ્વારકાધીશના ભાવાત્મક સ્વરૂપનુ વર્ણન
દામોદરદાસજી આગળ આ પ્રમાણે કહ્યુ —

આ સ્વરૂપ (શ્રીદ્વારકાધીશ) શ્રીમદ્ભાગવતના દશમસ્કંધના
પ્રમેય પ્રકરણના સાતમા અધ્યાયની લીલાનુ પ્રાકટ્ય છે. અને અન્ય
પ્રકરણની લીલા આપમા ગુપ્ત છે તેથી વ્રજલીલામા આપ પ્રમેય
બલ લીલા કરી ચતુર્ભુજરૂપે દર્શન આપે છે

મુખ્ય પ્રકારથી શ્રીદ્વારકાધીશનુ સ્વરૂપ વન-નિકુંજમા આખ
મિચૌનીની ભાવનાનુ છે

આપના નીચેના દક્ષિણ શ્રીહસ્તમા પદ્મ (કમલ) છે તેનો
અવાતર ભાવ ચૌદભુવન રૂપ છે તેથી તે આયુધરૂપ છે યથા
'भुवनात्मक कमलं' इति। પુષ્ટિરીતિથી શ્રીસ્વામિનીજીની હથેલી છે

એનો મુખ્યભાવ પુષ્ટિરીતિથી શ્રીસ્વામિનીજી પોતા
શ્રીઠાકુરજીએ શ્રીપ્રિયાજીના નેત્ર મિચ્યા છે તે શ્રીસ્વામિનીજી
હથેલીથી નેત્રનિમીલન છોડાવે છે

ઉપરના દક્ષિણ શ્રીહસ્તમા ગદા છે તેનો અવાતર ભાવ અ
તેજનુ નિવારણ છે તેથી ગદા આયુધરૂપ છે. યથા 'अ
स्वगदया' इति। મુખ્ય ભાવ પુષ્ટિરીતિથી તો-અદ્ભુત લીલા
શ્રીસ્વામિનીજી ભુજાશ્લેષ કરે છે માટે ભુજાના આશ્લેષરૂપ ગ

ઉપરના વામ શ્રીહસ્તમા ચક્ર છે તેનો અવાતર ભાવ
છે કે જેને મુક્તિ દેવી હોય તેને ચક્રથી મારે, માટે તે આયુ
યથા 'ये ये हताश्चक्रवरेण राजन्'। इति।

એનો મુખ્ય ભાવ પુષ્ટિરીતિથી તો શ્રીસ્વામિનીજીએ ભુજાશ્લેષ કર્યો ત્યારે કંકણાદિ સ્પર્શ-ક્ષત ખચિત થાય છે તે આ ચિહ્ન છે

નીચેના વામ શ્રીહસ્તમા શખ છે તેનો અવાતર ભાવ તો અસુર-ગર્વ-નિવૃત્તિ છે તેથી તે આયુધરૂપ છે યથા 'विष्णोर्मुखोत्थानिलपूरितस्य तस्य ध्वनिर्दानवदर्पहता' इति ।

તેનો મુખ્ય ભાવ પુષ્ટિરીતિથી તો એ છે કે શ્રીસ્વામિનીજીના નેત્રને મિચ્યા તે સમયે સન્મુખથી ગ્રીવાનો સ્પર્શ થાય છે

આ, શ્રીઆચાર્યજીએ જે ભાવ દામોદરદાસને કહ્યો તે શ્રી દ્વારકેશજીએ જનહિતાર્થ સ્વરચિત ભાવનાના ગ્રથમા શ્રી દ્વારકાધીશના સ્વરૂપવર્ણનમા સસ્કૃતમા શ્લોકબદ્ધ કર્યો છે તે આ પ્રમાણે છે—

प्रिया भुजाश्लिष्टभुज. कंकणाकृतिचक्रक. ।

कबुकठे धृतभुजो लीला कमल वेत्रधृक् ॥ १ ॥

શ્રીદ્વારકાધીશનુ સ્વરૂપ આખમિચૌનીનુ છે તેની ભાવનાનો શ્લોક.—

भ्रूवल्लीसज्ञयादौ सहचरिनिकरं वर्जयित्वा स्वकीयं,

पश्चादागत्य तूष्णीमथ नयनयुग स्वप्रियाया निमील्य ॥

कोऽस्मीत्येतद्वचनमसकृद्वेणुना भाषमाण.,

पातु क्रीडारसपरिचय स्वाश्चतुर्बाहुरुच्चै ॥ १ ॥

અર્થ—શ્રીજમુનાજીના તટ ઉપર નિકુજમા પોતાના યૂથની સખીને પોતાની પાછલ રાખીને અને શ્રીઠાકુરજીના મેલની સખીને પોતાની આગલ બેસાડી શ્રીસ્વામિનીજી મધ્યમા બિરાજી હાસ્યવિનોદ કરતા હતા એવા સમયે વનમાથી શ્રીપ્રભુ શ્રીસ્વામિનીજીની પાછલથી પધાર્યા તે શ્રીપ્રિયાજીની આગલ બેઠેલી શ્રીઠાકુરજીની સ્વકીય સખીએ આપને પધારતા જોયા શ્રીઠાકુરજીએ એને ભ્રકુટી ચલાવીને રોકી અને કહ્યુ કે મારૂ પધારવુ પ્રિયાને જણાવો નહિં પછી ચુપચાપ પધારી પાછલથી પ્રિયાજીના બન્ને નેત્રો મીચ્યાઁ. તે પછી

આપે પ્રિયાજીને પૂછવાની ઇચ્છા કરી કે હુ કોણ છુ ? પરતુ જો
મુખથી બોલે તો અદ્‌ભુત લીલાનુ રહસ્ય ખુલી જાય છે તેથી તે ક્ષણે
આપે પ્રમેયબલથી બીજા બે શ્રીહસ્ત પ્રકટ કરી બેઉ શ્રીહસ્તથી
વેણુનાદ કરીને વેણુમા પૂછ્યુ કે હુ કોણ છુ ?

વેણુદ્વારા આ વચનને સાભળીને શ્રીસ્વામિનીજી આશ્ચર્યયુક્ત
થયા. અને મનમા વિચાર કરવા લાગ્યા કે બે શ્રીહસ્તથી નેત્ર મીચ્યાં
છે, અને બે શ્રીહસ્તથી વેણુદ્વારા પૂછે છે કે હુ કોણ છુ ?

પોતાના પ્રિયતમની આ અદ્‌ભુત લીલા જોઇને શ્રીપ્રિયાજીએ
ઉત્તર દીધો કે આપ ચતુર્ભુજ છો એવી રીતે પરસ્પર અત્યત રસરૂપ
આનદની વૃદ્ધિ થઈ.

ત્યાર પછી શ્રીઆચાર્યજીએ દામોદરદાસને આજ્ઞા કરી કે તેથીજ
આપના શ્રીઅગમા ચારે આયુધના સ્વરૂપ મૂર્તિમાન છે. પ્રિયાના
આવિર્ભાવાવિષ્ટ સ્ત્રીરૂપ છે અને પ્રિયા જે સ્વામિની તે કરીને વિશિષ્ટ
સ્વરૂપ આપનુ છે તેથીજ આપની પીઠિકા (કદરા) ચોખૂટી છે.
પીઠિકાના વામ ભાગમા ચક્રના ઉપર જે પદ્માસનથી બિરાજેલું
ચતુર્ભુજ સ્વરૂપ છે તે એ સ્વરૂપ છે કે જેણે કારાગારમા વસુદેવ
દેવકીને ત્યા પ્રકટ થઈ દર્શન દીધા અને આજ્ઞા કરી—यथा 'एतद्वां
दर्शित रूप प्राग्जन्मस्मरणाय मे',

પીઠિકાના દક્ષિણ ભાગ તરફ ગદાની ઉપર પદ્માસનથી બિરાજેલું
જે ચતુર્ભુજ સ્વરૂપ છે તે સૃષ્ટિકર્તા લક્ષ્મીપતિ નારાયણનુ સ્વરૂપ છે.
આપ બ્રહ્માને ત્યા બિરાજતા ત્યારે સૃષ્ટિક્રમ આ સ્વરૂપદ્વારા થતો.
યથા श्री भा० द्वि० स्क० न० अ० । 'ज्ञान परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितं'.

ઇત્યાદિથી આપે પોતાના સ્વરૂપનુ જ્ઞાન કરાવ્યું અને પછી
આજ્ઞા થઈ કે —

'एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना ।
भवान्कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् ।'

એ આજ્ઞા આ સ્વરૂપથી થઈ તે આ સ્વરૂપ છે આ સ્વરૂપનું બીજુ પ્રમાણ શ્રી ભા૦ તૃ૦ સ્કં૦ ન૦ અ૦ સમાપ્તિમા શ્લોક—

सर्वत्रेदम येनेदमात्मनात्मात्मयोनिना ।

प्रजाः सृज यथा पूर्वं याश्च मय्यनुशेरते ॥ ४३ ॥

तस्मादेव जगत् स्रष्ट्रे प्रधानपुरुषेश्वरः ।

व्यज्येदं स्वेन रूपेग कंजनाभस्तिरोदधे ॥ ४४ ॥

આજ સ્વરૂપ દ્વારા આ આજ્ઞા થઈ તેથી આ બન્ને વામ અને દક્ષિણ બન્ને ભાગના સ્વરૂપ પણ આપ શ્રીદ્વારકાધીશનૉજ વસ્તુત છે લીલાકરણ પીઠિકામા પ્રથમ દર્શન દે છે

હવે બન્ને તરફ નીચેના શ્રીહસ્તની નીચે બે બે સ્વરૂપ મલીને ચાર છે તેનું સ્વરૂપ કહે છે—

પૃથક્ પ્રમાણથી તો એ ચારે પાર્ષદ છે. એમના નામ સુનન્દન, નન્દ, પ્રબલ, અને અર્હણ છે બીજા પ્રમાણથી એ ચારે વેદ છે ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद અને सामवेद ।

ત્રીજા પ્રમાણથી એ ચારે વ્યૂહ છે-પ્રદ્યુમ્ન, અનિરુદ્ધ, સંકર્ષણ, અને વાસુદેવ અને ચોથા પુષ્ટિના પ્રમાણથી એ ચાર યૂથાધિપતિ છે. ચાર મુખ્ય સ્વામિની છે—નિત્યસિદ્ધા (શ્રીરાધિકાજી), શ્રુતિરૂપા (શ્રીચદ્રાવલીજી), ऋषि રૂપા (શ્રીકુમારિકા રાધા સહચરીજી) અને તુર્ય પ્રિયા (શ્રીજમુનાજી)

હવે શ્રીઅગના ચિન્હોનુ સ્વરૂપ કહે છે—

શ્રીમસ્તક ઉપર કિરીટ છે તે પ્રથમ મર્યાદાનો અગીકાર છે મુખ્ય પુષ્ટિ ભાવથી તો મયૂરપક્ષના મુકુટનોજ પર્યાયરૂપ કિરીટ છે. મલ્લકાછ કટિમાં ધારણ છે તે સૃષ્ટિ રચવી શ્રમસાધ્ય છે, તેથી. પુષ્ટિભાવ તો કામને જીતવાના હેતુથી નટવત્ વિહારરૂપ મલ્લકાછ છે યજ્ઞોપવીત ધારણ છે તે શ્રુતિનો અંગીકાર છે અને શ્રીકંઠમા હાસ ધારણ છે તે શ્રીસ્વામિનીજી સન્મુખથી આશ્લેષ કરે છે તે

આપના ઉભય મુખની કાંતિ પ્રભારૂપ છે. વનમાલા છે તે યાવત્ વ્રજભક્તોનો અંગીકાર કરે છે. ચરણમા નૂપુર, પાયલ અને શ્રીહસ્તમા કડાં છે તે આપનું યુગલ સ્વરૂપ ભાવાવિશિષ્ટ સ્વરૂપ છે તેથી યુગલતા સૂચિત છે કિરીટના પાછલ તેજનું ચિહ્ન છે તે કોટિકન્દર્પલાવણ્ય અસખ્ય સૂર્ય આપના તેજની આગલ લજ્જિત છે.

આ પ્રકારે આપના શ્રીઅગના ચિન્હ છે. આવા પ્રકારનુ આપનું સુદર સ્વરૂપ અગમ્ય છે ×

શ્રીઆચાર્યજીના શ્રીમુખથી દામોદરદાસે શ્રીદ્વારકાધીશનું સમગ્ર ભાવાત્મક સ્વરૂપ શ્રવણ કરી હૃદયમાં ધારણ કર્યું. જેથી તેમને સમગ્ર લીલા સ્ફુરી. ત્યારે પોતે લોકલજ્જા કુલકા'નનો ત્યાગ કરી પરમ સ્નેહથી સેવા કરવા લાગ્યા

દામોદરદાસનું અવસાન સવત ૧૫૭૭ લગભગ છે. (પ્રાજ સં) ૧૫૭૭મા શ્રીદ્વારકાધીશ શ્રીમહાપ્રભુજીને ત્યા પધાર્યા

—:સમસ્ત લીલા પ્રકરણ:—

ચિત્રાજીનુ ધ્યાન કરવા માટે કોષ્ઠક આ પ્રમાણે—

પિતાનુ નામ	માતાનુ નામ	વર્ણ=રગ	ચાલ વસ્ત્ર	ગુણ	બાજા	રાગ	વય
રુચિભાનુ	રુચિરકલા	પીન શરીર લબચોડા કેશ અધકચરે	લીલાં	જ્યોતિષ / ચિત્રકલા	સીતાર	શકરા	વર્ષ ૧૩ માસ ૮

આ પ્રકારે ચિત્રાજીનુ ધ્યાન કરવુ. તે મુખ્ય અષ્ટસખીમા છે. એમને ત્યા ૧૯૦૦૦૦૦ ઓગણીશ લાખ ગાયો છે અને શ્રીકુડની પૂર્વ આનંદ સુખદનામ એમની કુજ છે. એ જ્યોતિષ સારૂ જાણે છે. (તે લીલાના સબધથી અહીં પણ દામોદરદાસને પૂર્વસૂચિત તાબાપત્ર પ્રાપ્ત થયુ) તેમની સેવા નિકુજમા ચિત્રામનની છે. દામોદરદાસ સંભરવાળાનુ સ્વરૂપ ચિત્રાજીનુ છે

× શ્રીદ્વા. પ્રા વાર્તા (કાકરોલી વિદ્યાવિભાગ તરફથી પ્રકટ થએલી)

जब श्रीआचार्यजी कन्नोज पधारे तहां गाम के बाहिर एक बाग हतो तहां आप उतरे ॥ ओर कृष्णदास को गाम में पठायो ॥ जो सीधो सामग्री ले आउ ॥ परि काहूसों कहीयो मति ॥ जो श्रीआचार्यजी आप पधारे हें ॥

शरण आयवेको प्रकार

यह कहे ताको अभिप्राय यह हे जो दामोदरदास कृष्णदास को मिलेगो ॥ सो दामोदरदास सों पहिले आपहि कहे जो श्रीआचार्यजी पधारे हे ॥ सो दामोदरदास द्रव्यपात्र हे ॥ तातें इनके बुलायवेकी अपेक्षा यह मनमें आवे तो कृष्णदासको बिगार होइ ॥ सो ताते बरजी दीए जो काहूसों कहियो मति ॥ प्रीति होइगी तो आपुही आवेगो ॥ यह अभिप्राय जाननो ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

ओर दूसरो अभिप्राय यह हे जो जा दिन श्रीआचार्यजी कन्नोज पधारे तातें पहलेई श्रीआचार्यजी आपको (श्रीठाकुरजीकी) आज्ञा भई हती ॥ जो यहांके (कन्नोज के) जीव पावन करने हे ॥ तातें श्रीआचार्यजी आप विचारे जो आग्या भई हे तो आपही होइगो ताके लिये नाहि करो हती ॥

तब कृष्णदास गाममें गए ॥ सीधो सामग्री सब लीनी । सो सब ले के चले तहां दामोदरदास

वार्ता

राजद्वारतें आवत हते ॥ सो मारग में जात कृष्णदास कों पहचानें ॥ तब दामोदरदास घोडातें उतरि के कृष्णदास के पास आए ॥ तब दंडवत करि के कह्यो ओर पूछयो जो श्रीआचार्यजी महाप्रभू पधारे हें ? ॥ तब कृष्णदासने विचार्यो जो श्री आचार्यजी की आज्ञा नाही* (तातें कछु उत्तर दीया नांहि)

तब दामोदरदासने विचार्यो ॥ जो श्रीआचार्यजी विना ए काहेको आवे ? सो जब कृष्णदास चले तब दामोदरदास पाछे पाछे आए ॥ घोडा घर पठवाइ दीयो ॥

तब कृष्णदास को ओर दामोदरदास कों दूरि तें आवत श्रीआचार्यजी ने देखें ॥ तब दामोदरदासने दंडवत कीये ॥ तब कृष्णदाससों श्रीआचार्यजीने पूछी जो तेंने वासों क्यों कह्यो ? ॥ तब इनने (कृष्णदासनें) कही महाराज मेनें तो इनसों नाही कही ॥ तब दामोदरदासनें श्रीआचार्यजी सों विनती कीनी जो महाराज इननें तो मोसों नांहि कही ॥ हों तो इनके पाछे चल्यो आयो हूं ॥

पाछे श्रीआचार्यजी (ने) दामोदरदाससों पूछी जो पत्र पायो हे सो लायो हे ? ॥ तब दामोदरदास ने विनती

---

* तब कृष्णदासने कही आज्ञा नाहि ॥ આવો પાઠ પણ બીજી કેટલીએક પ્રતોમા છે.

कीनी ॥ जो महाराज पत्र को कहा काम हे ? तब श्रीआ-चार्यजी आप कही जो तोकों आज्ञा भई हे ॥ जो पत्र बांचे ताकी सरन जैयो ॥ तातें पत्र ल्याऊ ॥ तब पत्र मंगवायो ॥

श्रीआचार्यजीने कृष्णदास सों कह्यो जो तेनें इनसों क्यों कह्यो ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

यह कहे ताको कारण यह जो 'तेने आज्ञा नाही' यह कह्यो तामें हमारे पधारनो तो कह्यो ॥ तब दामोदरदासने कही जो इनने नाही कह्यो ॥ में इनके पाछे चल्यो आयो हूं ॥ या प्रकार दैन्यता सिद्ध कीए ॥

जब दामोदरदासने कह्यो पत्रको कहा काम हे ? यह कही दामोदरदास ने यह जतायो जो आप ईश्वर हो ॥ मोको अनुभव भयो हे ॥ तब (श्रीआचार्यजी) कहे ल्याव भगवद्आज्ञा होय तेसेहि करनो ॥

तब श्रीआचार्यजी ने पत्र मंगवायो हतो सो बांच्यो ॥ पाछे वाको अभिप्राय दामोदरदाससों वार्ता कह्यों + ॥

+तू चित्रा सखि हे । श्रीस्वामिनीजी की निकुज महलमें चित्रामन कुज सवारनो यह तेरी सेवा हे ॥ सो श्रीआचार्यजी (स्वामिनीजी) की तू सखि हे ॥ उनहि की सरन जैयो ॥ यह वांचि सूनाये ॥ (श्रीहरि-रायजी) विशेष જુઓ દામો૦ ની વાર્તાના રહસ્યમાં.

पाछें दामोदरदास को नाम सुनायो × ॥ पाछे श्रीआचार्यजी को दामोदरदास नें अपने घर पधराए॥ पाछे दामोदरदास की स्त्री हू सरनि आई॥ तब दामोदरदासको ओर उनकी स्त्री को समर्पन करवायो॥ एक छोंडि दैवी जीव हती सोउ शरन आई॥

वार्ताप्रसंग १

तब दामोदरदास ने वीनती करी जो महाराज अब कहा आज्ञा होत हे? अब हम कहा करे? तब श्रीआचार्यजी श्रीमुखतें आज्ञा किए॥ जो अब तुम सेवा करो॥ तब दामोदरदासनें कही॥ जो महाराज सेवा कोन प्रकार करे? तब श्रीआचार्यजी महाप्रभूनने कही॥ जो कहूं श्रीठाकुरजीको स्वरूप होय सो देखो॥ सो एक दरजी के यहां श्रीठाकुरजी को स्वरूप हतो॥ ताको द्रव्य देके स्वरूप अपने घर ले आए॥ पाछें घर सब पोते॥ पात्र सब बदलाये॥ पाछें श्रीआचार्यजी ने वा स्वरूप को पंचामृत करवायो॥ श्रीद्वारकानाथजी नाम धर्यो + ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

श्रीद्वारकानाथजी नाम यातें धर्यो जो राजरीतिसो प्रथम सेवाको विस्तार दामोदरदास के माथे सोंपे हे॥

---

* સ્વય અનુગ્રહબલે આપ કન્નોજ પધારી કોઈ પણ પ્રકાર-ના જીવકૃત સાધનથી અપેક્ષા રાખ્યા વિના (સ્વય સાધનરૂપ થઈ) દામોદરદાસને શરણે લીધા અહીં પુષ્ટિનુ નિરૂપણ છે + શ્રીદ્વાર-

पाछें सिंहासन पाट बेठाए ॥ दामोदरदास के माथे सेवा पधराय के पाछें श्रीआचार्यजी आप रसोई

वार्ता

करि के भोग समर्प्यो ॥ समयानुसार भोग सरायो ॥ तब बीडा समर्पन लागे ॥ तब देखें तो पान हरे हें। तब श्रीआचार्यजी दामोदरदास सों खीजके कहें जो हरे पान श्रीठाकुरजी कों न समर्पिए ॥ उत्तम तें उत्तम सामग्री होइ सो श्रीठाकुरजी को समर्पिए ॥ श्रीठाकुरजी तो उत्तम तें उत्तम वस्तु के भोक्ता हे ॥

काथीशनी प्राकटय वार्ताभा आ प्रसगनु पाठातर आ प्रभाणे छे—तब आपने आज्ञा करी कि–तुम्हारे या गाम में एक विष्णुस्वामि सम्प्रदाय को शिष्य क्षत्री नारायणदर्जी है, वाके घर एक अति प्राचीन स्वरूप विराजे हे, सो पधराय लाओ ॥ तब शेठजी (दामोदरदास) ने कही, जेसी राज की आज्ञा हे वोही करूँगो । वे यह कहके दर्जी के यहां गए, रस्ता में जाते जाते मन में विचार्यो वडो आश्चर्य है कि इतने वर्ष सूँ में या गाम को रहिवेवारो ओर मोकूँ दर्जी के यहाँ की खबर नहि है, कौन है, कहाँ रहे है, यह विचारते घर पूछते पूछते पहूँचे । दर्जी कूँ खबर लगी कि प्रधान सेठ दामोदरदासजी आवे हैं ॥ सो वह अपने घर के द्वार पे हाथ में नजराना लिये ठाडो भयो सो सेठजी कूँ देखतेई बहुत विनीत भाव सूँ हाथ बढाय के नजराना कियो । बहुत मदवाणी सूँ प्रधान को स्वागत कियो । सेठजी ने नजराना नहि लियो × × × दर्जीने पूछयो-आज आप मेरे गरीब के घर कैसे आए? × × × तब शेठजी ने कही-जिनको चपारण्य में प्राकटय भयो हे वेही श्रीवल्लभाचार्यजी यहां पधारे हैं। उनने तुम्हारे पास मोकूँ भेज्यो है । तुम्हारे यहाँ, जो निधि विराजे है उनकूँ पधरायवेकी आज्ञा करी है सो जो चहिये सो तुम्हारो सब प्रकारको प्रबन्ध मैं राज्य की आडीसूँ

उत्तम तें उत्तम सामग्री होइ सो श्रीठाकुरजी को समर्पिए ॥ ता पाछें स्त्रीपुरुष भली भांति सो सेवा करन लागे ॥ सो श्रीद्वारकानाथजी की सेवा भली भांति सो होन लागी ॥ ओर श्रीआचार्यजी नें आज्ञा दीनी ॥ जो उतर्यो परकालो (वस्त्र को थान) होइ तामेते श्रीठाकुरजी को न समर्पिए ॥ सारे परकाले मेते प्रथम श्रीठाकुरजी को लीजिये ॥ ओर उत्तम सामग्री होइ तामें ते ओर ठोर न खरचिए ॥ ता पाछे स्त्री पुरुष नीकि भांति सो सेवा करन लागे ॥

कराय दई । × વિશેષ જુઓ કાકરોલી વિદ્યા વિભાગ તરફથી પ્રગટ થયેલી "શ્રીદ્વારકાધીશની પ્રાગટ્ય વાર્તા"

શ્રીદ્વારકાનાથજી દરજીને કેવી રીતે પ્રાપ્ત થયા તે માટે બે મત ઉપલબ્ધ થાય છે શ્રી દ્વા૦ ની પ્રાકટ્ય વાર્તામા નિચે પ્રમાણે છે —या नारायण दरजी कूँ रात में स्वप्न भयो, तामें श्रीद्वारकाधीश ने आज्ञा करी कि–हमारो नाम द्वारकाधीश है और हम आबु पर्वत पे ऋषिन के आश्रम में विराजे है तू भक्त है । तेरी श्रद्धा सूँ हम प्रसन्न होय कें तोकुं आज्ञा करे हैं कि अभी जो चपारण्य में आचार्य जनगे हैं, उनके यहाँ हमकूँ पधारनो है, सो तेरे द्वारा हम पधारेंगे । तू यहाँ आवू आय के ऋषिन सूँ हमकूँ माँगके अपने घर ले जाव । (अष्टमोल्लास).

પછી દરજી આબુ જઈને રૂષીની પાસેથી સ્વરૂપ પધરાવી લાવ્યો છે–તે બધુ વૃતાન્ત છે.

આ નારાયણ દરજીની વહૂનુ નામ લક્ષ્મી અને બ્હેનનુ નામ સરસ્વતી હતુ. વિશેષ જુઓ "શ્રી દ્વા ની પ્રાગટ્ય વાર્તા" "વિદ્યા વિભાગ કાકરોલી" ની બીજો મત (પ્રાચીન પ્રતના આધારે)—

ओर सेवा सामग्री एसी होती जो सोने के कटोरा में अमरस राखते ॥ सो एसो उच्यताते सो ओर कोई न जाने जो यामें कछु सामग्री धरी हैं ॥ या भांति सो दामोदरदास सेवा करन लागे ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

पाछे वस्त्रादिक की रीति वताए ॥ जो ओर कार्य में कछु आयो होइ तो (सो वस्तु) श्रीठाकुरजीके काम न आवें ॥ जाके अर्थ उठे ॥ तिनको प्रसाद कहावे ॥ तातें पहले श्रीठाकुरजी को सब सामग्री में ते लेनो ॥ श्रीठाकुरजी

सो दरजीने अपनो घर वनवायो ॥ द्रव्यमान हतो सो नींव में श्रीद्वारकानाथजी पधारे ॥ प्रगटे ॥ सो मर्यादा रीति सों दरजी पूजा करे ॥ सो दामोदरदास के शरण आये पहले पाच वर्ष अगाऊ श्रीठाकुरजीने विचार्यो जो ॥ दामोदरदास सों पुष्टि रीति सों सेवा करावनी हे ॥ तातें दरजी को सगरो धन नास कीए ॥ दरजी के घर खानपान को कसालो भयो ॥ तब दरजी को एक सैव मिलापी हतो ॥ तासों दरजीने पूछी मेरो द्रव्य सगरो गयो ॥ ठाकुर की पूजा हू करत हों सो कहा कारन ? ॥ तव सैव ने कहि तू देवी की पूजा करे तो द्रव्य होइ ॥ ठाकुर पूज्यो तातें निर्धन भयो ॥ तव दरजी देवी को पूजन करन लाग्यो ॥ श्रीठाकुरजी कों एक आलिया में बेठाय राखे ॥ सो कछू द्रव्य की प्राप्ति भई ॥ तव दरजी को विश्वास देवि पर भयो ॥ मन में यह रहे जो कोई ठाकुर ले जाय तो आछो ॥ सो दामोदरदास ने खवरि पाई तव कछूक द्रव्य दे के उह दरजी सों द्वारकानयजी कों लाये ॥ ××××

આ લોકમત હોઈ લૌકિકી ભાષા છે એટલે જ સમાધિરૂપ રહસ્ય ભાષામા જેટલી ઉપીયોગી થઈ પડે તેટલીજ ગ્રાહ્ય છે

की सामग्री में ते अन्य ठोर खरच न करनो ॥ या प्रकार पुष्टिमारग की रीति सबकों बताए ॥

पाछें श्रीआचार्यजी पृथ्वी परिक्रमाको पधारे ॥ जीनके सामग्री पिरि सोने के पात्र में मिलि जाई ॥ उज्ज्वल सामग्री रूपे के पात्र में मिलि जाइ ॥ यह गूढ भाव जनाए ॥ सोने के मिष श्रीस्वामिनीजी के भाव ते रुपे के मिष श्रीचंद्रावलिजी के भाव सों सेवा करते ॥

इति प्र. १ समाप्त.

वार्ता प्रसंग २

ओर दामोदरदास श्रीठाकुरजी को जल आप भरतें ॥ सो एक दिन दामोदरदास को सुसर दामोदरदास के घर आईके दामोदरदास सों कहन लागे ॥ जो तुम जल भरि लावत हो ॥ सो हमकों जाति में लज्जा आवति हें ॥ तातें तुम जल मति भरो ॥ लोंडी पास जल भराओ ॥

तब दामोदरदास विचारे जो सूरदासजि गाए हें ॥ "सूर भजन कलि केवल कीजे लज्जा कान निवारि" ओर किर्तन मे गाए हें ॥ "कानन काहूकी मन धरीए व्रत अनन्य एक लहीए हो" यह विचारी अस्त्री सों कहे तुमहू जल लेंन चलो ॥ तब दामोदरदासने दूसरे दिन एक घडा तो आपु लीयो ॥ एक घडा स्त्रीके हाथ में दीनो ॥ तब स्त्री भगवदी सो घडा (गागरि) ले ससुर (दामोदरदास के) हाट आगे

तें चले ॥ तब दोउ जने (फेर) वाकी हाटके नीचे होय के निकसे ॥ तब जल लेके आए ॥ तब पाछे दामोदरदास को ससुर आयो ॥ सो आइ के दामोदरदास के पाइन पर्यो ॥ ओर कह्यो जो में चूकयो ॥ जो तुमसों कह्यो ॥ अब ते तुमही जल भरो परि अस्त्री जन पास जल मति भरावो ॥ आज पाछे हम कछू न कहेंगे तब आपहि जल भरन लागे। श्रीठाकुरजी दामोदरदाससों सानुभावता जनावन लागे ॥ जो कछु चाहिये सो दामोदरदास पास मांगि लेइ ॥ वातें करे ॥ सेवा करि के दामोदरदासने श्रीठाकुरजी को एसे प्रसन्न कीये ॥ सो इनकी सेवा देखि के श्रीआचार्यजी बहोत प्रसन्न भये ॥ तब आप अपने श्रीमुखते कहें ॥ जो जिन राजा अंबरीष न देख्यो होइ सो दामोदरदास को देखो राजा अंबरीष तो मर्यादामार्गीय हुतो। और ये पुष्टिमार्गीय हें ॥ इनमें इतनीं अधिकताइ हे ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

दामोदरदास जलकी सेवा श्रीयमुनाजी के भावतें करतें ॥ तातें श्रीआचार्यजी कहे ॥ मर्यादामें अंबरीष पुष्टि मे दामोदरदास राजसेवा कीए ॥ तब तत-हरा रुपे के अंबरीष की उपमा केसे जानिए, जेसें श्रीठाकुरजी की मुखकी उपमा चंद्रमाकी ॥ काहेतें कहां मर्यादा कहां पुष्टि? कोटि गुनो तारतम्य जाननो॥

जब दामोदरदासके सुसरने कही ॥ अस्त्रिसो जलमति भरावो

तब दासोदरदास कहे । जल न भरावेंगे ॥ पाछे ससुर गयो ॥ तब दामोदरदासनें विचार्यो जो जलकी सेवा (स्त्री जनसें) कराई ॥ सो जो अब में छुडाऊ तो मोकों ससुराकी का'नको दोष परे । परंतु एकवार वरजोंगो, प्रीति होइगी तो स्त्री आपुहि न छोडेगी ॥ (यों विचार के) जो एकवार भयों सो सोवार भयों अब गामके (लोग तो) जान चुके ॥ अब में सेवा क्यों छोडों ? ॥ प्रीति होइगी तो या भांति (विचारके) भरेगी ॥ तातें मे हठ करिके भराऊं तो प्रीति विना श्रीठाकुरजी अंगीकार न करेंगे ॥ तातें एकवार वरजों तो सही ॥ तब (स्त्री सों) कहें ॥ अब मेंही जल भरोंगो ॥ तुम मति भरो ॥ तिहारे पिताको लाज लागत हे ॥ तब स्त्रीने कही तुमही भरो ॥ या प्रकार पिताकी का'नको दोष भयो ॥ सो आगें जाय के अन्याश्रय भयो ॥

जो दामोदरदास ससुरके आग्रह का'न तें जलकी सेवा छुडावते ॥ तो इनहूको बाधक होतो ॥ तासों फेर सेवा करन लागे ॥

इति प्र. २ समाप्त.

वार्ताप्रसंग ३

ओर एक समें उष्णकाल के दिन हते ॥ तब दामोदरदास श्रीठाकुरजी को मंदिरमें पधराइ पोढाइके आप चोवारे जाइ सोये ॥ तब श्रीद्वारकानाथजी ने लोंडी को आज्ञा दीनी जो तू किवाड खोलि ॥ मोकों गरमी बोहोत होत हें ॥ तब लोंडीने मंदिर के किवाड खोले ॥ तब श्रीद्वारकानाथजी ने लोंडी सों कह्यो जो पंखा करि ॥ तब लोंडि

ने पंखा कीयो ॥ तव श्रीठाकुरजीने लोंडि सो कह्यो ॥ जो तू जा, रहन दे ॥ तब लोंडि किंवाड खुले छोडिके सोयवे गई ॥ तब सवारो भयो तब दामोदरदास देखे तो मंदिरके किंवाड खुले हें ॥ तब पूछे जो किंवाड कोन ने खोले हें ? तब लोंडि ने दामोदरदास सों कह्यो ॥ जो मोकूँ श्रीठाकुरजीने आज्ञा दीनी ही जो तू किंवाड खोलि ॥ तव मेने किंवाड खोले हें ॥ तब दामोदरदास ने कही जो मोसू खोलिवेकी क्यों न कही ? आप खोले ॥ फेर दामोदरदास के मनमें आई ॥ जो श्रीठाकुरजी नें मोसों किंवाड खोलिवेकी क्यों न कही ? ॥ और लोंडि सों क्यों कहे ॥ परि प्रभु बडे दयाल हें ॥ जाके विषे स्नेह होइ ॥ ताही सों संभाषन करे ॥ श्रीआचार्यजी के अंगीकार में सब समान हें ॥ लौकिक में कोऊ उंचनीच कहियो (परि) श्रीठाकुरजी स्नेह के बस हें ॥ पाछें श्रीठाकुरजीने दामोदरदास सों कह्यो ॥ जो मेने खुलाए हें और इन (नें) खोले हें ॥ जो तू यासें क्यों खीझत हे ? तू तो चोवारे जाय सोयो ॥ और मोको भीतर सुवायो ॥ तब दामोदरदासने कह्यो जो प्रसाद तब लेहूँ (जब) मंदिर नयो समराउं ॥ तब स्त्रीनें कह्यो जो एसे क्यों बने ॥ यह तो कछु पांच सात दिनको तो काम नाहीं ॥ तब दामोदरदासने कह्यो ॥ जो सखडी महाप्रसाद तो नहीं लेउगो ॥ फलाहार करूंगो ॥ तब त्योंहि करत मंदिर सिद्ध भयो ॥ तब आछो दिन देखि के श्रीद्वार-कानाथजीकों मंदिर में बेठाये ॥ तब वडो उत्सव कीयो ॥

पाछें सब वैष्णवनको महाप्रसाद लिवायो ॥ ता पाछें आपु महाप्रसाद लीयो ॥

श्रीठाकुरजीने लोडीकी पास पंखा कराए, परि स्त्रीकों नांहि जताए ॥ सोउ जलकी सेवा छोडि, तातें इनकों न कहे ॥ काहेतें पहले स्त्री जलकी सेवा न करती सो चिंता नांही ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

(सेवा) करि के छोरनो हतो तो दस पांच दिन जल भरिके ॥ पाछें अपने मनतें न भरते तो चिंता नाहि ॥ ससुरके कहेतें छोडे, तातें श्रीठाकुरजी लोडो सों किंवार खोलाय पंखाको सेवा कराए ॥

ओर श्रीआचार्यजी की यह आज्ञा हें ॥ जहां तांइ पूरन स्नेहको प्रकार हृदयारुढ न होई तहां ताई सेवा (यथा देहे तथा देवे) अपनी देहकों सीत उष्ण विचारि कें करे ॥ सो दामोदरदास चोवारें सोए ॥ श्रीठाकुरजी कों वियारि आयवेको मारग न हतो ॥ तातें मंदिर की रीति प्रगट कराइवेके लिए श्रीठाकुरजीने लोंडिसों किंवार खुलाए ॥

लोंडिको मानसि सेवाको अधिकार हतो ॥ अष्ट प्रहर गोप्य रीति सों मानसि करती ॥ कोई जानतो नांहि ॥ ताते श्रीठाकुरजी इह लोंडि के उपर बहोत प्रसन्न रहते ॥

जब दामोदरदास लोंडि पर खीजै ॥ सो श्रीठाकुरजी सहि न सके ॥ जो मोकों प्रिय हें ता पर खीझत हे ? ॥ सो लोंडिकी पक्ष श्रीठाकुरजीने करी ॥ तथा दामोदरदासको अपराध तें छोडाइवे कों बोले जो मेनें यासों खुलाए ॥ तू क्यों खीझत हे ? आज पाछें या पर प्रीति

राखियो ॥ याको स्वरूप अलौकिक जानियो ॥ तूं जाय चोवारे पर सोयो ॥ मोकों बियारि आयवेकी ठोर नांही ॥ चित्रा सखि होइ अपनि सेवा भूलि गयो ? ॥ मंदिर संवारनो ॥ तब दामोदरदास चोंकि परे सो यह जो अपने स्वरूप को अनुभव भयो॥ तब कहे मंदिर बने तब खानपान करूं॥ यह टेक चित्राके आवेसमें कहे ॥ पाछें कारिगर बुलाय काम लगाए ॥ पाछें स्त्रीनें कही खानपान बिना केसें चलेगो ? एक दिन को काम नांही हे ॥ तातें खान पान बिना रह्यो न जायगो॥ वह आवेस रहेतें ॥ तब खानपान मति करियो ॥ अब तो करो ॥ तब कहे फलाहार लेऊंगो ॥ या प्रकार मंदिर सवराए ॥ जारी झरोखा निज मदिर तिवारी चोक टेरा परदा जेसें लीलासृष्टिमें करत हतें ताहि भाव सों सगरे मंदिरको ब्योंत कीए * ॥ मुहूरत देखि पधराए ॥ बडो उत्सव (कीयो) वैष्णवको समाधान श्रीआचार्यजीकी भेट काढे ॥

इति प्र ३ समाप्त.

---

* આ પ્રસંગ લગભગ ૧૫૬૦–૬૫ મા બન્યો હોવો જોઈએ. આ પ્રસગથી ઐતિહાસિક એક વસ્તુ એ જાણવાની મળે છે કે– શ્રીનાથજી નવા મદિરમા પધાર્યા પહેલા આ મદિર બન્યુ છે કારણ કે અહીં લીલાસૃષ્ટિનો ક્રમ બતાવ્યો છે પાછલથી બન્યુ હોત તો શ્રીનાથજીના મદિર અનુસાર બનાવ્યાનો ઉલ્લેખ અવશ્ય હોત બીજી વાત આથી એ પણ સિદ્ધ થાય છે કે મદિરનો તમામ પ્રકાર લીલાસૃષ્ટિને અનુસાર જ આપણે ત્યા બનેલો છે, પ્રાકૃત નથી. શ્રીઆચાર્યજીએ સર્વ પ્રથમ શ્રીદ્વારકાનાથજીને ત્યા રાજસેવા ચાલુ કરાવી છે.

वार्ता प्रसंग ४

वहुरि एक दिन दामोदरदास श्रीठाकुरजीको राजभोग समर्पि सय्या मंदिरमें सैया संभारन गए ॥ तव देखे तो दुलीचा उपर विलाई ने विगाड्यो हे ॥ तव दामोदरदासने कह्यो जो श्रीठाकुरजी तो अपनी सैया हू राखि सकत नाही ॥ एसें कह्यो तव श्रीठाकुरजी ने थार चोकी उपरसूं लात मारि डारि दीनो ओर दामोदरदास सों श्रीठाकुरजीने कह्यो ॥ जो सेवक तू के सेवक में ? सेवक होइ के एसे वोलत हे ? एसे वहुत खीजे पाछें दामोदरदास ने विनती कीनी ओर वहुत मनुहार करी ॥ सव सामग्री सिद्ध करि के श्रीठाकुरजी को भोग समर्प्यो ॥ श्रीठाकुरजी अरोगे ॥ परि तोहू दोय मास लों वोले नांहीं ॥ पाछे वहोत वीनती करन लागे ॥ तव वोलन लागे ॥

श्रीठाकुरजीने राजभोगको थार लात मारि कें डारि दियो ॥ सो या भावतें जो श्रीआचार्यजीनें अवही दासभावको अधिकार दियो हें ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

ओर यह हांसी तो सख्य भावको अधिकार भयो होइ तव ही वने ॥ तातें विना श्रीआचार्यजीके दिए तू (तें) विशेष भाव कर्यो ॥ तातें तेरो धर्यो भोग नाही अंगीकार करूंगो ॥ या प्रकार शिक्षा कोए ॥ तातें अधिकार विना विशेष विचार किए इतनो अंतराइ जताए वैष्णवकों ॥

इति प्र. ४. समाप्त.

वार्ता प्रसंग ५

बहुरि एक समय दामोदरदास हरसानी इनके घर पाहूने आए ॥ सो संभरवारे के घर दिन पांच सात रहे ॥ तब इन बहुत भली भांति सो समाधान कर्यो ॥ पाछे दामोदरदास हरसानी इनसों बिदा होइ के अडेल आए ॥ तब श्रीआचार्यजी दामोदरदास सों पूछे जो दमला, तू कहां उतर्यो हो ? कहा प्रसाद लीयो हो ? तब दामोदरदास हरसानी नें श्रीआचार्यजी सों विनती करी जो महाराज कन्नोज में दामोदरदास संभरवारे के घर उतर्यो हो ॥ अनसखडी महाप्रसाद लेतो ॥ तब श्रीआचार्यजी दामोदरदास संभरवारे उपर अप्रसन्न भये ओर (मनमें–विचारे जो) यह मेरो अंतरंग सेवक* याको सखडी महाप्रसाद क्यो न लिवायो ? यह वात श्रीआचार्यजी के मनकी दामोदरदास संभरवारेने घर बेठे जानी + ॥ जो

---

*દામોદરદાસ હરસાનીજી માટે શ્રીયદુનાથદિગ્વિજયમા આ પ્રમાણે છે—ततो वृद्धिनगरे कस्यचिच्छ्रेष्ठिनश्चत्वारस्तनयास्तेषां कनिष्ठो **दामोदरो हरेर्लीलातो गुरोः सेवार्थमत्राऽवतीर्णो** गुरोर्मार्गं प्रतीक्षमाणस्त दृष्ट्वा दाय त्यक्त्वा समागत पादयोर्निपतितो गुरुभिरंगीकृतो मन्त्रमालाभ्यां सस्कृत सिद्धार्थो जात ॥

+અહીં શકા નહિ કરવી કારણ કે દામોદરદાસ સભરવાળા શુદ્ધ નિર્ગુણ ભક્ત છે શ્રીમહાપ્રભુજી "પુષ્ટિપ્રવાહમર્યાદા"મા તે ભક્તોના લક્ષણ આ પ્રમાણે આજ્ઞા કરે છે—स्वरूपेणावतारेण लिंगेन च गुणेन च ॥ तारतम्य न स्वरूपे देहे वा तत्क्रियासु वा ॥१३॥ પુષ્ટિપુષ્ટિભક્તો પણ સર્વજ્ઞ હોય છે તે માટે આપ આજ્ઞા કરે છે કે.—पुष्ट्या विमिश्रा सर्वज्ञा તો શુદ્ધ પુષ્ટિજીવોનુ તો કહેવુ જ શુ ?

श्रीआचार्यजी महाप्रभु मेरे ऊपर अप्रसन्न भये हें ॥ तव स्त्रीसों क[illegible] जो तू श्रीठाकुरजीकी सेवा नीकी भांति सों करीयो ॥ ओर म तो श्रीआचार्यजी के दरशन कों अडेल जात हों ॥ तव दामोदरदास अडेल को चले ॥ सो अडेल जाइ पहोंचे ॥ तव श्रीआचार्यजी के दरशन कीये । साष्टांग दंडवत कीए ॥

तव श्रीआचार्यजी पीठ दे वेठे ॥ तव दामोदरदास संभरवारेने श्रीआचार्यजी सो विनती करि के कह्यो जो महाराज मेरो अपराध कहा हे ? ओर जीव तो अपराध करत ही आयो हे ॥ परि अपराध कर्यो जानिए तो भली वात हे ॥ तव श्रीआचार्यजीने कह्या ॥ जो तेने दामोदरदास हरसानी को सखडी महाप्रसाद क्यों न लिवायो ? ओर अनसखडी प्रसाद क्यों लिवायो? तव दामोदरदास संभरवारेने श्रीआचार्यजी सों विनती कीनी, जो महाराज, दामोदरदाससेंाहि पूछिये ॥ तव श्रीआचार्यजीनें दामोदरदास हरसानी सों पूछी जो दमला तेने दामोदरदास संभरवारे के यहां सखडी महाप्रसाद क्यों न लीयो? तव दामोदरदासने कह्यो जो महाराज श्रीठाकुरजी प्रातःकाल वालभोग अरोगते सोई लेतो ॥ सो सखडी की रुचि रहती नाही तातें न लेतो ॥ तव श्रीआचार्यजी ने कह्यो जो तू तो तेरी इच्छा ते न लेतो ॥ परि मोको तो याके उपर वडी खुनस भई हती ॥ सो भक्तन के अंतःकरण को भक्ति देखिवे को प्रभु को नाट्य हे ॥ काहें तें जो दामोदरदास संभरवारे ने कन्नोज में अपने घर वेठे श्रीआचार्यजी के अंतःकरन की

जानी ॥ सो श्रीआचार्यजी तो भक्त के हृदय में सदा स्थित हैं ॥ वह भक्त हृदे की वात कहा न जाने ? परि भक्त परिक्षार्थ यह प्रभू को नाटय हे ॥ पाछें दामोदरदास को बहुत सन्मान करि के श्रीआचार्यजी ने घर पठाये ॥ तब दामोदरदास अपने घर कन्नोज आइ पहोंचे ॥ पाछें स्त्री पुरुष भली भांति सों सेवा करन लागे ॥

दामोदरदास हरसानी (संभरवारेके उपर कृपा करनके अर्थ) इन के घर पाहुने आए ॥ दामोदरदास संभरवारे तनुजा वित्तजा भलि भांति सों राजसेवा करे हें ओर जो वैष्णव (इनके यहां होयके) श्रीआचार्यजीके दरसन को जाते तिन सबन संग न्यारि न्यारि भेट पठावते ॥ वैष्णवको समाधान बहोत करते ॥ खडियामें विना कहें खरची वैष्णवको भरि देते ॥ सो श्रीआचार्यजीके आगें बडाई वहोत भई ॥ जो आवे सो (वडाई) करे ॥ तब श्रीआचार्यजीके मनमें यह आई जो हृदयके भीतरको भाव शुद्ध होइ तब काम होइ ॥ सो अन्याश्रय न होइ ॥ यह श्रीआचार्यजीके हृदयकी जानिके दामोदरदास हरसानी इनके यहां पाहुने आये ॥ (कृपा करनके अर्थ) सो दामोदरदासके हृदयकी सगरी रीति आछी देखी, परंतु स्त्री में रंच पिताकी कानि जानि सखरी महाप्रसाद न लिये ॥ दिन पाच सात रहे ॥ परंतु अपने हृदयको अभिप्राय कछू दामोदरदाससों मारगकी वार्ता नांहि कहे ॥ पाछें श्रीआचार्यजी पास आए ॥ तब श्रीआचार्यजी

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

पूछे कहांते आए ॥ तब विनती करी जो दामोदरदास संभरवारेके यहां पाहुनें गयो हतो सो सखडी नांहि लियो अनसखडी लीयो ॥ यह कहिके यह जताए जो दामोदरदासको भाव दृढ हे ॥ तातें अनसखडि लीनी ॥ स्त्रीको भाव दृढ नांहि हे तातें सखडी (महाप्रसाद) नाहीं लियो× ॥ तब श्री आचार्यजी दामोदरदास संभरवारेके ऊपर अप्रसन्न भए ॥ **जो मेरे अंतरंग सेवककों पायके स्त्रीकूं अन्याश्रय सों न छुडायो ॥ फेर एसो समें कब पावेगो ?** सो यह बात श्रीआचार्यजी के हृदयकी संभरवारेने जानी ॥ स्त्रीकों पराश्रय हे तातें नांहि जानी ॥

इति प्र ५ समाप्त.

वार्ता प्रसंग ६

ओर सिहनंद के वैष्णव श्रीआचार्यजी के दरसन कों जाते सो कन्नोज में दामोदरदास के घर उतरतें ॥ सो दामोदरदास सबन को प्रसाद लिवावते ॥ ता पाछे जब वैष्णव अहेलको विदा होते तब जितने वैष्णव होते तिन सबन प्रति एक एक मोहोर एक एक नारियल श्रीआचार्यजी की भेट को पठावते ॥ काहेते ? जो मेरी दंडवत खाली हाथ केसे करोगे ? ॥ सो वे दामोदरदास एसे भगवदीय हे ॥

इति वार्ता प्र. ६ समाप्त ॥

× આથી એ અનુમાન થાય છે કે સખડીની રસોઇ સ્ત્રી કરતી હતી.

(या प्रसंग को भाव प्रसंग ५ के भाव में आय गयो हे)

वार्ता प्रसंग ७

ओर दामोदरदास को ससुर बहुत संपन्न हतो ॥ तिनने एक सो लोंडी बेटी के दायजे में दीनी हती * ॥ जो मेरी बेटी बेठी रहेगी ॥ ओर कामकाज सब लोंडी करेगी ॥ परि वह लोंडी पास काम न करावती ॥ सेवा संबंधी कार्य सब आपुही करती ॥ ओर लोंडी सब ओर कामकाज करती ॥ सो वह एसी भगवदीय ही ॥

इति प्र. ७ समाप्त.

वार्ता प्रसंग ८

बहुरि एक समें श्रीआचार्यजी आप दामोदरदास संभरवारे के घर पोढे हते ॥ ओर दामोदरदास संभरवारे पांव दाबत हते ॥ तब श्रीआचार्यजी इनसों पूछे ॥ जो तोको तेरे मनमें काहू बात को मनोरथ हे ? ॥ तब दामोदरदास ने कह्यो जो महाराज मोको तो आप के अनुग्रह ते काहू बात को मनोरथ रह्यो नाहि ॥ तब श्री आचार्यजीने कह्यो ॥ जो तू जाइके अपनी स्त्री सो पूछी आउ ॥ तब दामोदरदास अपनी स्त्रीसो पूछी जो तेरे काहू बात को मनोरथ हे ? तब स्त्रीने

---

* આથી દામોદરદાસની સપત્તિ કેટલી હશે ? તેનુ સહજ અનુમાન થઇ શકે છે. આ એક ઐતિહાસિક તત્વ છે.

कह्यो जो ओर तो कछू मनोरथ रह्यो नांहीं ॥ एक पुत्र को मनोरथ हे ॥ तव श्रीआचार्यजी सो आइ के दामोदरदासने कह्यो जो महाराज स्त्रीको तो एक पुत्र को मनोरथ हे ॥ तव श्रीआचार्यजी आप श्रीमुख तें आज्ञा करे ॥ जो पुत्र होइगो ॥ पाछें श्रीआचार्यजी आप श्रीनाथजीद्वार (जतिपुरा) पधारे ॥ ता पाछे समय भयो तव वाके गर्भ की स्थिति भई ॥ ता पाछे केतेक दिन में वा वाखरि में एक डाकोतिया आयो ॥ तव ताको सव स्मार्त्त की स्त्री पूछन लागी ॥ तव तामें ते काहूने दामोदरदासकी स्त्री सो कही ॥ जो अमूकी × तू हू पूछि, तेरे कहा होइगो ? पाछें एक लोंडिने जाइके वा डाकोतिया सों पूछी ॥ जो कहा होइगो ॥ वेटा होइगो के वेटी होइगी ॥ तव वा डाकोतियाने कह्यो ॥ जो वेटा होइगो ॥

ता पाछे केतक दिनमें श्रीआचार्यजी कन्नोज पधारे ॥ तव दामोदरदास चरन छुवन लागे ॥ तव श्रीआचार्यजी ने

× અમુકી શબ્દ યોજવાથી એ સ્પષ્ટ થાય છે કે દામોદરદાસની સ્રીનુ નામ ભગવત્સબધી અથવા યોગ્ય નહિ હતુ, શ્રીગોકુલનાથજીની એક ખાસ ટેવ હતી કે ખરાબ નામનો ઉચ્ચાર ન કરતા. માટેજ કેટલીક વાર્તાઓ વિના નામની આવે છે. આ ભેદ શ્રીહરિરાયજીએ " एक क्षत्रानी प्रयागमें रहती " (वार्ता ४३) તેમા આ પ્રમાણે કહ્યો છે —अब जहां तहां नाम श्रीगोकुलनाथजी नांही कहे सो मातापिता हीन नाम राखे ॥ काहूको फकीरा घसीटा ॥ सो वैष्णव सों हीन नाम श्रीगोकुलनाथजी कहते नाहि ॥

कह्यो ॥ जो तू मोकों छुवे मति ॥ तोकों अन्याश्रय भयो हें ॥ तब दामोदरदासने कह्यो ॥ जो महाराज हेंतो कछु जानत नाहीं ॥ तब श्रीआचार्यजी ने कह्यो जो तू अपनी स्त्रीकों पूछि तब दामोदरदास ने अपनी स्त्रीसो पूछी ॥ तब स्त्रीने जो प्रकार भयो हतो सो सब कह्यो ॥ सो सब वात दामोदरदासने श्रीआ-चार्यजी सों आय कही ॥ तब श्रीआचार्यजी दामोदरदास सों कहे ॥ जो पुत्र तो होइगो परि म्लेछ होइगो ॥ पाछें श्रीआचार्यजी आप अडेल पधारे ॥

पाछें यह वात दामोदरदासकी स्त्रीने सुनी तब तें श्रीठा-कुरजीकी सामग्री तथा पात्र को आप स्पर्श न करती ॥ कहेती जो मेरे पेट में म्लेच्छ हे तो में श्रीठाकुरजी की सामग्री तथा पात्र केसें छूओं ? या भांति सो रहे ॥ पाछें जब प्रसूति के दिन आए॥ तब दामोदरदास की स्त्रि ने अपनी महतारी सो कह्यो जो मेरे पुत्र होइ तो होत मात्र ही तू तत्काल ले जैयो ॥ में वाको मुख न देखोंगी ॥ जो वाको महोडो हम देखे तो हमारो अनिष्ट होई ॥ तातें वाको महोडो नांहि दोखे एसो उपाइ तू करियो ॥ पाछें वाको महतारीने त्योंही कीयो ॥ प्रसूत होत मात्र तत्काल अपने घर ले गई ॥ सो धाइको देके वडो कीयो ॥ *

---

* આ પ્રસગ સ ૧૫૬૪–૬૫ લગભગ બન્યો છે. બીજી પરિક્રમાના અતમા

एक समें जब श्रीआचार्यजी कन्नोज पधारे तब दामोदरदास सों आज्ञा करी कछू मनोरथ होइ सो मांगि ले ॥ या प्रकार फेरि दामोदरदास की परिक्षा किए ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

जो स्त्रीकों पराश्रय हे ॥ ताके संगते याहूको पराश्रय होइ ॥ तो कछू वर दीजे ॥ इतने पुष्टिमार्गके फलसों रहित होइ ॥ परि दामोदरदास तो दृढ हे ॥ तातें कहे महाराज आपुके चरनारविंदकी सेवा मिली अब मोको काहू बातको मनोरथ नांही हे ॥ तब श्रीआचार्यजीने दामोदर-दाससों कह्यो स्त्रीको पूछी आव ॥ यामे यह जानिए जो श्रीआचार्यजी दामोदरदाससों बोले परि स्त्रीसों कछू बोले नांही ॥ ओर स्त्री हू आप आय श्रीआचार्यजी सों बिनती नांही कीनी यामे यह जानिए जो (स्त्री) बहोत श्रीमहाप्रभुजीकी निकट हूं नाही आवती, ओर मनमें अन्याश्रय हतो ॥ तातें कह्यो एक पुत्र सेवा अर्थ होय ॥ सो यह विचार नांहि आयो ? जो पुष्टिमार्ग की सेवा मांगे ते मिले ॥ पुत्र को कहा प्रमान हे जो सेवा करेगो ? इतने यह वचनमें (श्रीआचार्यजीने जान्यो) जो मेरो आश्रय छूटयो ॥ जाव पुत्र लेके सगरी भक्ति सकामी होइ गई ॥ ताते मुकुंददास * ने सप्तम स्कंधमें प्रहलाद नृसिंहजी सों

---

* આ મુકુંદદાસ તે દિનકરદાસના ભાઈ ૮૪ વાર્તામાં તેમની વાર્તા ૧૯ મી છે તેમણે આખા શ્રીમદ્‌ભાગવતનો ભાષામા પદ્યરૂપે અનુવાદ કર્યો છે અને તે “મુકુંદસાગર” નામથી પ્રસિદ્ધ છે. પરંતુ અત્યારે તે પ્રાપ્ત થતો નથી. તપાસ કરવાની જરૂર છે. તેમનો સમગ્ર ઇતિહાસ તેમની વાર્તામાં આપ્યો છે.

कहे हें ॥ "स्वामिसों निज अर्थ हि चाहें ॥ निंदन भक्ति अनगाहें ॥" स्वामीसों लौकिक वैदिक अपनो सुख कछू चाहे सो निंदत हे वाको भक्ति न मिले या प्रकार पुत्र दे आप श्रीगोवर्धनधर पास गिरिराज पधारे ॥ फेरि जब स्त्रीने अन्याश्रय कीयो तब आप कन्नोज पधारे ॥ ओर दामोदरदासकों चरन यातें छूवन नहिं दीये जो स्त्रीके हाथको खान पान दामोदरदासने कीयो हे ॥ तातें चरनपरस करिवेको अधिकार नांही हे ॥ यह दामोदरदासकुं जतायो ॥

तातें अन्याश्रय बराबरि दोष दूसरो नांही हे। जेसें एक पति छोडिकें दूसरो पति करे तब स्त्रीको सगरो धर्म जाइ ॥ ताहि प्रकार अन्याश्रय रंच करे तो वैष्णवको धर्म नाश होई ॥ यह सिद्धांत दिखाए ॥ फेरि स्त्रीको अनन्यता भई तातें श्रीठाकुरजीकी सामग्री सेवा परस नांहि करती ॥ तब वह अन्याश्रय पुत्र द्वारा हृदय तें निकर्यो ॥ काहेतें श्री भागवतमें कहे हें भक्त कों श्रीठाकुरजी विना ओर ठौर ममत्व होई सो वस्तुकों श्रीठाकुरजी तत्काल नाश करे ॥ तब ज्ञान वैराग्य दृढ होइके आश्रय सिद्ध होइ ॥ भक्ति न होइ तो वस्तु गए ओरहू अन्याश्रय सदा करे ॥ सो स्त्रीकी पुत्रमें ममता देखि के नष्ट श्रीआचार्यजीने अपने जानिके किए ॥ तव स्त्रीकों ज्ञान भयो ॥ तब अपनि मातासों कहे ॥ जो में पुत्रको मुख न देखोंगी ॥ सो पुत्र होन समय नेत्रनसों पटी बांधि लीनी ॥ सो उनकी माता पुत्रको जन्मतही अपने घर ले गई ॥ तहा पुत्र वरस १० को व्हे पाछें म्लेच्छ भयो ॥ स्त्री पुरुष मन लगाइके श्रीद्वारकानाथजी की सेवा करी ॥

इति प्र. ८ समाप्त.

वहुरी एक समय दामोदरदास की देह छूटी ॥ तव स्त्रीने घर में छिपाइ राखे ॥ पाछें वैष्णव

वार्ता प्रसंग ९

सों कह्यो ॥ जो तुम एक नाव अडेल को भाडे करिलावो ॥ सो वैष्णव नाव भाडे करि लाए ॥ तो नावमें श्रीद्वारकानाथजी और घरमेंकी सव सामग्री त्रण पर्यंत कछु घरमें राख्यो नहि ॥ घरमें हतो सो सव नाव में धर्यो ॥ तव वैष्णवन सों कह्यो ॥ जो यह नाव अडेल ले जाउ ॥ सव श्रीआचार्यजी महाप्रभून के मंदिर में पहोंचाओ ॥ सो वैष्णव नाव लेके चले ॥ सो कोस तीस चालीस उपर नाव गई ॥ पाछें स्त्रीने प्रगट कीए॥ जो दामोदरदास की देह छूटी हें ॥ तव वैष्णव सव आए ॥ संस्कार कीयो ॥ तव दामोदरदास को वेटा तुरक × भयो सो आयो ॥ सो आय के देखे तो घरमें कछू नाहीं ॥ जल को करवा भर्यो हे ॥ सो देखिके मूड पटकि रह्यो ॥ पाछें दामोदरदास को ससुर आयो ॥ तिननें वेटी सों कह्यो ॥ जो वेटी तेनें घरमें कछू राख्यो नाहीं ॥ जो अव तू कहा खायगी ? तव वानें कही जो तुम देउगे सो खाऊंगी ॥ क्षत्री लोगन के या समें सगे सहोदरे कछु देत हें ॥ एसी ज्ञाति की रीति हें ॥ तव दामोदरदास की स्त्रीने जलपान न कर्यो ॥ सो थोरेही दिन में देह छूटी ॥ कृति दोउन की साथ गई ॥ तव यह वात

× અહીં કર્મથી તુરક (મ્લેચ્છ) કહ્યો છે, જેમ રાવણ બ્રાહ્મણ હોવા છતા રાક્ષસ કહેવાયો છે

केतेक दिन पाछें काहू वैष्णवनें श्रीआचार्यजी आगे कही ॥ तब श्रीआचार्यजी नें कह्यो ॥ जो इनको एसोही चाहिए॥ सो वे दामोदरदास तथा उनकी स्त्री ये दोउ श्रीआचार्यजी के सेवक एसे परम कृपापात्र भगवदीय हें ॥ तातें इनकी वार्ता को पार नाहीं ॥ सो कहां ताई लिखिए ?

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

पाछें दामोदरदास की देह छूटी ॥ तब स्त्रीने देह छिपाइ यातें राखे जो पुत्र म्लेच्छ हे ॥ सगरी वस्तु श्रीजी की हे सो ले जायगो ॥ तातें नाव भरि कें सब वस्तु श्रीआचार्यजी के यहां पहुंचाई ॥ जब कोस चालिस नाव गई तब स्त्रीने जाहेर कीयो ॥ ससुर आदि ज्ञाति के सबने दामोदरदास की देह को संस्कार कियो ॥ पाछें बेटा दोरि के आयो सो देखे तो माटी को करुवा जलसों भर्यो हे ॥ आर कछू हे नांहीं ॥ जब खबर पाइ तब नाव लेके दोर्यो ॥ परंतु पायो नांही ॥ तब माथो पीटि रह्यो ॥ यामें यह जतायो जो लकिक होइ के अलौकिक वस्तू लेन को उपाय करे सो दुखही पावे ॥ परंतु हाथ लागे नांही ॥

ओर ससुरने कह्यो ॥ कछू राख्यो नांहीं ॥ अब तू कहा खायगी ? यह लौकिक पूछयो ॥ तब स्त्रीने अलौकिक बात कही जो अब तुम देउगे सो खाऊंगी ॥ या समे क्षत्री लोगन में सगे देत हें ॥ तासों निर्वाह करूंगी ॥ ताको अर्थ यह जो श्रीठाकुरजी पधारे सो सेवा यिना घरकी वस्तु केसे लेउं ?

(और) अलौकिक (जो में=अलौकिक स्वरूप भावना को) वस्तु के संग (श्रीआचार्यजी के यहां) गई ॥ सेवा विना में लौकिक हों ॥ सो लौकिक सों निर्वाह करुंगी ॥ या प्रकार कीने हूं देह छोडि दियो ॥ क्रिया कर्म सब दामोदरदास के संग भयो ॥

इति प्र. ९ समाप्त.

---

* ॥ लोंडीकी वार्ता लिख्यते ॥

ओर वह लोंडी बडी भगवदीय हती ताकी वार्ता (विस्तार पूर्वक) नांहि लिखी ("वार्ता में") सो यातें ॥ (जो वो) श्रीजमुनाजी की सखी हे ॥ लीलामें इनको नाम कृष्णावेसनि हे ॥ सदा कृष्ण के स्वरूप को आवेस रहतो ॥ सो द्वापर में विदुरजी की जो यह लोंडी हती ॥ सो श्रीठाकुरजी में अत्यंत स्नेह ॥ (सो इन्हीके लिए श्रीठाकुरजी) विदुरजी के घर विना बुलाए जाते ॥ सो अब दामोदरदास के इहां आई ॥ सो लोंडी दामोदरदास के ब्याहमें आई ॥ याको पुष्टिसंबंध भयो ॥ मानसी में मगन रहती ॥

एक दिना दामोदरदास (कुँ) सेवा करतमें मनमें आई ॥ जो नकास में जाइ घोडा खरीदिए ॥ ताही समय एक वैष्णव दामोदरदास कों मिलन कों आयो ॥ तब लोंडी ने कही नकासमें घोडा खरीदन गए हें ॥ तब

---

* वैष्णुव ४. लोंडीनु स्वरुप निरोधलीलात्मक छे अने मानसी सिद्ध हती ते सदेहे लीलामां गई ते वीर्य धर्म प्रकट कर्यो. एथी आ वार्ता वीर्यधर्मरुप जाणवी. ८६ वैष्णुवमां आ चोथा वैष्णुवनी-वार्ता जाणवी.

वह वैष्णव चल्यो गयो ॥ पाछें यह बात काहूने दामोदरदास सों कही ॥ जो तुम सेवा में हते (तब) लेंडी ने एसे कही ॥ तब दामोदरदास लोंडी सों पूछि ॥ तब लोंडीने कही तिहारो मन वा समय कहां हतो ? जहां मन तहां देह जानियो ॥ तब दामोदरदास चुप होइ रहे ॥

सो जब नावमें सगरी सामग्री धरी ॥ तामें सामग्रो सदृश लोंडी हू हे ॥ सो वह नाव पर श्रीद्वारकानाथजी के संग गइ ॥ तब श्रीआ-चार्यजी सों वैष्णव ने आइ कहो ॥ महाराज श्रीद्वारकानाथजी वैभव सहित पधारे हें ॥ ता समें श्रीगोपीनाथजी ठाडे हते ॥ (तब) श्रीगोपीनाथजी कहे लक्ष्मीसहित नारायण पधारे (हें) ॥ तब श्रीआचार्यजी कहे ॥ वैभव ठाकुरको देखि के तिहारो मन प्रसन्न भयो हे ? ॥ (तब) श्रीगो-पीनाथजी कहे **तिहारो कहाइके श्रीठाकुरजी की वस्तुमें अपनो मन करेगो ताको निरमूल नाश जाइगो** ॥ तब श्रीआचार्यजी कहे ॥ **हमारो मारग तो एसोई हे** ॥ सो द्रव्य तें कछूक गोपीनाथजी प्रसन्न भए हते ॥ सो एक पुत्र भयो ॥ परंतु वंस नाही चल्यो ॥ पाछें श्रीआचार्यजी वैष्णव सों आज्ञा कीए ॥ सगरि सामग्री श्रीजमुनाजी में पधराइ देउ ॥ श्रीद्वारिकानाथजी को हमारे घर पधराई लावो ॥ तब वह लोंडी हू सामग्री रूप हे ॥ सो देह सहित श्रीजमुनाजी पास चली गई ॥ सगरी सामग्री श्रीजमुनाजीमे पधराई ॥ श्रीद्वारकानाथजी श्रीआचार्यजी के घर बिराजे ॥ यह लोंडी की अलौकिक बात हती ॥ सो लोगनमे विरुद्ध सी लागी ॥ तातें श्रीगोकुलनाथजी प्रकास नांही कीए ॥ सामग्री रूप कहें * ॥

---

* શ્રીઆચાર્યજીના નિર્ગુણભક્તમા આ લોંડીની ગણત્રી છે

पाछें काहू वैष्णवने श्रीआचार्यजी सों विनती कीनी महाराज सामग्री तो दामोदरदास की स्त्री वैष्णव ने पठाई ॥ सो आप अंगिकारि क्यों नांहि किए? ॥ तब श्रीआचार्यजी कहे जो वेटा म्लेच्छ हे ॥ सुनके आवे झगरो करे ॥ द्रव्य दु:खको मूल हे ॥ दामोदरदास की स्त्रीने पठायो ॥ श्रीमहारानीजी (कों) अंगीकार हू करायो ॥ लौकिक झगरो हू मिटायो ॥ पाछें काहू वैष्णवनें स्त्री ने हू देह छोडि इनकी वात कही ॥ तब श्रीआचार्यजी कहे स्त्रीपुरुष भले वैष्णव टेक के हते ॥

॥ वैष्णव ३ ॥ (गिनती लौंडि समेत वैष्णव ४)

પદ્મનાભદાસની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને રહસ્યઃ–

આ સમગ્ર વાર્તામાં વીર્ય ધર્મનુ નિરૂપણ છે. જેમ દેહમાં વીર્ય સાર છે તેમ પુષ્ટિધર્મમા આ વાર્તા પુષ્ટિધર્મના સારરૂપ છે (જુઓ પ્ર૦ ૩ શ્રી હરિ૦ કૃત ભા. પ્રકાશ) પુષ્ટિજીવોનો ફક્ત એક જ ધર્મ છે. અને તે સર્વકાલમા ભગવત્સુખાર્થે સેવા છે. પુષ્ટિસૃષ્ટિ કાયાથી ઉત્પન્ન થયેલી હોઈ તે ભગવત્સુખથી અતિરિક્ત કોઈ પણ ધર્મમાં પ્રવૃત્ત થાય જ નહિ "आनदमात्रकरपादमुखोदरादिः" પુષ્ટિપ્રભુનું જ્યાં સુધી સાંગોપાંગ સ્વરૂપ જાણવામાં ન આવે ત્યા સુધી કોઈ પણ વ્યક્તિ તે પ્રભુને સુખ કયા પ્રકારે થાય તે સમજી નજ શકે. તેમજ તેને માટે કોઈ પણ પ્રકારનુ આચરણ કરી શકે નહિ.

તે ભાવાત્મક આનદરૂપ પ્રભુનાયે "સારભૂત" આધિદૈવિક સ્વરૂપનુ સાગોપાંગ જ્ઞાન આજ સુધીમા ફક્ત ત્રણ જ ભક્તોને પ્રાપ્ત થયુ છે. તે "આનદસારભૂત" શ્રીઆચાર્યચરણનું સ્વરૂપ દિવ્ય અને મહાન્ અલૌકિક છે. તે સ્વય કૃપા કરી સ્વાનદનુ દાન કરે તોજ

તે અનુભવી શકાય તેમ છે " नायमात्मा प्रवचनेन लभ्योः " એ શ્રુતિ અહિં પ્રમાણભૂત છે.

આ સ્વરૂપનો પૂર્ણ અનુભવ દામોદરદાસ હરસાની, પ્રભુદાસ જલોટા અને પદ્મનાભદાસને જ થયો છે. આ મહાન્ અલૌકિક " સુધા " સ્વરૂપના પાનમા કોઈનો યે પ્રવેશ નથી

પદ્મનાભદાસજી સ્વય વર્ણન કરે છે કે,–" तहा प्रवेश द्वै भ्रमर को दामोदर प्रभुदास "

આ સ્વરૂપનો અનુભવ શ્રીમદાચાર્યચરણની પૂર્ણ કૃપાથી જ પ્રાપ્ત થાય છે, અન્યથા નહિ જ.

જુઓ પદ્મનાભદાસજી કહે છે કે --

दमला प्रभुदास बडभागी तिनको पुन पुन आप सिखावे ॥

યદ્યપિ પદ્મનાભદાસે પોતાને માટે કઈ પણ વર્ણન નથી કર્યુ. તો પણ તેમના ૪૦ પદોથી આપણે જાણી શકીએ છીએ કે તેમને પણ આ સ્વરૂપનો અનુભવ હતો

પદ્મનાભદાસના પદોમા શ્રીઆચાર્યજીના સાતે સ્વરૂપ (જુઓ " વાર્તારહસ્ય ") ની ઓતપ્રોતતા અને તેના પૂર્ણ અનુભવનુ વર્ણન સ્પષ્ટ તરી આવે છે. તેની અત્યંત સૂક્ષ્મ ઝાખી અહીં કઈક કરાવીએ છીએ --

પદ ૧ श्रीलक्ष्मनसुत ने कहू गावे ॥

दमला प्रभुदास वडभागी तिनकों पुन पुन आप सिखावे ॥
प्रेमविवश होइ श्रीवल्लभ प्रभु नेन सेनमें अर्थ जनावे ॥
प्रकट प्रसिद्ध यशोदानंदन रसिक शोभामय सकल जनावे ॥
वृंदावन रमणीक रमण अति उर संपुटकी कोउ न पावे ॥
पद्मनाभ गिरिधररसलीला वेणुनादकी वतियां मावे ॥

पंक्ति १ लक्ष्मनसुत ત્યા આચાર્યસ્વરૂપનુ વર્ણન છે.

„ ૨-૩ માં વલ્લભસ્વરૂપ (લીલામધ્યપાતી દાસ્યભાવનું શેષ માહાત્મ્ય સ્વરૂપ) નું વર્ણન છે. (જુઓ દામો૦ હર૦ ની વાર્તા પ્ર૦ ૧નું પરિ૦ રહસ્ય)

„ ૪ માં ભગવદ્ભાવરૂપ શ્રીકૃષ્ણ સ્વરૂપનુ પ્રતિપાદન છે.

„ ૫ મા સ્વામિનીભાવ રૂપનુ વર્ણન છે.

„ ૬ માં સુધાસ્વરૂપનુ વર્ણન છે.

આ પુસ્તકમા આપેલા "વાર્તા-રહસ્ય" અને શ્રીહરિરાયજીના ભાવાત્મક લેખનુ મનન કરવાવાળાઓ ઉપર્યુક્ત સ્વરૂપોનો સહજમા અનુભવ કરી શકે તેમ હોવાથી અહીં વિસ્તાર નથી કર્યો, જેમ ગગાના ભૌતિક પ્રવાહસ્વરૂપમાં આધ્યાત્મિક અને આધિદૈવિક સ્વરૂપની સ્થિતિ રહેલી છે (જુઓ "વાર્તા-રહસ્ય") તેમ આચાર્ય સ્વરૂપમાં જ આ સાતે સ્વરૂપોની સ્થિતિ છે, અને તે તદ્રૂપ છે. માટે શ્રીઆચાર્યચરણનો દેહ અલૌકિક અને આનંદરૂપ નિત્ય છે.

દષ્ટાંત રૂપે—ભગવદ્વિગ્રહ (મૂર્તિ-સ્વરૂપ) માં મર્યાદારૂપે (મત્ર વિધિ આદિથી) અને પુષ્ટિ રૂપે (ભાવથી) સાક્ષાત્ પ્રભુનો આવિર્ભાવ રહે છે. તદ્વત્ અહીં સમજવુ.

પદ ૨ श्रीमद्वल्लभरूप सुरंगे ।

अंग अंग प्रति भावनके भूषन वृंदावन संपति अंगअंगे ॥

चटक मटक गिरधरजूकी नांइ एन मेन व्रजराज उछंगे ॥

पद्मनाभ देखे वनि आवे सुधि रही रसाल भ्रुवसंगे ॥

આ પદમા પ્રથમ બે પક્તિઓમાં શ્રીઆચાર્યજીનું ભાવરૂપ વિપ્રયોગાત્મક શૃગારરસ સ્વરૂપનુ પ્રતિપાદન છે-(જેને કૃષ્ણાસ્ય કહેવામાં આવે છે જુઓ "વાર્તા-રહસ્ય") અને નીચેની બે પંક્તિમાં

શ્રીઆચાર્યજીનું ભાવરૂપ સંયોગાત્મક શૃંગારરસસ્વરૂપનુ વર્ણન છે * (જે ભગવદ્ભાવરૂપ આનદમાત્રકરપાદમુખોદરાદિરસસ્વરૂપ છે) અહિં સ્થલ સંકોચથી અન્ય પદો નથી આપતા

આથી આપણે જાણી શકીએ છીએ કે—પદ્મનાભદાસનો પણ "આનદસારભૂત" શ્રીઆચાર્યજીના સુધા આદિ સાતે સ્વરૂપમાં પૂર્ણ પ્રવેશ છે દામોદરદાસ અને પ્રભુદાસે આ સ્વરૂપને કેવલ હૃદયમા જ અવગાહ્યુ જ્યારે પદ્મનાભદાસજી એ સ્વજનોના હિતાર્થે કીર્તનરૂપે બાહ્ય પ્રગટ કર્યુ પદ્મનાભદાસ શ્રીમથુરેશજીમા શ્રીઆચાર્યજીના જ સ્વરૂપની ભાવના કરતા (જુઓ પ્રસંગ ૭નુ પરિશિષ્ટ રહસ્ય)

જેવી રીતે પદ્મનાભદાસ પુષ્ટિપ્રભુના (આનદરૂપના) સારભૂત આધિદૈવિક સ્વરૂપમા મગ્ન હતા તેવી જ રીતે પુષ્ટિધર્મના પણ સારભૂત શ્રીઆચાર્યચરણના સુખમા સદા નિમગ્ન રહેતા (જુઓ પ્રસગ ૩)

આ રીતે આ વાર્તા વીર્યધર્મરૂપ કહી

બીજા પ્રકારે આ પદ્મનાભદાસની વાર્તા પુષ્ટિના આશ્રયરૂપ છે એટલે તે શ્રીઆચાર્યજીના આશ્રયરૂપ છે એટલે તે શ્રીઆચાર્યજીના વામ શ્રીહસ્તસ્વરૂપ છે (જુઓ "વાર્તારહસ્ય") શ્રીઆચાર્યજીનુ વામ અગ ભાવાત્મક વિપ્રયોગરૂપ છે અને દક્ષિણ અગ સયોગાત્મક છે (આ સંપ્રદાયની પરપરાગત ભાવના છે) ગદાધરદાસની વાર્તા (પુષ્ટિ) ઊતિ સ્વરૂપ હોઇ શ્રીઆચાર્યજીના દક્ષિણ શ્રીહસ્તસ્વરૂપ છે તે તેમની વાર્તામા સમજાવ્યુ છે પદ્મનાભદાસની વાર્તાનુ આશ્રયસ્વરૂપ (વામ શ્રીહસ્તરૂપ) ગદાધરદાસની વાર્તામા સમજાવ્યુ છે

---

* શ્રીઆચાર્યજીના રસ સ્વરૂપનુ વિશેષ વર્ણન જોવુ હોય તો જુઓ શ્રીહરિરાયજીકૃત "रसात्मकभावस्वरूपनिरूपणम्"

શ્રીઠાકુરજીમા શ્રીઆચાર્યચરણ (વિપ્રયોગાત્મરૂપ)ની ભાવના કરી સેવા કરનાર ચોર્યાશી વૈષ્ણવોમા પાચ જ વૈષ્ણવો છે. ૧ પદ્મનાભદાસ, ૨ શેઠ પુરુષોત્તમદાસ ૩ એક ડોકરી મહાવનની (જેને શ્રીજમનાજીમાંથી ચાર સ્વરૂપ પ્રાપ્ત થયા તે) ૪ પ્રભુદાસ જલોટા ૫ અને મહાનુભાવ પરમ ભાગ્યવાન રજો ક્ષત્રાણી. આ પાચે ભક્તોમા પદ્મનાભદાસે પોતાનો અનુભવ પ્રકટ કર્યો અન્ય ચારે ગુપ્ત અનુભવ્યો શ્રીઠાકુરજીમા શ્રીઆચાર્યચરણની ભાવનાથી સેવા કરવી તે આ વાર્તાનુ રહસ્ય છે–(વિશેષ જુઓ પ્રસગ ૭નુ પરિશિષ્ટ રહસ્ય)

ત્રીજા પ્રકારે આ વાર્તા પુષ્ટિના ધર્મી રૂપ છે. કારણ કે સર્વ ધર્મમા વીર્યધર્મ મુખ્ય છે માટે આ વાર્તામા છએ ધર્મોનુ આ પ્રમાણે નિરૂપણ છે —

પ્રસગ ૧ મા —**શ્રી ધર્મનું** નિરૂપણ

સ્વામીની આજ્ઞાનો પૂર્ણ વિશ્વાસ તે શ્રી ધર્મ (જુઓ કૃષ્ણદાસ મેઘનની વાર્તા) "**श्रियो हि परमा काष्ठा**" इति वचनात्

તે પદ્મનાભદાસે શ્રીઆચાર્યજીની આજ્ઞાને અનુસાર વૃત્ત્યર્થ ભાગવતની કથા જીવન પર્યંત ન કહી અનેક કષ્ટ સહન કર્યાં. આવી રીતે સ્વામીની આજ્ઞાનો વિશ્વાસ.

પ્રસંગ ૨ માં —**પુષ્ટિધર્મનું પણ તત્ત્વ શ્રીઆચાર્યજીનું સુખ વિચારવું** તે સ્પષ્ટ દેખાડ્યુ. અહીં પણ **શ્રીધર્મ** (શ્રીઆચાર્યજીની આજ્ઞાનો વિશ્વાસ) કહ્યો

પુષ્ટિધર્મના સારભૂત શ્રીઆચાર્યજીનુ સુખ વિચાર્યું, અને અકિંચન હોવા છતા શ્રી જે લક્ષ્મી (૧૭૦૦૦ રૂપીઆ) વિના વિલબે પ્રાપ્ત થઈ. અહિં પણ **શ્રીધર્મ** જાણવો. અને રાજાના પ્રસગમાં **ઐશ્વર્ય** જાણવુ. મૂઢ પુરુષોમાં પણ પોતાની વાણીના પ્રભાવથી રસ (વીરરસ) ની ઉત્પત્તિ કરી મુગ્ધ કર્યા.

પ્રસગ ૪ મા — **વીર્ય ધર્મનું નિરૂપણ.**

શ્રીપ્રભુમા એવો દૃઢ સ્નેહ કે લોકવ્યવહાર અનેવેદધર્મનુ ઉલ્લંઘન કર્યું જાતિ બધી ઝખમારી રહી (વિશેષ જુઓ તે પ્રસગ નીચેની નોટ)

પ્રસંગ ૫ મા—યશ ધર્મનુ નિરૂપણુ

પોતાના ચરણોદકથી પુત્ર આપ્યો.

પ્રસંગ ૬ મા—વૈરાગ્ય ધર્મનું નિરૂપણુ

શ્રીઠાકોરજીના લુટમા પધારવાથી સાત દિવસ સુધી દેહાધ્યાસનો ત્યાગ કર્યો અન્ન જલ કંઈ પણ ન લીધુ અહીં ઐશ્વર્ય પણ નિરૂપેલુ છે

મુગલાની જે પરધર્મી અને નિર્દય તેના હૃદયમા પૂજ્યભાવ થવો તે ઐશ્વર્ય.

પ્રસગ ૭ મા.—શ્રીઆચાર્યજીના સ્વરૂપનુ જ્ઞાન છે (વિશેષ જુઓ પરિશિષ્ટ રહસ્ય)

अव श्री आचार्यजी महाप्रभून के सेवक पद्मनाभदास कन्नोजिया ब्राह्मण कन्नोज में रहते तिनकी वार्ता ॥

वार्ता प्रसंग १

सो प्रथम पद्मनाभदास व्यासासन बेठते॥ सो कन्नोज में आप अपने घर कथा कहते ॥ ऊंचे आसन बेठते॥ काहूके घर जानो न परतो ॥ वृत्ति घर बेठे चली आवती॥या भांति रहते ॥ सो एक समय श्रीआचार्यजी आप कन्नोज पधारे॥ तब पद्मनाभदास दरसन को आए॥ तब पद्मनाभ-दासने श्रीआचार्यजी महाप्रभू के श्रीमुखतें भगवद्वार्ता को प्रसंग सुन्यो ॥ तब जानी जो ए साक्षात ईश्वर हें ॥ श्रीपूर्ण पुरुषोत्तम यही हें ॥ सो पुरुषोत्तम जानि के पद्मनाभदास श्रीआचार्यजी की शरण आए ॥ नाम पायो ॥ पाछे समर्पन

करवायो ॥ पाछे उत्थापन के समें श्रीआचार्यजीने पोथी खोली ॥ तहां दामोदरदास संभरवारे के घर विराजे हते ॥ सो पद्मनाभदास आपनें घर तें आये श्रीआचार्यजी को दंडवत करिके बेठे ॥ तब श्रीआचार्यजी ने निबंध को श्लोक कह्यो ॥ सो श्लोक ॥

> " पठनीयं प्रयत्नेन सर्वहेतुविवर्जितम् ।
> वृत्त्यर्थं नैव युंजीत प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥१॥
> तदभावे यथैव स्यात् तथा निर्वाहमाचरेत् ।
> त्रयाणां येन केनापि भजन् कृष्णमवाप्नुयात् ॥२॥

यह श्लोक पढे ॥ सो पद्मनाभदासजी ने अंजुली भरि के संकल्प कीयो ॥ जो कथा कहि के वृत्ति न करूंगो ॥ एसे श्रीआचार्यजी के आगे संकल्प कीयो ॥ तब श्रीआचार्यजी कहे ॥ जो श्रीभागवत वृत्त्यर्थ न कहनो ओर तो तुम्हारी वृत्ति हे ॥ तुम ब्राह्मण हो ॥ तातें ओर महाभारत इत्यादिक तो कहनो ॥ तब पद्मनाभदास ने कह्यो जो महाराज अब तो संकल्प कीयो सो तो कीयो ॥ ताते कछू न कहनो ॥ तब श्रीआचार्यजीने कही जो तुम तो गृहस्थ हो ॥ कोन भांति सो निर्वाह करोगे ? तब पद्मनाभदास नें श्रीआचार्यजी सें कह्यो ॥ जो श्रीभागवत वृत्त्यर्थ न कहूंगो ॥ ओर जिजमान के घर वृत्ति कर लाऊंगो ॥ तातें निर्वाह करूंगो ॥ पाछे जिजमान के घर वृत्त्यर्थ गए ॥ तिनने बहुत

आदर कीयो ॥ तब पद्मनाभदास के मनमें ग्लानी आई ॥ जो पहिले तो कबहू भिक्षा करी नाहीं ॥ अब वैष्णव भये पाछे भिक्षा मागन निकस्यो ॥ सो उचित नाहीं ॥ पहले तो उपवीत गरे में हतो ॥ ताकों तो उचित हे जो भिक्षावृत्ति करें ॥ परि अब तो गरेमें माला पहरी ॥ ताको तो यह भिक्षा वृत्ति उचित नाहीं ॥ तब फेरि संकल्प कीयो ॥ जो भिक्षावृत्ति न करूंगो* ॥ तब फेरि श्रीआचार्यजी ने पूछी जो अब निर्वाह केसे करोगे ? ॥ तब पद्मनाभदास नें कही जो वैश्यवृत्ति करि निर्वाह करूंगो ॥ पाछें कोडी बेचते लकडी ले आवते ॥ परि ओर बात न विचारी ॥ या भांति देहादि पर्यंत सेवा कीनो ॥ एसे टेकी ॥

इति प्र. १ समाप्त ॥

---

*તે વખતે પદ્મનાભદાસે આ પદ ગાયુ —
जाचौं जाय कोनके घरपें श्रीवल्लभसे पाय धनो।

× + × ×

છેલ્લી લીટી पद्मनाभप्रभु विलोक वागधीश मिट गये रवि सुत त्रास रनी ॥

નોધ —ક્વચિત્ આ પદના અતે કુભનદાસની છાપ પણ જોવામા આવે છે પરતુ વાક્યરચનાભાવ અને સંગતિ પદ્મનાભદાસના અન્ય પદો સાથે ચોક્કસ મળતી હોવાથી આ પદ્મનાભદાસકૃત પદ છે તેમા જરાય સંશય રહેતો નથી

પદ્મનાભદાસનો શેષ ભૌતિક ઇતિહાસ:—

પદ્મનાભદાસનો જન્મ સંવત ૧૫૨૦ માં કન્નોજ ગામમા એક કનોજીઆ બ્રાહ્મણુને ત્યા થયો હતો. પદ્મનાભદાસના પિતા એક સુપ્રસિદ્ધ ભાગવતકથાકાર હતા તેઓ ભાગવતને પોતાના ઈષ્ટદેવ તરીકે ગણી, નિત્ય શ્રીમદ્‌ભાગવતનુ પૂજન કરતા, ભોગ ધરતા અને પ્રેમપૂર્વક આરતી ઉતારતા પદ્મનાભદાસના પિતા લગભગ ૪૦ વર્ષના થયા ત્યા સુધી તેઓને કોઈ સતતિ ન હતી

એક સમય તેઓ "નૈમિષારણ્ય"મા ગયેલા, ત્યા તેઓને રાત્રે સ્વપ્નમા ભગવદાજ્ઞા થઈ કે અહીં તમે દુગ્ધપાન કરી એક શ્રીમદ્‌-ભાગવતની સપ્તાહ કરો તમારે ત્યા એક હરિભક્ત પુત્ર થશે આજ્ઞાનુસાર તેઓએ એક સપ્તાહ કરી પછી તેઓ કન્નોજ આવ્યા. ત્યા તેઓને સમયાનુસાર એક સુદર પુત્રરત્નની પ્રાપ્તિ થઈ. અને તે પુત્રનુ નામ તેઓએ "પદ્મનાભ" રાખ્યુ

પદ્મનાભ બહુ જ સુદર તેજસ્વી અને અત્યત તીવ્ર બુદ્ધિના હતા નાનપણુથીજ તેઓ અન્ય રમત ગમતને ત્યજી શાસ્ત્રના અભ્યાસમાજ મગ્ન રહેતા.

લગભગ ૧૫૪૦ સુધીમા તો તેઓએ મોટી મોટી સભાઓમા જઈ શાસ્ત્રાર્થ કરવા શરૂ કર્યા અને થોડાજ સમયમા અત્યત પ્રસિદ્ધિ પ્રાપ્ત કરી તેઓ એટલા બધા પ્રસિદ્ધ થયા કે મોટા મોટા રાજ્યોમા તેઓનુ આદર સન્માન થવા લાગ્યુ.

જ્યારે તેમના પિતા હરિશરણુ થયા. ત્યારે તેઓએ પિતાનુ સુપ્રસિદ્ધ વ્યાસાસન સભાળ્યુ અને ત્યારથી તેઓ કથા કહેવા લાગ્યા. તેઓની કથા કહેવાની શૈલી એટલી સુદર હતી કે અનેક ગામોના લોકો દૂર દૂરથી સાભળવા આવતા અને મુગ્ધ થતા જેથી તેમનો પૂર્ણ યશ સર્વત્ર પ્રસરી ગયો આથી તેમને આજીવિકા ઘર બેઠે આવતી વળી તેઓને એક નિયમ એવો હતો કે અધિક માસમાં

પૂર્ણ ભક્તિથી કેવળ દુગ્ધપાન કરીનેજ શ્રીમદ્ભાગવતનુ પારાયણ કરતા. આ પ્રકારે કેટલાક વર્ષો તેઓએ વ્યતીત કર્યા.

સંવત ૧૫૫૨ લગભગ શ્રીઆચાર્યજી કન્નોજ પધાર્યા તે અરસામા પદ્મનાભદાસ શ્રીઆચાર્યજીના દિગ્વિજયનો યશ સાંભળી દામોદરદાસને ત્યા દર્શનાર્થ ગયા. ત્યા પદ્મનાભદાસે શ્રીઆચાર્યજીના શ્રીમુખથી શ્રીમદ્ભાગવતના કેટલાએક પ્રસગો શ્રવણ કર્યા. તરતજ તેમને શ્રીઆચાર્યજીના સ્વરૂપનુ જ્ઞાન થયુ, અને તેઓ સહકુટુબ સેવક થયા (પછીનો બધો પ્રસગ વાર્તામા જુઓ)

પછી શ્રીઆચાર્યજી સાથે તેઓ વ્રજમા આવ્યા ત્યા સ ૧૫૫૬ ના ફાગણુ સુદ ૭ ના દિવસે કર્ણાવલમા શ્રીમથુરેશજીને પધરાવી પાછા કન્નોજ આવ્યા ત્યા માહાત્મ્યજ્ઞાનપૂર્વક સેવા કરવા લાગ્યા. તે વખતે તેમને શ્રીઠાકુરજી સાનુભાવ થયા તેમની કવિત્વશક્તિ પાછ્લથી આવિર્ભાવ પામી તેમણે અનેક પદો શ્રીઆચાર્યજી અને શ્રીઠાકુરજીના કર્યા છે

તેમના રચેલા ૪૦ પદો વિદ્વાનોના અભિમાનને પૂર્ણતયા ચૂર્ણ કરે એવા છે ભગવત્કૃપા વિના સમજમા આવે તેમ નથીજ. તે પદોદ્વારા સારી રીતે સમજી શકાય છે કે યદિ શ્રીઆચાર્યજીનું નિગૂઢ ભાવાત્મક સ્વરૂપ દામોદરદાસ અને પ્રભુદાસથી અતિરિકત કોઈએ પૂર્ણતયા જાણ્યુ હોય તો એક પદ્મનાભદાસે જ અને "निगूढहृदयोनन्यभक्तेषु ज्ञापिताशय ।" આ શ્રીઆચાર્યજીનુ નામ પણ અહિંજ (આ વાર્તામા) વિશેષતયા સાર્થક દેખાય છે.

પદ્મનાભદાસજીની ભૂતલસ્થિતિ તેમના આ પદથી ચોક્કસ થઈ શકે છે—

मधुर व्रजदेश वश मधुर कीनो ।

मधुर गोकुल गाम मधुर वल्लभनाम मधुर विट्ठल भजन दान दीनो ॥

मधुर गिरिधर आदि सप्ततनु वेणुनाद सप्त रंध्रन मधुररूप लीनो ।

मधुर फलफलित अति ललित **पद्मनाभप्रभु** मधुर अलि गावत सरस रंग भीनो ॥ (બીજુ પણ સાત બાલકોના નામનુ એક પદ છે) એથી સ્પષ્ટ છે કે સાતે બાલકોના પ્રાકટ્ય સુધી પદ્મનાભદાસ વિદ્યમાન હતા અને સાતમા બાલક શ્રીઘનશ્યામજીનુ પ્રાકટ્ય ૧૬૨૭મા છે (सह कृष्ण तेरस रविज रिक्ष शत कला श्रीविट्ठल भूप के (મૂલ પુરુષ) એટલે પદ્મનાભદાસની સ્થિતિ ૧૬૩૦ સુધી ચોક્કસ છેજ એ નિર્વિવાદ સિદ્ધ થાય છે પદ્મનાભદાસનો કાવ્યરચનાકાલ લગભગ સંવત ૧૬૦૦ નો અનુમાન થઈ શકે છે.

सो पद्मनामदास चंपकलता सखि है ॥ श्रीस्वामिनीजीकी ॥

श्रीहरिरायजी कृत आधिदैविक स्वरूप (जन्म ३) प्र० १ पें भावप्रकाश ओर श्रीमथुरेशजीके प्रागट्यको प्रकार

जब पद्मनाभदासने श्रीआचार्यजीसों विनती करी जो हम ब्राह्मण हे ॥ भिक्षावृत्ति करेंगे ॥ यह टेक देखि श्रीआचार्यजी बहोत प्रसन्न भए ॥ (ओर कह्यो) जो वैष्णवको टेक हि वडो धर्म हे ॥

पाछें पद्मनाभदासके सगरे कुटुंबको (जब) अंगीकार कीए ॥ तब पद्मनाभदासने कही महाराज हमकों कहा कर्तव्य हे? ॥

तब श्रीआचार्यजी कहे भगवद्सेवा करो ॥ तब पद्मनाभदासने कही ॥ महाराज मेंने तो पुराण महाभारत आदि शास्त्र बहोत देखे हें ॥ सो मोकों श्रीठाकुरजीके स्वरूपमें विश्वास आवनो कठिन हे ॥ जो स्वरूपको माहात्म्य प्रगट होतही देखूं तब मेरो विश्वास दृढ होइ ॥ काहेतें विश्वासही फलरूप हे ॥ (विश्वासः फलदायक) तब श्रीआचार्यजी कहें

-हमारे संग व्रज चलो ॥ तुमकों (माहात्म्य) दिखावेंगे ॥ तब पद्मनाभदास व्रजकू चले ॥ सो महावन के पास रमनस्थल हे ॥ तहां श्रीजमुनाजी के किनारे (सामने पार कर्णावलमें) श्रीआचार्यजी बिराजे हते ॥ प्रात काल समय हे ॥ ओर श्रीजमुनाजीको कराडो ट्रूट्यो ॥ तामेंते एक भगवत्स्वरूप जेसें ताडको वृक्ष (होय) इतने बडे, श्रीआचार्यजी के आगें आइ कहें ॥ मेरो सेवा करो* तब श्रीआचार्यजो कहे ॥ महाराज या कालमें वैष्णवकी सामर्थ्य नाही ॥ जो आपुकी सेवा श्रृंगार करे ॥ सेवा कराइवे को मनोरथ होइ तो भक्तनसों पधराए जाय (एसे) गोदसें वेठो ॥ तब सेवा होई ॥ तब छोटो स्वरूप करि श्रीआचार्यजी के चिबुकसों मस्तक ठाकुरजो को लग्यो ॥ इतने बडे भए ॥ सो स्वरूप श्रीयमुनाजो गिरिराज सखा सखी गांऊ कुज चोरासी कोस सगरो स्वरूपात्मक चिह्न सहित हे ॥ तातें श्रीआ-चार्यजीने श्रीमथुरानाथजी नाम करे ॥ (ओर) पद्मनाभदासकों कहे ॥ क्यों तेरो मनोरथ भयो ? तब पद्मनाभदास प्रेममें विह्वल होइ कहें ॥ महाराज आपु सरिखे मेरे धनी हो ॥ आपकी कृपातें कहा न होई ? ॥

---

* શ્રીમથુરાનાથજીનું પ્રાકટ્ય સં ૧૫૫૬ ફાગણ સુદ ૭નુ છે. આથી એ પણ અનુમાન સ્પષ્ટ થાય છે કે શ્રીઆચાર્યજી સંવત્ ૧૫૫૦ થી ૧૫૫૫ ની વચ્ચે કનોજ પધારેલા હોવા જોઈએ. અને પદ્મનાભદાસજી દામોદરદાસને ત્યા શરણે આવેલા છે તેથી દામોદર-દાસને શરણે લઈ આપ દામોદરદાસને ત્યા થોડા દિવસ બિરાજ્યા અને માર્ગની સેવા પરિપાટી આદિ બતાવી તેજ સમયમા ભગવત્કથા સાભળી પદ્મનાભદાસ પણ શરણે આવેલા છે

तब श्रीआचार्यजी कहे **"यथा लाभ संतोष"**× करि भावपूर्वक सेवा करियो ॥ तब आज्ञा मांगी श्रीमथुरानाथजी कों कन्नोज में अपने घर पधराइ लाए ॥ प्रीतिपूर्वक सेवा करन लागे ॥ (पहले) भिक्षावृत्ति करते ॥ तब पद्मनाभदास के मनमें आई जो में वैष्णव कहाईके भीख मांगो ? ॥ श्रीआचार्यजी यथालाभ संतोष सों कहे हें ॥ ओर उत्तम पक्ष यही हे ॥ "अव्यावृत्तो भजेत् कृष्णं पूजया श्रवणादिभिः" ॥२॥ या प्रकार अव्यावृत्तको नेंम ले सेवा मन लगाईके करन लागे ॥

॥ इति मथुरेशप्राकट्य प्रकार ॥

—: समस्त लीलाप्रकरण :—

पद्मनाभदास चंपकलता सखी को प्राकट्य हे ।

તેમના ધ્યાનનુ કોઠક આ પ્રમાણે છે—

પિતાનુ નામ	માતાનુ નામ	વર્ણ=રંગ	ચાલ વસ્ત્ર	ગુણ	ગાદ્ય	રાગ
ચંદ્રભાનુ	ચંદ્રકલા	કૃષ્ણ વર્ણ શ્વેત ઝાઈ	હર્યો	કલાનિપુણ	રવાવ	કાન્હરા

ચંપકલતાજીને ત્યાં સત્તર લાખ ૧૭૦૦૦૦૦ ગાય છે. શ્રીચંદ્રાવલીજીના ભાવને ભજે છે અને પરસ્પર સહવાસી છે. તેથીજ અહીં

× શ્રીઆચાર્યજીની આજ્ઞા "યથાલાભ સંતોષ"ની નિબંધમા પણ છે. અને તેને અનુસરીને શ્રીહારરાયજી પણ આ પ્રમાણે આજ્ઞા કરે છે

"वैराग्यं परितोषं च लीलाभावाय भावयेत्" ॥ ६४३ ॥

(स्व० मा० श० स० से० नि०)—

"श्रीकृष्णं पूजयेद्भक्त्या यथालब्धोपचारकैः" (निबंध)

પણ શ્રીગુસાંઈજીના પ્રાકટ્યના સહાયભૂત પદ્મનાભદાસ થયા અને શ્રીગુસાંઈજીના સ્વરૂપનો (વેણુસ્વરૂપનો) અનુભવ પણ છે. તે ૪૦ પદમાં વર્ણવ્યો છે

वार्ता प्रसंग २

*एक समे श्रीआचार्यजी प्रयाग में हते ॥ तहां पद्मनाभदास पास हें ॥ तब रात्र प्रहर एक गई हती ॥ तब पद्मनाभदास सों श्रीआचार्यजीनें कह्यो ॥ जो श्रीअक्काजी पार हें ॥ सो पार तें पधराय लाओ ॥ सो इतनो सुनि कें उठि चले ॥ तव पांच सात वैष्णव उहां सोये हते ॥ सो कहन लागे ॥ जो ब्राह्मण बावरो भयो हे ॥ या समें कहां जायगो ? ॥ नाव सब बंधी हे ॥ घटवारे सब घर गए हें ॥ तातें या बिरियां जायवेकी नाहीं ॥ परि याको (पद्मनाभदास को) श्रीआचार्यजी महाप्रभून की आज्ञा को विश्वास हे ॥ जो यह बात अवश्य होईगी ॥ सो घाट उपर आये ॥ तब इत उत देखन लागे ॥ इतनेमें ही अकस्मात् एक लरिका एक डोंगी लेके आयो ॥ तब वाने पद्मनाभदास सों पूछी जो तु पार जाइगो ? ॥ तब पद्मनाभदासने कह्यो जो हां हां जाउंगो ॥ सो उन पार उतार दीनो ॥ पाछें फेरि पूछयो जो तू फेरि आवेगो ? ॥ तब पद्मनाभदास ने कह्यो जो घडी दो में आऊंगो ॥ तब उन लरिकाने कह्यो जो डोंगी राखत हों, वेग आईयो ॥ पाछें अडेल

---

* સંવત ૧૫૭૧ ના વ્રજ ચૈત્ર વદ ૯ ની રાત્રે

में आइके श्रीअक्काजी को पधराइ ल्याए* ॥ वाही डोंगी में बेठारि पार उतरे ॥ तव पाछें फेरि देखे तो डोंगी नांही ॥ ओर लरिका हू नांही ॥ पाछे श्रीअक्काजी को पधराय के लाये ॥ तव श्रीआचार्यजी पद्मनाभदास को आज्ञा दीनी ॥ जो जाउ सोइ रहो ॥ तव पद्मनाभदास जहां वैष्णव सब जाइ के सोए हते ॥ तहां आए ॥ तव वैष्णव पूछन लागे ॥ जो तूम कहा करि आए ? ॥

तव पद्मनाभदास ने कह्यो जो एसे श्रीअक्काजी को पधराय लायो हूं ॥ तव सव वैष्णव नें कह्यो जो तुमने श्रीठाकुरजी को श्रम वहुत करायो ॥ पाछें उन वैष्णवननें (जव) श्री आचार्यजी सों कह्यो जो महाराज पद्मनाभदास ने श्रीठाकुरजी को श्रम वहुत करवायो ॥ तव श्रीआचार्यजीने कह्यो ॥ (जो) यह जो कछू भयो हे ॥ सो मेरी इच्छा सों भयो हे ॥ तातें तुम इन पद्मनाभदास सों कछु मति कहो ॥

यह वार्तामें यह सिद्धांत भयो जो गुरुके कार्यार्थ प्रभुकों कष्ट (श्रम) करावे तो वैष्णवकों बाधक नांही ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

गुरुके प्रसन्न भए सब कार्य सिद्ध होइ ॥+ (दूसरो अभिप्राय) ओर उह रात्रि श्रीगुसांईजी के प्रागट्यके गर्भ स्थितिको मुहूरत हतो ॥ तातें श्रीआचार्यजी आज्ञा कीए ॥ श्रीठाकुरजी डोंगी लाए ॥ तातें यह

---

* શ્રીઆચાર્યજી અને શ્રીગુસાંઈજીના સમયમાં પડદાની પ્રથા નહિં હતી. પડદાની પ્રથા સાત બાલકોના સમયમાં શ્રીનાથજીની

जताए जो श्रीगुसांईजीके लिए सगरो कार्य.करें यामें कहा कहनों ! ॥

આજ્ઞાથી ચાલુ થઇ છે. વિશેષ તે સંબંધી ઇતિહાસ પ્રસંગોપાત આગલ ઉપર લખીશુ

+સરખાવો શ્રીહરિરાયજીના આ વાક્યો—

यथाकथञ्चित्स्वस्वामिसन्तोषोत्पादन हितम् ।
तस्मिंस्तुष्टे फल सं सिद्धमेव न सशय' ॥२०॥ (स्व०मा०म०नि०)

વિશેષ ગુરુના સ્વરૂપજ્ઞાનને માટે શ્રીહરિરાયજીએ "गुरुदेवाष्टक" રચ્યુ છે તે વાંચો ગુરુની અપેક્ષિતા અને મુખ્યતા ક્રિશ્ચીયન, મોહમેદન, બૌદ્ધ, જૈન, શાકર આદિ ધર્મોમા પણ ખૂબજ કહી છે વ્યવહારથી પણ મનુષ્ય માત્ર જન્મે ત્યારથી મરે ત્યા સુધી ગુરુની (કાઇપણરૂપે) અપેક્ષા છેજ ગુરુ વિના કોઈ પણ પ્રકારનુ જ્ઞાન પ્રાપ્ત થતુ નથી તેમજ દરેક કાર્યમા (લોક અને વેદમા) ગુરુની અપેક્ષા છેજ.

માટેજ દરેક ધર્મમા ગુરુને ઇશ્વરથી પણ અધિક માનવામા આવ્યા છે (અન્ય માર્ગ અને આ માર્ગના ગુરૂમા શો તફાવત છે તે જાણવા માટે નીચે વાચો)

गुरु के प्रसन्न भए सब कार्य सिद्ध होई ॥

આ શ્રીહરિરાયજીના મતને ભાવનાવાળા શ્રીદ્વારકેશજી પણ અનુસરે છે તે આ પ્રમાણે—

या भावना तव सिद्ध होइ जब गुरु प्रसन्न होय। तातें गुरु को प्रसन्न राखिये। गुरु हे सो हृदयांधकार के निवर्तक हे। 'गुशब्दस्त्वंधकारे स्यात् रुशब्दस्तन्निवर्तक । अधकारनिवृत्तत्त्वाद्गुरुरित्यभिधीयते' इति, हरि जब अप्रसन्न होइ तब गुरु रक्षा करे। जब गुरु अप्रसन्न होइ तब कोउ रक्षक नहिं। यातें तनुजा वित्तजा सेवा करिकें गुरुको प्रसन्न करिये। 'हरौ रुष्टे गुरु स्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गुरुमेव प्रसादयेत्'। तहां मुख्य गुरु तो श्रीआचार्यजी तथा श्रीगुसांईजी। ता पीछे इनको कुल गुरु हे। श्रीकृष्णज्ञानद, या पद करिके

यामें श्रीगुसांईजीके स्वरूपकी श्रीठाकुरजीतें अधिकता दिखाए ॥ (तीसरो

श्रीमहाप्रभुजी गुरु हे। ओर श्रीगुसांइजी में (श्रीआचार्यजीने) शेषमाहात्म्य तथा अशेष माहात्म्य यह दोउ माहात्म्य को स्थापित किये हें। या तें गुरु हे। 'श्रीविट्ठलेशे स्वाखिलमाहात्म्यस्थापकाय नम.'। ओर कुलमें तो 'अस्मत्कुलं निष्कलक श्रीकृष्णेनात्मसात्कृतं'। या वाक्य तें कुल हें सो गुरु हे। यथा देहे तथा देवे, यथा देवे तथा गुरौ'। इन्द्रियव्रत करिकें देह पोषन करिये। तो प्रान पोषन सेवा होइ। जेसें प्राणसेवा करनी तेसें देव सेवा करनी। प्राण-सेवा करे तो इन्द्रिय देहभावको प्राप्त होइ। 'आसन्यस्य हरेर्वापि सेवया देवभावत'। आसन्य सो प्राण। हरिसेवा करे तो व्यापि वैकुठकी प्राप्ति तब होइ जब गुरु सेवा करे। जेसी हरि सेवा तेसी गुरु सेवा। 'यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्था. प्रकाशन्ते महात्मन।'

देहसेवा तथा देवसेवा, गुरुसेवा, यह तीनों सेवा नित्य करनी ताको प्रकार। तहां देहसेवा तो याको जो पदार्थ अपेक्षित हे सो सिद्ध करत हे। तेसे देवसेवा जो पदार्थ अपेक्षित हे सोउ सिद्ध करत हे। दोइ सेवा तो भई। गुरुसेवा तो शेष रही। यह सेवा होइ तो पहेली दोउ सेवा सिद्ध होइ। (भावभावना)

પુષ્ટિમાર્ગીય ગુરુની શ્રેષ્ઠતા —

श्रीमद्वल्लभाचार्यजी, श्रीगुसांईजी साक्षात् ईश्वर पूर्ण पुरुषोत्तम इनकी शरण गये। ओर मारग में गुरु जीव हे, सेवा ईश्वरकी। या पुष्टिमारग में गुरु ही पूर्णपुरुषोत्तम, सेवाहू पूर्णपुरुषोत्तम की। सेवोपयोगी पदार्थ हू निर्दोष हे।

(श्रीद्वारकेशजी भावनावारे)

જે લોકો શ્રી આચાર્યજીએ નિબંધમાં કહેલાં લક્ષણો આજના ગોસ્વામી બાલકોમાં નથી એવા પ્રકારનો આક્ષેપ કરી અજ્ઞાની જનોને પુષ્ટિમાર્ગીય દીક્ષાથી રહિત કરી ઉંધે રસ્તે દોરે છે તે લોકોને શ્રીહરિરાયજીનાં આ વચનો સમજવાં જોઈએ·—

अभिप्राय) ओर पद्मनाभदासकों पूरन विश्वास दिखाए ॥ जो श्रीआचार्यजीके बचन खाली कबहूं न जाइ ॥ सर्वथा कार्य सिद्ध होयगो ॥

॥ इति प्रसंग २ समाप्त ॥

वार्ता प्रसंग ३

बहुरि एक समें श्रीआचार्यजी महाप्रभू श्रीगोकुल तें अडेल को जात हते ॥ तब एक व्योपारी क्षत्री कछुक वस्तु लेके साथ में चल्यो सो कन्नोज के उरे रह्यो ॥ श्रीआचार्यजो तो कन्नोज बीच पधारे ॥ व्योपारी पाछे रह्यो सो ताके ऊपर चोर परे ॥ वस्तु सब लुटि लीनी* ॥ श्रीआ-

---

अथाधुनिकतीर्थानामतथाभूततोऽपिहि ॥ पू० ॥
उपदेशस्तथाभूतगुरोरिव फलिष्यति ।
यदि दु सङ्गदोषेण नान्यथा चेद् भवेन्मति ॥ ५१ ॥
(स्व० मा० श० स० से० नि०)

ભાવાર્થ —હવે જો આધુનિક તીર્થરૂપ ગુરુઓ ઉપર જણાવેલા ગુરુ જેવા નથી, તો પણ તેઓ જે ઉપદેશ આપે છે, તે તો પહેલા વર્ણવેલા સદ્‌ગુરુએ જ કહેલો ઉપદેશ આપે છે, માટે હાલના ગુરુઓ તેવા ન હોવા છતા પણ તેમની પાસેથી જો ઉપદેશ લેવામા આવે તો તે ઉપદેશ, જો દુસંગરૂપી દોષથી બુદ્ધિ ભ્રમિત થઇ નહિ હોય તો, પહેલા બતાવેલા મુખ્ય સદ્‌ગુરૂના ઉપદેશની પેઠે જ ફળશે આજ મત લેખવાળા શ્રીપુરુષોત્તમજીનો છે તેમજ સમગ્ર ગોસ્વામીબાલકોનો છે કેટલાએક બાલકોના મુખારવિન્દથી સાભળ્યુ છે કે **“અમે જીવને શરણે લઇ શ્રીમહાપ્રભુજીને સોંપીએ છીએ”**

*શ્રીઆચાર્યજીના ચરણારવિંદ જે છોડે છે તે આ લોક અને પરલોક બન્નેમા વાસ્તવિક લુટાય છે જ, તે આ દૃષ્ટાતથી સિદ્ધ થાય છે.

चार्यजी आप रसोई करि के श्रीठाकुरजी को भोग समर्प्यो इतनेमेंही पाछेंते व्योपारी रोवत पीटत आयो तब पूछी जो श्रीआचार्यजी कहा करत हें ? तब पद्मनाभदास नें कह्यो जो भोजन करत होइंगे ॥ तब व्योपारी ने कह्यो जो हमारो माल सगरो लुटि गयो हे ॥ ओर श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप भोजन करत हें ॥ तब पद्मनाभदास ने मनमें विचार्यो ॥ जो यह वात श्रीआचार्यजी सुनेंगे तो भोजन न करेंगे ॥ तातें आप सुने नहीं (एसें करनो)॥

तब पद्मनाभदास वा व्योपारी की बांह पकरि के बाहिर ले आये ॥ तब पूछि जो साँच कहे ॥ तेरो माल कितनो गयो हे ? तब उन व्योपारी नें बतायो ॥ तब वा व्योपारीकी बांह पकरि के पद्मनाभदास एक साह की दूकान पें ले गये ॥ ता साहनें पद्मनाभदास की वहुत आगतासागता करी ॥ पाछे वा साह ने कह्यो जो आग्या करो केसे पधारे हो ॥ तब पद्मनाभदास नें साहसों कह्यो ॥ जो या व्योपारी को इतनो द्रव्य देनो चाहिये ॥ या द्रव्य को खतपत्र व्याज हम लिखि देइंगे ॥ तब वा साहनें कही जो पद्मनाभदासजी तुम कों जितनो द्रव्य चहिए तितनो द्रव्य लेउ ॥ खतपत्र की कहा वात हे ? ॥ तब पद्मनाभदासने कह्यो ॥ जो पहिले तो खतपत्र लिखूंगो ॥ ओर पाछें द्रव्य लेऊंगो विना खतपत्र लिखे तो में लेउंगो नांही ॥ तब साह ने कही ॥ जो तुमारी इच्छा ॥ पाछें पद्मनाभदास ने खतपत्र व्याज लिखि अपनो धरम

बुरी करी ॥ ताको कारन यह जो रिनहत्या माथें लीनी ॥ सो बुरी करी-सरीर को कहा भरोसो हे ? ॥ देह छूटि जाइ तो रिन माथे रहे ॥

तब पद्मनाभदासने कही ॥ वा व्योपारिको रुदन सुन घरी दोय आपु भोजन अवेरो करते ॥ मेरो जन्म वृथा होइ जातो ॥ (ताको अभिप्राय) सेवकके आगें स्वामीको कछू श्रम होइ ॥ सेवक श्रम दूरि न करें ॥ तो धर्म जाइ ॥ पाछें धिक्कार वह सेवककों जीवे सो वृथा हे ॥ ओर रिणकी केतिक बात हे ? ॥ अब चुकाई देऊंगो ॥ ताको कारन यह जो कालकी कहा सामर्थ्य हे॥ आपुकी कृपातें बाधक न होइगो ॥× ओर धरम गहने धर्यो तामें एक भाव यह हे ॥ (जो) अपनो वैदिक ब्राह्मणको धर्म गहने धर्यो होइगो वह गौन भाव हे ॥ काहेतें श्रीआचा-र्यजीकी सरन आए॥ तब (सब) समर्पन कीए॥ जो वैदिक धर्म न्यारो रहे ॥ तो पुन्यको फल स्वर्ग भोगनो परे ॥ तातें इनने तो सर्व समर्पन करि एक पुष्टि भक्तरूप धर्म राखे हे ॥ ताहितें श्रीआचार्यजी हू पूछ्यो (जो) एसो धर्म साहके इहां गहने धर्यो ? ॥ परंतु पद्मनाभदासकों श्रीआचार्यजीको स्वरूप हृदयारुढ हतो ॥ **श्रीआचार्यजीके सुखके लिए ॥ धर्महूकी अपेक्षा राखें नाही** ॥+ गहने धरे॥ ओर व्योपारिको द्रव्य देके वहोत मनमें प्रसन्न भए ॥ भली भई (व्योपारी) इहां आयो ॥

× "तेने काल कर्म नव बाधेरे यम ते शिर धनुष्य न साधेरे एवो मारग श्रीवल्लभवरनोरे, ज्हा नहि प्रवेश विधि हरनोरे," (वल्लभाख्यान)

+ पुष्टि धर्मनाये साररूप (जुओ पद्मनाभदासनी वार्तानुं स्वरूप अने तेनुं रहस्य)

जो चल्यो जातो तो जहां तहां देसमें निंदा करतो ॥ (एसी उत्तम दृष्टि पुष्टि भक्तनकूँ चाहिए) जो में श्रीआचार्यजीकी संग लुटि गयो ॥ काहेतें लौकिक राजाके संग लुटयो न जाइ तो एसे ईश्वरके संग लुटि गयो ? ॥ सो पद्मनाभदास कहे ॥ मेरे धर्मकी परीक्षा अर्थ लुटयो गयो ॥ सो व्योपारीको द्रव्य दीयो ॥ अब जहां जाइगो तहां श्रीआचार्यजीकी बडाई करेगो ॥ मोकों नफा सहित द्रव्य दीए ॥ या भावसो पद्मनाभदासकी श्रीआचार्यजीमें अनिर्वचनीय प्रीति हे ॥ × × ×

ओर राजा जादा द्रव्य देन लाग्यो सो आप (पद्मनाभदास) यातें न लीए ॥ जो इनको अव्यावृतको नेम हे ॥ वृत्तिके अर्थ कथा नांही कहनी ॥ यह संकल्प हे ॥ यह सगरो काम श्रीआचार्यजीके सुखके अर्थ किए॥ सो साहू को रुपैया दिवाइ धर्म को कागद लिखे हते सो ले आए ॥ पाछें घर आय सेवा करन लागे ॥

॥ इति प्रसंग ३ समाप्त ॥

નોધઃ--દાસ અને સેવકમા નીચે પ્રમાણેનો ભેદ જાણવો.—

દાસ હોય તે સ્વામીની આજ્ઞાની રાહ જોતો નથી તેમજ સ્વામીની આજ્ઞાને પૂર્ણપણે જાણીને જ તેનુ ઉચિત પાલન કરે છે. સ્વામીને સુખ કયા પ્રકારે થાય ? તેજ વિચારમાં દાસ નિમગ્ન સદૈવ હોય છે. અને તે ગુપ્તપણે પરોક્ષરૂપે સદૈવ સ્વામીના સુખના કાર્યમાં તત્પર રહે છે સ્વામીને પોતાના કાર્યની જાણ ન થાય તેની બહૂ જ સાવધાની રાખે છે. આ દરેક વસ્તુ પદ્મનાભદાસે આ પ્રસંગમા કરી દેખાડી છે. સેવક હોય છે તે સ્વામીની આજ્ઞાની રાહ જુએ છે. આજ્ઞાને અનુસાર (ઉચિત અથવા અનુચિતનો વિચાર કર્યા વિના) ધર્મ સમજી

ओर पद्मनाभदास के घर बेटी कुमारी हती ॥ ताके निमित्त एक वर श्रीआचार्यजी को सेवक चहियत हतो ॥ सो वैष्णव सों पूछन लागे ॥ तब वैष्णव नें कह्यो ॥ जो एक वर श्रीआचार्यजी को सेवक हे ॥ परि सनोढिया ब्राह्मण हे ॥ सो पद्मनाभदास को सेवक सुनत ही लौकिक व्यवहार की तो सुधि नाहीं आई ॥ वैष्णव नें कह्यो जो भलो वैष्णव हें ॥ याको कन्या दीजिये ॥ तब पद्मनाभदास ने कह्यो जो भलो ॥ तब पद्मनाभदास ने वा वैष्णव को कुंकुम मगाई तिलक कीयो ओर कह्यो में बेटी तुमकों दे चुक्यो ॥ लगन को दिन तुम पूछो ता दिन ब्याह करूं ॥ विवाह सही करि प्रसन्न होइ अपने घर आए ॥ तब बडी बेटी एक तुलसां हती सो ब्याह होत ही विधवा भई ॥ लौकिक पति को मुख नांहि देख्यो ॥ सो श्रीमथुरानाथजी की सेवा में तत्पर हती तासों कह्यो जो अपनी बेटी को विवाह अमुके वैष्णव सो सही करि आयो हूं ॥ तब तुलसांने कह्यो जो वह तो सनोढिया ब्राह्मण हे ॥ हम कन्नोजिया ब्राह्मण हे ॥ सो

वार्ता प्रसंग ४

કાર્ય કરે જાય છે એટલે સ્વામીના હાર્દને જાણતો નથી સ્વામીનુ સુખ શેમા છે તે પણ વિચાર કરતો નથી દાસ ધર્મનું સ્વરૂપ વ્રજભક્તોએ (રાસ સમયે), શ્રીઆચાર્યચરણે (બન્ને ભગવદ્ આજ્ઞા સમયે) અને દામોદર પદ્મનાભ તથા રજો આદિ પરમ મહાનુભાવ ભગવદીયોએ કૃતીદ્વારા જીવોને સમજાવ્યુ છે એ દાસ્ય ધર્મ એજ પુષ્ટિમાર્ગ અને તે ફલાત્મક ધર્મ હોઇ ભગવત્સ્વરૂપ જ છે (મર્યાદા દાસ્યધર્મ જે હનુમાનજીમાં હતો તે નહિ.)

एसे केसे होइ ? ॥ तब पद्मनाभदास ने कह्यो जो अब वो भई सो भई ॥ तब तुलसां ने कही जो सगाई फेरो ॥ तब पद्मनाभदास ने कही ॥ जो छूरी लाओ ॥ अंगूठा काटो ॥ जा अंगूठा करि तिलक कीयो हे ॥ तव तुलसां ने कह्यो ॥ जो अंगूठा केसे काटिए ॥ तब पद्मनाभदास ने कही तो सगाई केसे फेरिए ?॥ अंगूठा कटे तो सगाई फिरे ॥ पाछें पद्मनाभदास ने विवाह करि दीनो ॥ जाति के सब झख मारि रहे ॥ वैष्णव के कहेको एसो विश्वास ॥ तातें सगाई न फेरी ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

जब तुलसांने कह्यो ॥ अंगूठा केसे काट्यो जाय ? ॥ तब पद्मनाभदासने कह्यो ॥ श्रीआचार्यजी के सेवक पर तन मन धन न्योछावरि करिए+ ॥ सो सगाई केसे फेरि जाइ ? ॥

+ આ શ્રીહરિરાયજીની ગદ્ય વાણીને શ્રીહરિરાયજીની પદ્ય વાણી સાથે રાખવો.—

वारू तनमन वल्लभियन पर ।
मेरे तन को करूं विछोना शीश धरूं इनके चरनन तर ॥

× × ×

છેલ્લી લીટી

दास रसिक वलैया लेले वल्लभीयनकी चरन रज अनुसर ॥

ક્યાં આ સર્વોત્તમ વૈષ્ણવ પ્રત્યેનો શુદ્ધ પ્રેમ ? અને ક્યાં આજકાલના આક્ષેપ કર્તાઓનાં મલિન હૃદય ?

(આ મારગમાં તો શું ? પરંતુ સર્વત્ર જગતમાં વ્યવહારથી લઈને છેક ભક્તિ સુધીની સિદ્ધી સુધી ભક્તોનો મહિમા પ્રત્યક્ષ કે અપ્રત્યક્ષ રૂપે સર્વને માનવો પડે છે જ.)

સરખાવો પરમાનંદદાસનું (અષ્ટસખાનુ) પદ

आये मेरे नंदनंदन के प्यारे ।

(અષ્ટસખા) સૂરદાસજીના પદ —

गिरिधर जब अपनो करि जाने। ताको मन भक्तन की सेवा भक्त चरनरज सदा लुभाने ॥

(२) प्रभु जन पर प्रसन्न जब होहीं।

तब वैष्णवजन दर्शन पावे पाप रहे नहिं कोई ॥

हरि लीला उर आवे ताके सकल वासना नासे ।

सूरदास निश्चे विचार करि हरि स्वरूप जब भासे ॥

(અષ્ટસખા) કૃષ્ણદાસનુ પદ —

ताहीको शिर नाइये जो श्रीवल्लभसुत पदरज रति होय ।

× × ×

(અષ્ટસખા) છીત સ્વામીનું પદ —

मोहि बल हे दोउ ठोर को ।

एक भरोसो हरिभक्तन को दूजो नंदकिशोर को ॥

× × ×

શ્રીવલ્લભજી મહારાજનુ પદ.—

आये मेरे श्रीवल्लभ के दास ।

ताकी सरवर नहिं त्रिभुवन में सुनो वेद इतिहास ॥ १ ॥

× × ×

ताकी महिमा को कवि वरनत सकुचत सरस्वती व्यास ।

तीर्थन को अति तीर्थ करियत पद रज गंध सुवास ॥

ભક્ત કહો સાધુ કહો સંત કહો પરોપકારી કહો કે વૈષ્ણવ કહો તેની મહિમા સર્વ સમ્પ્રદાયોમા સર્વ જગતમા સર્વ ગ્રન્થોમા (બાઇબલમા પણ) પાને પાને પ્રત્યક્ષ કે અપ્રત્યક્ષ રૂપે રહેલી છે. અહીં વિશેષ ન કહેતા આગલ અન્ય પ્રસંગોમાં વર્ણન કરીશુ.

या प्रकार तुलसाकों मारग को अभिप्राय बताए* ॥ ता दिन तें तुलसाको प्रेम वैष्णवमें पद्मनाभदासके संगतें भयो ॥ सो श्रीठाकुरजी तुलसाहूको अनुभव जतावन लागे ॥ पाछें प्रसन्न होई के

---

*૨ સરખાવો શ્રીકાકા વલ્લભજીનું ૧૪ મુ વચનામૃત (તેમાં આપેલો પ્રસંગ)

મારગનુ મૂલ વૈષ્ણુવ જ છે. વૈષ્ણુવની સેવા એ સર્વોપરિ વસ્તુ છે તે વૈષ્ણુવ કોટિમાં વ્રજ ભક્તો, શ્રીઆચાર્યચરણુ (શેષ માહાત્મ્ય સ્વરૂપ), શ્રીગુસાઇજી, સમસ્ત વલ્લભકુલ, દમલા, પદ્મનાભદાસ અને રાજા આશકરણુ જેવાનો સમાવેશ થાય છે. આ ભક્તોનાં સ્વરૂપ पुष्टि प्रवाह मर्यादा ગ્રન્થમા શ્રીઆચાર્યચરણે કહેલા "स्वरूपेणावतारेण" એ શ્લોક અનુસાર જાણુવા તેથી જ શ્રીગુસાઇજીની આજ્ઞાથી સત્ય-ભામાજીએ રાજા આશકરણુને રાજભોગના થારની સામગ્રી લેવડાવી. શ્રીમહાપ્રભુજીએ અડેલમાં કૃષ્ણુચૈતન્યને અનોસરના સમયમા વિના સર્મપેલી સામગ્રી લેવડાવી અને અક્કાજીને આજ્ઞા કરી કે તેમના હૃદયમાં સાક્ષાત્ પ્રભુ બિરાજમાન છે. માટે તેમની આગલ સામગ્રી ધરવામા કાંઈ વાધો નથી (જુએ। પ્રદીપ) તેજ પ્રમાણે શ્રીહરિરા-યજીના સમયમા એક વિરક્ત વૈષ્ણુવ (રાજા આશકરણુના સમાન) ને શ્રીહરિરાયનીની આજ્ઞાથી એક ડોકરીએ વિના સમર્પેલો ખીરનો ડબરો ધર્યો. શ્રીહરિરાયજીએ સર્વ સમક્ષ કહ્યુ કે મારગનો સિદ્ધાત એ ડોકરીએજ જાણ્યો. એ વૈષ્ણુવને સંદેહ થયો ત્યારે સંદેહ નિવા-રણાર્થ તે ડોકરીની પાસે અનોસરના સમયમા તે વૈષ્ણુવને મોકલ્યો. ત્યાં તે વૈષ્ણુવ જુએ છે તો ખીરનો ડબરો લઈ શ્રીઠાકોરજી ડોકરીની છાતી ઉપર ખેલી રહ્યા છે—

શ્રીઆચાર્યજી અને શ્રીગુસાંઈજીનુ, આચાર્ય કોટિ, ભક્ત કોટી અને ઈશ્વર કોટી એમ ત્રણે કોટિમા પ્રાધાન્યત્વ છે. અને ત્રણે કોટિમાં

अपनो चरणोदक क्यों दीए ?॥ भगवदीय अपनी बडाई तो करावत नांही॥ तातें श्रीठाकुरजीको चरनोदक दीयो होयगो ॥ तहां कहत हें ॥ जो पद्मनाभदासनें विचारी जो तुच्छ कामना पुत्रादिककी हे ॥ याके लिए श्रीठाकुरजी को चरनोदक कहा ? श्रीठाकुरजीको श्रम काहेकों कराऊं ? ॥ तातें अपनो चरणोदक दिए॥ परंतु पद्मनाभदास सदा श्रीआचार्यजी के स्वरूप में मगन रहत हें॥ (दिखो पद्मनाभदास कृत ४० पद) सो जल ले श्रीआचार्यजी के भाव तें दिए॥ ओर इनको कछू कामना की बडाई की अपेक्षा नांही है ॥ भगवदीय को आश्रय करे ॥ सो सगरो मनोरथ वाको पूरन होइ ॥ यह पुत्र की कहा बात हे ? ताकों (क्षत्राणीकों) पुत्रकामना हती सो पुत्र दीए ॥ परंतु बाधक नांही॥ जो अपने कीए को अहंकार नांहि ॥ ता समय जो बुद्धि की प्रेरणा भई ॥ सो भगवद् इच्छा तें कार्य करत हैं॥ अपनो कीयो जानत नांहीं हें । श्रीगुसांईजी लिखे हें " बुद्धि प्रेरक कृष्णस्य पादपद्मं प्रसीदतु " जो कार्य होत हे। जेसी ताकी बुद्धि प्रेरक होई करत हे सो कार्य सब कृष्णही को जाननो ॥ जो अपनो ओर को जाने सोई संसार समुद्र में भ्रमत हे ॥ तातें पद्मनाभदास ने अपनो चरणोदक दिए ॥ परंतु यह भाव नांहि जो मेरे चरनोदकसों पुत्र होइगो ॥ भगवदइच्छा तें सब होत हे ॥ यह सिद्धांत दिखाए ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

इति प्र. ५ समाप्त.

પણ અસમર્થ છે તેવીજ રીતે પદ્મનાભદાસે પુત્ર આપ્યો તેમાં જરાય આશ્ચર્ય નજ હોય સેવક સેવ્યના ચિંતવનથી તદ્રૂપતાને પ્રાપ્ત થાય છે. લોકમા કીટ ભ્રમર ન્યાય પ્રત્યક્ષ દ્રષ્ટાંતરૂપ છે

ओर एक समें बडे रामदासजी अपने सेव्य श्रीठाकुरजी कों पद्मनाभदास के घर पधराइ के श्रीनाथजी-

वार्ता प्रसंग ६

के दरसन कों गए ॥ सो श्रीनाथजी की सेवामें श्रीआचार्यजी की आज्ञा तें रहे ओर श्रीनाथजी की सेवा करन लागे ॥ श्रीनाथजी के भीतरिया*भए ॥ तब पद्मनाभदास श्रीठाकुरजी की सेवा करन लागे ॥ सो कितनेक दिन पाछे मुगल की फौज आई ॥ सो तानें गाम लूट्यो+ सो श्रीठाकुरजीकों एक मुगल ले गयो ॥ तब पद्मनाभदास वा मुगलके साथ दिन सातलों रहे ॥ जल पान हू न कर्यो ॥ तब आठमे दिन मुगलसों मुगलानीने कह्यो ॥ जो यह ब्राह्मण जलपान नाहिं करत हे ॥ याको सात दिन भए हें ॥ अन्नजल छोडे ॥ सो जो यह मरेगो तो तेरे माथे हत्या चढेगी× ॥ तातें याको देवता हे ॥ सो वाकों दे ॥ तब मुगल ने श्रीठाकुरजी पद्मनाभदास कों दीए ॥ सो लेके पद्मनाभदास अपने घर आए ॥ ता पाछे आप स्नान करि श्रीठाकुरजी को पंचामृत स्नान करवायो ॥ अंग वस्त्र करि श्रृंगार कर्यो ॥ रसोई करि भोग समर्प्यो ॥ पाछें समयानुसार भोग सराय अनोसर करि पाछें

---

* श्रीमहाप्रभुजीना समयमा मुख्याजीनेज भीतरीया कहीने संबोधता

+ ऐतिहासिक तत्त्व 'लौकिक भाषा' (रहस्य भाषाने उपयोगी होवाथी सूक्ष्मरूपे आपी छे)

× साचु आत्मबल आनु नाम के जेनाथी एक दुष्टात्माना हृदयमा पण सद्‌विचार आव्या अहीं ऐश्वर्य कह्यु छे.

वैष्णवन कों महाप्रसाद लिवायो ॥ पाछें आप महाप्रसाद कियो ॥ ओर जा दिन श्रीठाकुरजी कन्नोज में मुगल के हाथ परे ॥ ता दिन बडे रामदासजी ने हू यह बात जानी ॥ सो ता दिन तें बडे रामदासजी ने हू सात दिनलों भोजन नांहि कियो ॥ परि श्रीनाथजी की सेवा सावधानतासेों करत रहे ॥ यह बात पद्मनाभदासजी ने अपने घर बेठे जानी॥ जो रामदासजी ने हू या बात के उपर बहोत दुःख पायो ॥ यह जानि पद्मनाभदास श्रीनाथजी के दरसन कों तथा रामदासजी के मिलिवे कों श्रीनाथजीद्वार (गिरिराज–जतिपुरा) गये ॥ सो श्रीनाथजी के दरसन कीये ॥ पाछें रामदासजी कों मिले ॥ तब रामदासजी सेों पद्मनाभदासजी नें कह्यो ॥ जो होंतो दुःख पायो सो तो न्याव हे ॥ जो तुम मेरे माथे सेवा पधराय आए ॥ परि तुमने दिन सातलेों प्रसाद न लियो ॥ सो काहेते ? तब रामदासजी ने कह्यो जो तुम कहत हो सो तो सॉंच परि मेंहूं तो बहोत दिनलेों सेवा करी हे ॥ तातें इतनो संबंध तो चाहिए ॥ पाछें कितनेक दिन रहिके पद्मनाभंदास श्रीनाथजी सेों तथा रामदासजी सेों विदा होइके अपने घर कन्नोज आए ॥ पाछें फेरि सेवा करन लागे ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

या वार्तामें यह सिद्धांत दिखाए ॥ जो पुष्टिमार्गीय वैष्णव के ठाकुर अपने घर पधारे ॥ तो भिन्न भाव न राखनो+ ॥ श्रीआचार्यजी के संबंधी जानि माथे पधारे

+संप्रदायनी परिपाटीनु ज्ञान आ प्रसगमा समायेलु छे.

जानि सेवा करनी ॥ ओर रामदासजी के भावमें यह जताए जो अपने सेव्य (सेवाके) ठाकुर कहूं पधराइ निश्चिंत न होइ ॥ उनके दु:खतें दु:खि होई ॥ उनके सुख तें सुख पावे ॥ यह सिद्धांत दिखाए ॥

॥ इति प्रसंग ६ समाप्त ॥

वार्ता प्रसंग ७

बहुरि एक समय पद्मनाभदास ने विचारी जो श्रीठाकुरजी सहित कुटुंब सहित श्रीआचार्यजी के दरसन करिए ॥ श्रीमुख के वचनामृत सुनिए ॥ सो श्रीठाकुरजी सहित कुटुम्ब सहित अडेल में आए ॥ सो कछुक दिन रहे ॥ परि द्रव्य को संकोच वहुत हतो ॥ तातें श्रीठाकुरजी को भोग समर्पे ॥ सो छोला तलि के समर्पे ॥ सो छोला आछी रीति सों वीनि के पहले दिन भिजोइ राखे दूसरे दिन नीकी भांति सो तलि के समर्पे ॥ सो या भांति पातरि में एक मूठि दारि की भावना करते ॥ एक मूठि भात की ॥ एक मूठि खीर की ॥ साकादिक सव को नाम ले न्यारि न्यारि मूठि धरतें ॥ सो श्रीठाकुरजी सगरी सामग्री के भावसों आरोगते ॥ या प्रकार नित्य करें ॥ पाछें एक दिन एक वैष्णव श्रीआचार्यजी सों यह सव प्रकार कहे, जो महाराज पद्मनाभदास श्रीठाकुरजी कों

या भांति छोला समर्पत हे ॥ सो एक दिना श्रीआचार्यजी भोग समर्पवे की विरियां पद्मनाभदास के घर पधारे ॥ सो पद्मनाभदास सों पूछे जो यह ढेरि न्यारि न्यारि क्यों हे ? ॥ तब पद्मनाभदास ने कही यह दारि हे यह भात हे ॥ यह खीर हे ॥ यह कढि हें ॥ यह साकादिक हे ॥ या प्रकार सब ढेरि कों सामग्री वताए ॥ तब श्रीआचार्यजी महाप्रभून को हृदय भरि आयो ॥ ओर जान्यो जो याके द्रव्यको संकोच हे तातें यों करत हे ॥ परंतु द्रव्य को उपाय नांहि करत हे। वडो धैर्य हे ॥ तातें थाके उपर श्रीठाकुरजी बडे प्रसन्न हे ॥ पाछे श्रीआचार्यजी घर पधारे भोजन कीए ॥ ओर श्रीअक्काजी सों कहे ॥ जो पद्मनाभदास के घर द्रव्य को बहोत संकोच हे ॥ सो छोला नित्य श्रीठाकुरजी कों धरत हें ॥ तव श्रीअक्काजी ने संझा समय सगरी सामग्री सिद्ध करि (चुनवीन फटकके) एक वैष्णव के हाथ पठाई ॥ तब तुलसां ने पद्मनाभदास सों कह्यो ॥ जो श्रीआचार्यजी के इहां सों सामग्री आई हे तव पद्मनाभदास ने कह्यो, हम जांने अब हमको काढिवे को उपाइ किए हे ॥ जतन सों धरि राखो ॥ तव तुलसां ने धरि राखी ॥ पाछे दूसरे दिन फेरि सामग्रि सांझ कों श्रीअक्काजी ने पठाई ॥ तव तुलसां ने फेरि पद्मनाभदास सों कही ॥ तब पद्मनाभदास ने कही हमकों वेगि विदा दिए ॥ तातें सवेरे चलेंगे ॥ अब यह धरि राखो ॥ पाछे प्रातःकाल भयो ॥ तव श्रीठाकुरजी

कों वेगि ही राजभोग सों पहोंचि ॥ श्रीमथुरानाथजी सों पूछे जो महाराज आपकों श्रीआचार्यजी के घर पधारिवे की इच्छा होइ ॥ तो उहां नाना प्रकार की सामग्री है ॥ मेरे इहां तो जो समय जेसो प्राप्त होइ ॥ तेसों धरुंगो ॥ तब श्रीमथुरानाथजी ने कही मोकों तेरो कीयो भावत है ॥ तातें जो धरेगो ॥ सो प्रीति तें अरोगूंगो ॥ तब अनोसर कराइ ॥ एक नाव भाडे करि लाए ॥ तुलसां सो कहे ॥ दोउ दिन को सीधो सामग्री है ॥ सो श्रीअक्काजी को दे आव ॥ तब तुलसां सारी सामग्री श्रीआचार्यजी के यहां दे आई ॥

पाछे सगरी वस्तू नाव पर धरि श्रीमथुरानाथजी कों नाव पर पधराई श्रीआचार्यजी के पास विदा होंन आए* ॥ ओर

---

*અહીં સાંપ્રદાયિક પરિપાટીનું જ્ઞાન થાય છે. અને તે આજ પણ પ્રાય ગોસ્વામિ બાલકોમા અવશ્ય જોવામા આવે છે તેમજ કેટલાક મહાનુભાવ વૈષ્ણવોમાં પણ આ પરિપાટી જોવામાં આવે છે, કોઈપણ બાલક અથવા વૈષ્ણવ અન્યત્ર પધારે ત્યારે પોતાના ઠાકોરજી અથવા જે સ્થલે રહેતા હોય ત્યાના મુખ્ય સ્વરૂપો (શ્રીનાથજી આદિ) સ્વગુરુ અથવા કોઈપણ વલ્લભકુલ જે પોતાના ગામમા બિરાજતા હોય તેમનાથી વિદાય થઈ (ભેટ આદિથી સન્મુખ થઈ) પછી પરદેશ જાય છે કાકરોલીના ઘરમા આ રીત હજુ સુધી બહુજ સારી રીતે સચવાઈ રહી છે. જ્યારે કાકરોલીના બાલકો પરદેશ પધારે છે ત્યારે પોતાના સેવ્ય શ્રીદ્વારકાનાથજી ઉપરાત શ્રીનાથદ્વાર પધારી શ્રીનાથજી આદિ સર્વે સ્વરૂપોને સન્મુખ થઈ વિદા થઈ પછી પરદેશ પધારે છે.

दंडवत करि बिनती कीनी जो महाराज आज्ञा होइ तो घर जाय ॥ तब श्रीआचार्यजी पूछे ॥ जो श्रीठाकुरजी कहां हें ? ॥ तब पद्मनाभदास ने कही महाराज नाव पर पधारे हें ॥ तब श्रीआचार्यजी विदा कीये । (ओर) मनमें विचारे ॥ जो ओंचको पद्मनाभदास क्यों गयो ? तब श्रीअक्काजी ने कही दोय दिन सिधा पठायो सो फेरि दे गए ॥ तब श्रीआचार्यजी ने कह्यो जो सीधो पठवायो तातें गयो ॥ नांही तो न जातो ॥ एसे श्रीआचार्यजी ने श्रीमुख तें कह्यो ॥

पाछें पद्मनाभदास घर जाय सेवा करन लागे ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

या वार्ता में यह जताए ॥ जो गुरु द्रव्य श्रीठाकुरजी के द्रव्य तें हू भारी हे ॥ तातें श्रीभागवत में (स्कं ११ अ. १७ श्लोक २८) कहे हें ॥ भिक्षा मांगि के लाई गुरु के आगे धरिए ॥ जो गुरु आज्ञा देई तो खाई ॥ नांहि तो भूख्यो रहि जाइ ॥ परंतु मागे नांहि ॥ जो मागि भिक्षा हू आज्ञा बिना नहि लीनी जाय तो गुरुको (द्रव्य) केसे लियो जाइ ? ॥ तातें श्रीआचार्यजी विवेकधैर्याश्रय में लिखे है ॥ जो "त्रिदु:ख सहनं धैर्य" ॥

जब मुगल ठाकुर ले गयो तब पद्मनाभदास चाहे तो भस्म करि डारें परि पद्मनाभदास (कष्ट) सहे ॥ आप सात दिन भूखे रहे ॥ वासों कछू न कहे ॥ (यह अलौकिक दु:ख कह्यो) यह लौकिक दु:ख जो बेटी परज्ञातकों दिनी ॥ यह ज्ञातमें निंदा सो सहे ॥ खानपानादिक को दु:ख

सो सहे ॥ परंतु धर्म न छोडे ॥ तातें श्रीगोकुलनाथजी श्रीसर्वोत्तमकी टीकामें लिखेहें ॥ कोटिन वैष्णवनमें दूर्लभ पद्मनाभदास सारिखे हें ॥ सो श्रीआचार्यजी के मारगको **श्रीआचार्यजीके स्वरूपको जानत हे** ॥×

॥ इति प्रसंग ७ समाप्त ॥

सो उन पद्मनाभदास की उपर श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप सदा प्रसन्न रहते, तातें इनकी वार्ताको पार नांहि ॥ सो कहां तांई लिखिये ?

॥ वार्ता ४ ॥ (वैष्णव ५)

પ્રસંગ ૭નું પરિશિષ્ટ રહસ્યઃ—

આ પ્રસગ સં. ૧૫૮૩માં બનેલો છે. અને પદ્મનાભદાસને પણ આજ સમયમાં શ્રીઆચાર્યજીના નિગૂઢ સ્વરૂપનું જ્ઞાન પૂર્ણરૂપે થયુ હોય એમ નીચેની પક્તિઓથી જણાય છે.

श्री मुख के वचनामृत सुनिए। અહિં સુધાનું આકર્ષણ છે.

सो या भांति पातरि में एक मुट्ठी दारि की भावना करते।

× + ×

અહિં ભાવની સિદ્ધિ સ્પષ્ટ જણાય છે. કારણ કે તે તે ભાવનાની વસ્તુ તાદશ્ય થતી એમ આ વાકયથી સમજાય છે.—

सो श्रीठाकुरजी सगरी सामग्री के भावसों अरोगते।

જ્યાં સુધી ભાવની પૂર્ણ સિદ્ધિ નથી થતી ત્યાં સુધી ત્રણે પ્રકારના દુ:ખને સહન કરવાની શક્તિ પ્રાપ્ત થતી નથી જે પદ્મનાભદાસમાં પુત્ર આપવા તેમજ ૧૭૦૦૦ રૂપીઆ સહેજે

× શ્રીઆચાર્યજીના સ્વરૂપ (ધર્મી વિપ્રયોગાત્મક)નુ જ્ઞાનથયેલું છે વિશેષ જુઓ પ્ર. ૭નું પરિશિષ્ટ રહસ્ય—

दंडवत करि बिनती कीनी जो महाराज आज्ञा होइ तो घर जाय ॥ तब श्रीआचार्यजी पूछे ॥ जो श्रीठाकुरजी कहां हें ? ॥ तब पद्मनाभदास ने कही महाराज नाव पर पधारे हें ॥ तब श्रीआचार्यजी विदा कीये । (ओर) मनमें बिचारे ॥ जो ओंचको पद्मनाभदास क्यों गयो ? तब श्रीअक्काजी ने कही दोय दिन सिधा पठायो सो फेरि दे गए ॥ तब श्रीआचार्यजी ने कह्यो जो सीधो पठवायो तातें गयो ॥ नांही तो न जातो ॥ एसे श्रीआचार्यजी ने श्रीमुख तें कह्यो ॥

पाछें पद्मनाभदास घर जाय सेवा करन लागे ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

या वार्ता में यह जताए ॥ जो गुरु द्रव्य श्रीठाकुरजी के द्रव्य तें हू भारी हे ॥ तातें श्रीभागवत में (स्कं. ११ अ. १७ श्लोक २८) कहे हें ॥ भिक्षा मांगि के लाई गुरु के आगे धरिए ॥ जो गुरु आज्ञा देई तो खाई ॥ नांहि तो भूख्यो रहि जाइ । परतु मागे नांहि ॥ जो मागि भिक्षा हू आज्ञा बिना नहि लीनी जाय तो गुरुको (द्रव्य) केसे लियो जाइ ? ॥ तातें श्रीआचार्यजी विवेकधैर्याश्रय में लिखे हैं ॥ जो "त्रिदु:ख सहन धैर्य" ॥

जब मुगल ठाकुर ले गयो तब पद्मनाभदास चाहे तो भस्म करि डारें परि पद्मनाभदास (कष्ट) सहे ॥ आप सात दिन भूखे रहे ॥ वासों कछू न कहे ॥ (यह अलौकिक दु:ख कह्यो) यह लौकिक दू:ख जो बेटी परज्ञातकों दिनी ॥ यह ज्ञातमें निंदा सो सहे ॥ खानपानादिक को दु:ख

પ્રકટ કરી (જુઓ પ્રસંગ ૧નુ રહસ્ય) અને તે અસાધારણ લોકવેદ વિરૂદ્ધ કાર્યની સિદ્ધી તેજ આ વાર્તાના યશ સ્વરૂપનુ નિરૂપણ છે. લોક અને વેદમા વિરૂદ્ધાચરણથી અપયશની પ્રાપ્તિ છે. કિંતુ આ સ્વતત્ર ભક્તિમાર્ગમા લોક વેદ વિરૂદ્ધ આચાર હોવા છતા યશ સ્વરૂપ શ્રીકૃષ્ણની સ્થિતિ હોવાથી તે સ્વયં (સ્વતંત્ર ભક્તિ) યશ સ્વરૂપ છે. અને તે આ વાર્તામાં નિરૂપેલી છે માટેજ આ વાર્તા યશ સ્વરૂપ છે.

તુલસાંનો શેષ ભૌતિક ઇતિહાસઃ—

પદ્મનાભદાસનુ લગન સં. ૧૫૩૪ મા એક કન્નોજીયા બ્રાહ્મણની કન્યા સાથે થયુ હતુ પદ્મનાભદાસની સ્રીની ઉમર તે વખતે બાર વર્ષની હતી જ્યારે પદ્મનાભદાસની ઉમર વર્ષ ૧૪ ની હતી જ્યારે પદ્મનાભદાસ વર્ષ ૧૮ ના થયા ત્યારે સંવત ૧૫૩૮ મા તેમને ત્યા એક પુત્રીનો જન્મ થયો. અને તેનુ નામ પદ્મનાભદાસે તુલસા રાખ્યુ. આ તુલસાં રૂપ ગુણ અને શીલથી ખરેખર અદ્દભુત હતી. તે નાનપણથી જ સ્વભાવે શાંત અને વિશ્વાસુ હતી વળી તે ધર્મપરાયણ પણ હતી તેની અત્યત સાત્વિક વૃત્તિ જોઇને પદ્મનાભદાસ તેના ઉપર ખૂબ મમતા રાખતા તુલસા ઉપર પદ્મનાભદાસનો પ્રભાવ સારો હતો તુલસા પદ્મનાભદાસની આજ્ઞામા સદૈવ રહેતી. અને પિતાના વાક્યને ઇશ્વિરવાક્ય સમજી તેનુ સંપૂર્ણ પાલન કરતી સં. ૧૫૪૯ મા તુલસાનું લગન જાતિના એક છોકરા સાથે કરવામા આવેલું પરતુ તે થોડાજ મહિનામા હરિશરણ થઇ જવાથી તુલસા બાલ વિધવા થઈ. તુલસાને સસારનુ મુદ્દલે જ્ઞાન ન હતુ. શ્રીભાગવત અહર્નિશ શ્રવણ કરતી. અને તેમાં જ તે નિમગ્ન રહેતી સં ૧૫૫૨ માં પદ્મનાભદાસ શ્રીઆચાર્યજીની શરણે આવ્યા તે વખતે પદ્મનાભદાસે પોતાના સમગ્ર કુટુંબને પણ સમર્પણ કરાવ્યુ. તેજ સમયે તુલસાં પણ શરણે આવી. પછી સં ૧૫૫૬ માં જ્યારે શ્રીમથુરેશજીને પદ્મ-

પ્રાપ્ત કરવાની શક્તિ હોય તે આવુ કષ્ટ શું કામ વેઠે? મુગલને ત્યાં પણ અસહ્ય કષ્ટ વેઠ્યુ, તે ધૈર્યની પરકાષ્ઠા છે પરતુ આ કષ્ટ જુદા પ્રકારનુ છે અહિંઆં તો શ્રીમથુરેશજીમા શ્રીઆચાર્યજીની ભાવના તેમજ છોલામા પણ ભાવાત્મક સામગ્રીની ભાવના એ, સમગ્ર ભાવાત્મક સ્વરૂપની પદ્મનાભદાસમાં સ્થિતિ સુદૃઢ છે તે સમજાય છે (ભાવનુ સ્વરૂપ જુઓ વાર્તા રહસ્ય) અને એ ભાવની પ્રાપ્તિ થયાં પછી સ્વરૂપની બાહ્ય અપેક્ષા રહેતી નથી માટેજ પદ્મનાભદાસે શ્રી મથુરેશજીને પૂછ્યુ महाराज आपकों श्रीआचार्यजी के घर पधारिवे की इच्छा होई तो उहां नाना प्रकारकी सामग्री है ॥

જે ભાવમાં બાહ્ય સ્વરૂપની અપેક્ષા નથી, તે ધર્મી વિપ્રયોગાત્મક રૂપ જાણવો. (જુઓ દામો૦ હર૦ની વાર્તાના પ્ર. ૧૦નુ પરિ રહસ્ય) તે અહીં પદ્મનાભદાસને સિદ્ધ થયો અને આ ધર્મી વિપ્રયોત્મક સ્વરૂપ ભાવરૂપ શ્રીઆચાર્યજી (કૃષ્ણાસ્ય) મહાન કષ્ટથી અનુભવાય છે. (જુઓ "વાર્તા–રહસ્ય" તથા શ્રીહરિ૦ કૃત૦ ભાવના) તેથી જ પદ્મનાભદાસ ત્રણે પ્રકારના દુખને સહન કરી શકયા પરતુ પદ્મનાભદાસને હજુ ભૂતલમાં સ્થિત રાખવાના હોવાથી શ્રીમથુરેશજી તેમની પાસેજ રહ્યા ત્યાર પછીનો કેટલોક પ્રસંગ "ભાવસિંધુ" મા છે તે અવશ્ય જોવો તેમા પદ્મનાભદાસની વિકલતા અને અસ્વાસ્થ્ય સહેજે જણાઈ આવે છે.

તુલસાંની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને તેનું રહસ્યઃ—

આ વાર્તા શ્રીઆચાર્યજીના હૃદયરૂપ નિરોધાત્મક લીલાના યશ સ્વરૂપ છે તેમા વિશેષ કહેવુ વ્યર્થ છે કારણ કે યશનુ સ્વરૂપ ત્યારેજ પ્રકટે છે જ્યારે કોઈ અસાધારણ કાર્ય સિદ્ધ થાય છે તેજ પ્રકારે તુલસાદ્વારા શ્રીઆચાર્યચરણના ભાવાત્મક પ્રભુ શ્રીગોપીજનવલ્લભે લોકવેદાતીત સ્વતત્ર શરણમાર્ગરૂપ ભક્તિને આ વાર્તામા

अब श्री आचार्यजी के सेवक पद्मनाभदास की बेटी तुलसां तिनकी वार्ता ओर ताको भाव लिख्यते ॥

श्रीहरिरायजी कृत आधिदैविक स्वरूप

ए लीलामें पद्मनाभदास की सखी हे॥ पद्मनाभदास तो चंपकलता अष्टसखीनमें ॥ ओर चंपकलताकी सखी मणिकुंडला ॥ जेसें मणिकी ज्योतिकी कुंडाली चारो ओर फूले ॥ सो (यह) तुलसां सात्विक भक्त हे॥ पद्मनाभदास को आज्ञामें तत्पर हे ॥

वार्ता प्रसंग १

एक दिन तुलसां के घर वैष्णव आयो ॥ सो श्रीआचार्य जी को सेवक हतो ॥ सो श्रीमथुरानाथजी के दरशन राजभोग आरती के किये ॥ तब तुलसां ने उह वैष्णव सों कह्यो ॥ जो उठो स्नान करो ॥ महाप्रसाद लेउ ॥ तब उह वैष्णव ने कह्यो जो होंतो घर जाइ स्नान करूंगो ॥ तब तुलस चुप करि रही ॥ पाछे वह वैष्णव उठि के अपने घर गयो तुलसां के मनमे वहोत खेद भयो ॥ जो मेरे घर तें वैष ल्यो गयो ॥

ताको कार

નાભદાસે ઘરમાં પધરાવ્યા જ્યારે તુલસાં પણ ભગવત્સેવામાં ધીરે ધીરે અનુકૂળ થઈ. થોડા સમયમા તો તુલસાંની શ્રીમથુરેશજીમા પૂર્ણ આસક્તિ થઈ. અને મથુરેશજીને જ પોતાનુ સર્વસ્વ માનવા લાગી.

એક સમય તુલસા અનોસરમા શ્રીમથુરેશજીના સ્વરૂપનું સાગોપાંગ ધ્યાન કરવા લાગી જ્યારે તે શ્રીમથુરેશજીના સ્વરૂપ સુધાનુ પૂર્ણ પાન હૃદયમાં એક ધ્યાનાવસ્થિત પણે કરી રહી હતી તે સમયે જોત જોતામા શ્રીમથુરેશજી ધ્યાનમાથી અંતર્ધ્યાન થયા ત્યારે તુલસાંને મહાન્ વિરહ ભગવત્સ્વરૂપની પ્રાપ્તિ અર્થે થયો તે વિરહથી તુલસાંના હૃદયમા સ્થિત શ્રીમથુરેશજીનુ સ્વરૂપ બહાર આવિર્ભાવ પામ્યુ.* અને તે સ્વરૂપે તેને સાક્ષાત્ થઈ દર્શન આપ્યુ. તે સ્વરૂપ "છોટા મથુરેશજી" તરીકે ઓળખાય છે અને હાલ તે કોટામાં બિરાજે છે પછી તુલસા આ સ્વરૂપની સેવા કરવા લાગી.

(વ્રજ) સંવત ૧૫૮૨ મા શ્રીઆચાર્યજી વ્રજમાથી અડેલ પધારતી સમયે કનોજ પધાર્યા ત્યારે આ સ્વરૂપને પુષ્ટ કરી તુલસાંને પધરાવી આપ્યું તુલસાંએ ઘણા વર્ષ સુધી આ સ્વરૂપની સેવા કરી સંવત ૧૬૩૦ મા જ્યારે પદ્મનાભદાસ લીલામા પ્રાપ્ત થયા ત્યારે શ્રીગુસાંઈજી કનોજ પધાર્યા અને તુલસાને ત્યા મુકામ કર્યો. (જુઓ પ્ર ૨) તુલસા તે વખતે ૯૨ વર્ષની હતી. છતા શ્રીઠાકોરજીની અને શ્રીગુસાંઈજીની સેવા પૂર્ણ ઉત્સાહ અને દૈન્ય યુક્ત પ્રેમથી કરતી જેથી શ્રીગુસાંઈજી તેનો પ્રેમ અને દીનતા જોઈ ગદ્દગદ થઈ તુલસાંની ભૂરિ ભૂરિ પ્રસંશા કરતા (વિશેષ જુઓ વાર્તા) તુલસા લગભગ ૧૬૩૨ મા ભગવચ્ચરણારવિંદને પ્રાપ્ત થઈ.

---

* સરખાવો શ્રીઆચાર્યજીનો સિદ્ધાંત—

क्लिश्यमानान् जनान् दृष्ट्वा कृपायुक्तो यदा भवेत् ।
तदा सर्वं सदानद हृदिस्थ निर्गत बहि. ॥ (निरोध० ल०)

वार्ता प्रसंग १ शुरु

पाछे प्रातःकाल तुलसांने पूरी करी ॥ श्रीठाकुरजी कूँ जगाए ॥ सेवा सिंगार करन लागी ॥ इतनेही मे वह वैष्णव सवारे नहाय के श्रीठाकुरजी की सेवासें पहोंचि तुलसां के घर आयो । जब तुलसां भोग समर्पि के बाहर आई ॥ तब वा वैष्णवसों जय श्रीकृष्ण कीयो ॥ ओर तुलसां ने कह्यो ॥ जो उठो स्नान करो भगवद्स्मरण करो ॥ तब वा वैष्णवने कही मे स्नान करि अप-रसहि में आयो हूं ॥ (तथा कहु वार्ता मे यहू हे जो स्नान करि तिलक मुद्रा करि भगवद्स्मरण कीयो) समय भए तुलसांने राजभोग सरायो आरती करि ॥ वैष्णव ने दरसन कीयो ॥ पाछे तुलसां श्रीठाकुरजी को अनोसर करि बाहर आई ॥ ओर वा वैष्णव को प्रसाद की पातर धरी ॥ तामे पुरी बुरा दहींकरा ? (दहींथरा) संधानो धर्यो ॥ ओर कह्यो जो प्रसाद लेउ ॥ तब वा वैष्णव ने कही जो यह नाहि लेऊंगो ॥ सखडी महाप्रसाद धरो, लेऊंगो ॥ तब तुलसां ने कह्यो कछू संकोच मति करो यह तो ज्ञाति को व्योहार हे ॥ तब वैष्णवने कह्यो जो सो तो साँच ॥ पहले तो मेरे मनमें एसी ही ॥ परि अब तो आज्ञा भइ हे ॥ तातें अब तो सखडी महाप्रसाद लेऊंगो ॥ तब तुलसां(ने)सखरी अनसखरी दोऊ धरि वैष्णव के आगे, पाछे वा वैष्णव ने सखडी प्रसाद लीयो ॥ प्रसाद ले वह वैष्णव अपने घर गयो ॥ तब तुलसां मनमें बहोत प्रसन्न भई ॥

तुलसां चंपकलताकी सखि हे ॥ ओर तुलसांके वस श्रीमथुरानाथजी हें ॥ तातें यह वैष्णवनें महाप्रसाद न लियो ॥

जो ललिताजीकी आज्ञा बिना केसे लेउ ? ॥ तातें यह वैष्णव अपने घर चल्यो गयो ॥ तव तुलसांकि मनमें खेद भयो ॥

वार्ता प्रसंग १ शुरु

तव मनमें आई जो ज्ञाति व्योहार के लिये सखडी न लीनी होइगो ॥ तो भलो परि सवेरे पूरी प्रसाद लिवाऊंगी ॥ पाछे मेदा छानि सिद्ध करि राख्यो ॥ पाछे सोइ रही ॥ ता दिन तुलसां ने महाप्रसाद नांहि लियो ॥

पाछे रात्रिकों श्रीमथुरानाथजी ने तुलसां सों स्वप्न में कह्यो ॥ जो सवारे वा वैष्णव को महाप्रसाद लिवाइयो ॥ वह वैष्णव अपने घर महाप्रसाद न लेइगो ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

यामें यह जताए जो कालि उह वैष्णव महाप्रसाद लेइगो ॥ तू चिंता मति करे ॥ पाछें श्रीठाकुरजी नें उह वैष्णव को जताए ॥ जो तुलसां के इहां महाप्रसाद क्यों न लियो ? ॥ सवेरे लीजियो ॥ ललिताजी की हू आज्ञा हे ॥ सो (तव) ललिताजी हू कहे ॥ तूलसां के इहां महाप्रसाद लीजो ॥ हमारे उनके भावमें भेद नाहि ॥

पाछे प्रातःकाल तुलसांने पूरी करी ॥ श्रीठाकुरजी कूँ जगाए ॥ सेवा सिंगार करन लागी ॥

वार्ता प्रसंग १ इतनेही मे उह वैष्णव सवारे नहाय शुरु के श्रीठाकुरजी की सेवासों पहोंचि तुलसां के घर आयो । जव तुलसां भोग समर्पि के वाहर आई ॥ तव वा वैष्णवसों जय श्रीकृष्ण कीयो ॥ ओर तुलसां ने कह्यो ॥ जो उठो स्नान करो भगवद्स्मरण करो ॥ तव वा वैष्णवने कही मे स्नान करि अपरसहि में आयो हूं ॥ (तथा कहु वार्ता मे यहू हे जो स्नान करि तिलक मुद्रा करि भगवद्स्मरण कीयो) समय भए तुलसांने राजभोग सरायो आरती करि ॥ वैष्णव ने दरसन कीयो ॥ पाछे तुलसां श्रीठाकुरजी को अनोसर करि वाहर आई ॥ ओर वा वैष्णव को प्रसाद की पातर धरी ॥ तामे पुरी वुरा दहींकरा ? (दहींथरा) संधानो धर्यो ॥ ओर कह्यो जो प्रसाद लेउ ॥ तव वा वैष्णव ने कही जो यह नाहि लेऊंगो ॥ सखडी महाप्रसाद धरो, लेऊंगो ॥ तव तुलसां ने कह्यो कछू संकोच मति करो यह तो ज्ञाति को व्योहार हे ॥ तव वैष्णवने कह्यो जो सो तो सॉच ॥ पहले तो मेरे मनमें एसी ही ॥ परि अव तो आज्ञा भइ हे ॥ तातें अव तो सखडी महाप्रसाद लेऊंगो ॥ तव तुलसां(ने)सखरी अनसखरी दोऊ धरि वैष्णव के आगे, पाछे वा वैष्णव ने सखडी प्रसाद लीयो ॥ प्रसाद ले वह वैष्णव अपने घर गयो ॥ तव तुलसां मनमें वहोत प्रसन्न भई ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

यामें यह जताए ॥ वैष्णव घर आवे ॥ तिनको यथाशक्ति सन्मान करनो ॥ काहे ते श्रीभागवतमें कहे हे ॥ जा घरमें जलादिकनको हू सन्मान नांहि हे ॥ वाको घर सर्पको बिल सो जाननो ॥ सो तुलसांको वैष्णव पर एसो ममत्व हतो ॥

॥ इति प्रसंग १ समाप्त ॥

પ્રસંગ ૧નું સમાધાન અને રહસ્ય—

પૂર્વપક્ષી:—આ પ્રસંગથી કેટલોક મર્યાદી વર્ગ પક્તિ ભેદ તોડતો હોય એમ અમને લાગે છે કારણ કે આમા તુલસા અને આગતુક વૈષ્ણુવ બન્ને એક જ્ઞાતિના નહિં હોવા છતાં તેઓએ પક્તિ-ભેદ તોડી સખડી મહાપ્રસાદ લીધો એ આ પ્રસંગમા સ્પષ્ટ જ છે.

સિદ્ધાન્તી—આપનુ કહેવુ યથાર્થ છે કે ઉપર્યુક્ત, બન્ને વૈષ્ણુવો એ પક્તિ-ભેદ તોડી સખડી મહાપ્રસાદ લીધો પરતુ સખડી મહાપ્રસાદ ક્યારે અને કેમ લીધો તે પણુ આ પ્રસંગમા સ્પષ્ટ જ છે. જુઓ —तव तुलसांने कह्यो कछू सकोच मति करो ॥ यह तो ज्ञाति को ब्योहार हे ॥ (અહીં સ્વય તુલસા જ્ઞાતિ વ્યવહારનુ સમર્થન કરે છે ઉલ્લઘન કરતી નથીજ) तव वैष्णवने कह्यो जो सो तो साँच ॥ पहेले तो मेरे मनमें एसी हो ॥ (અહીં આગતુક વૈષ્ણુવે પણુ જ્ઞાતિ વ્યવહારને માન્ય કરેલો સ્પષ્ટજ છે) परि अब तो आज्ञा भई हे ॥ (અહીં સખડી મહાપ્રસાદ લેવાનુ કારણુ બતાવ્યુ અને ભગવદાજ્ઞા લોક વ્યવહારથી શ્રેષ્ઠ છે તે સિદ્ધ કર્યું છે) तातें अब तो सखडी महाप्रसाद लेउगो ॥

આ પંક્તિઓથી આપ જાણી શકો છો કે અહિં તુલસાં અને આગતુક વૈષ્ણવની જ્ઞાતિ વ્યવહાર તોડવાની કે મર્યાદા ઉલ્લંઘન કરવાની મુદ્દલે ઇચ્છા ન હતી. પરતુ કેવલ ભગવદાજ્ઞાથી જ તેઓએ વ્યવહારને તોડયો. આ જ્ઞાતિ વ્યવહાર લોક સિદ્ધજ હતો. વેદસિદ્ધ પણ ન હતો. કારણ કે બન્ને બ્રાહ્મણ જ હતાં. ફક્ત આચાર વિચારને લઇને જ તેઓમાં ભિન્નતા છે. એટલે ભગવદાજ્ઞા આગલ આ લોકવ્યવહાર ટકી શકે નહિ જ. જ્યાં પ્રત્યક્ષ રૂપે (કોઈ પણ રીતે) વિશેષ પ્રકારની ભગવદાજ્ઞા થાય ત્યાં પરોક્ષાત્મક સામાન્ય પ્રકારની વેદ આજ્ઞા, અને અન્ય સર્વ (મર્યાદા) નો ત્યાગ કહેલો છે ત્યા બિચારા લોકવ્યવહારનું મહત્ત્વ તો હોયજ ક્યાથી? જુઓ શ્રીઆચાર્યચરણ શી આજ્ઞા કરે છે?

'सेवाकृतिर्गुरोराज्ञा बाधन वा हरीच्छया।" (नवरत्न)

"विशेषतश्चेदाज्ञा स्याद् अंतःकरणगोचरः॥

तदा विशेष गत्यादि भाव्यं मिन्न तु दैहिकात्' (वि० धै० आ०)

પુષ્ટિમાર્ગમાં ભગવદાજ્ઞા જ મુખ્ય પ્રમાણ રૂપ (प्रमाणभगवद्वाक्यैः) માનેલી છે. તેના અભાવમાં ગુરૂએ બતાવેલી સેવાની મર્યાદા (રીત) મુખ્ય છે.

આ સેવાની મર્યાદામાં યથાધિકાર લોક વેદનો સમાવેશ થઇ જ જાય છે.

પૂર્વપક્ષી—આવા પ્રકારની ભગવદાજ્ઞા થવાનુ કારણ શુ?

સિદ્ધાન્તી:—આવા પ્રકારની ભગવદાજ્ઞામાં તુલસાનો શુદ્ધ પ્રેમજ એક માત્ર કારણભૂત છે. લોક અને વેદમાં પણ એ સ્પષ્ટજ છે કે ભોજનના સમયે યદિ કોઈ અતિથી પોતાના ઘરે આવે તો તેને યથાશક્તિ સત્કાર અવશ્ય કરવો, એ ગૃહસ્થાશ્રમી માત્રનુ કર્તવ્ય છે, અન્યથા તે ગૃહસ્થાશ્રમી (યદિ વિરક્ત પુરૂષ પણ ઘર કરીને રહેતો હોય તો તેને પણ ગૃહસ્થિત હોવાથી આ ધર્મ લાગુ પડે છે) પતિત થાય છે.

આવા પ્રકારે તુલસા ગૃહસ્થિત ઉપરાત વૈષ્ણવો ઉપર પરમ પ્રેમ રાખતી હતી અને તે પ્રેમમા પદ્મનાભદાસની કૃપાજ કારણભૂત હતી (જુઓ પદ્મનાભદાસની વાર્તા પ્રસંગ ૪)

સર્વેશ્વર સર્વાત્મા પ્રભુ ઉપર પરમ વિશુદ્ધ નિષ્કામ અને પૂર્ણ પ્રેમ થયો ત્યારે જ જાણવો જ્યારે પ્રભુના સબંધવાળી તમામ વસ્તુ (વેષ, ચિહ્ન, ભાષા, સેવોપયોગી પદાર્થ અને સેવકો આદિ) ઉપર પ્રભુવત્ સ્નેહ સહજ થાય * (બનાવટી અથવા કથન માત્ર નહિ) તો વૈષ્ણવો ઉપર પ્રેમ હોય તેમા આશ્ચર્ય શુ?

માટેજ શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુ પણ વૈષ્ણવોમા પોતાપણાનુ મમત્વ કરવુ તેને માટે આ પ્રમાણે આજ્ઞા કરે છે—

स्वकीयता तदीयेषु तद्भिन्ने भिन्नता मता ॥ १८ ॥ (शि० १)

વળી વૈષ્ણવો ઉપર કેવો ભાવ હોવો જોઇએ તે માટે આ પ્રમાણે આજ્ઞા કરે છે—

तदीयेषु च तद्बुद्धया **वरः स्थाप्योविशेषतः** ।
यथा दूतीषु भवति विषयिणां मतिस्तथा ॥ १९ ॥ (शि० १)

આવા તો ઘણા વાકયો સર્વ ભક્તિમાર્ગના ગ્રન્થોમા **સિદ્ધાન્ત રૂપે** પ્રાપ્ત છે (તે અમે દયા ભવૈયાની અને અન્ય વાર્તાઓમા આપીશુ) એટલે દરેક વૈષ્ણવોનુ સહજ કર્તવ્ય છે કે પોતાને ત્યા સમય ઉપર આવેલા વૈષ્ણવનુ (વેશધારી યા નામધારીનુ પણ) યથા શક્તિ સાદર શ્રદ્ધાપૂર્વક સન્માન કરેજ (કિંતુ સંગ તો વિચારીને જ કરવો) તે સિદ્ધાન્તમા નિચોડરૂપ એક દોહો અત્યત ઉપયોગી હોવાથી અહિં આપ્યો છે –

हरिजन आवे द्वारपें हसि नमावे शीश ।
वाके मन की वे जाने मेरे मन जगदीश ॥ (तुलसी)

---

* લોકોમા પણ એક ક્ષુદ્ર વસ્તુના પ્રેમનુ દ્રષ્ટાત મોજુદ છે અને તે મજનુ નુ મજનુ લોકમા એટલો ઉત્કૃષ્ટ પ્રેમી થયો કે લેલાના ગામના કુત્તા ઉપર પણ લેલાવત્ પ્યાર કર્યો એ શુદ્ધ પ્રેમની સહજ નિશાની છે.

જ્યારે આ કર્તવ્ય સર્વ સામાન્ય ને માટે પણ છે તો પરમ ભાગવત શુદ્ધ અને નિર્દોષ બ્રહ્મ દ્રષ્ટિવાળી પુર્ણ પ્રેમી તુલસાંને માટે હોય તેમા આશ્ચર્ય શું ?

આથી જ્યારે આગતુક વૈષ્ણવ સમય ઉપર (અનસખડી નહિ હોવાના કારણથી) પોતાના ઘરમાથી વિમુખ ગયો ત્યારે તુલસાને અત્યત ક્લેશ થયો. અને તે સ્વાભાવિક છે. "भक्त विरह कातर करुणामय डोलत पाछें लागे" (सूर०) એવા કારૂણીક પ્રભુથી તે ક્લેશ સહ્યો ન ગયો જેથી બન્નેને આજ્ઞા કરી ભગવદાજ્ઞા થવાનુ આ કારણ છે

પૂર્વપક્ષી.—સખડી મહાપ્રસાદ જ લેવાની ભગવદાજ્ઞા થવાનુ કારણ શું ? અનસખડી પ્રસાદથી પણ વૈષ્ણવનું સન્માન થઈ શકતુ હતુ. અને તેથી લોકવ્યવહાર પણ સચવાનો હતો.

સિદ્ધાન્તી—આપનું કહેવું ઉચિત છે. પરતુ સ્વય શ્રીકૃષ્ણે પ્રકટાવેલા લોકવેદાતીત નિર્ગુણ ભક્તિમાર્ગનું સ્વરૂપ સમજાવવાને અને લોકમા પણ તેની ઉત્કૃષ્ટતા સિદ્ધ કરવાને અર્થેજ આવા પ્રકારની (લોકવેદ વિરૂદ્ધ) સ્વતત્ર આજ્ઞાઓ ભક્તોના ચરિત્રોમા તેમજ ભક્તિમાર્ગના સિદ્ધાન્તાત્મક પ્રસ્થાન ચતુષ્ટય આદિ ગ્રન્થોમાં પણ જોવામા આવે છે.

દૃષ્ટાત રૂપે.—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरण व्रज ।
अहत्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः ॥ (गीता)

ગીતામા શ્રીકૃષ્ણે બે પ્રકારના શરણ માર્ગ અર્જુન પ્રતિ કહેલા છે. એકથી ચાર અધ્યાય સુધીમા જ્યા જ્યા શરણનું વર્ણન છે, ત્યાં ત્યા વેદોકત શરણનો પ્રકાર કહેલો છે. અને પાંચમા અધ્યાયથી જેમ જેમ અર્જુનને શ્રીકૃષ્ણ પ્રતિ દ્રઢ વિશ્વાસ થતો ગયો તેમ તેમ તેને સ્વતત્ર પ્રમેયાત્મક શરણ માર્ગનો ઉપદેશ કરેલો છે. વેદોક્ત

શરણમાર્ગ એ પ્રમાણ સ્વરૂપ છે અને તેની શક્તિ પણ મર્યાદિત છે. જ્યારે સ્વતંત્ર પ્રમેયાત્મક (જેમાં શ્રીકૃષ્ણજ સ્વય શરણ રૂપ હોય તે) શરણમાર્ગ પૂર્ણ સામર્થ્ય યુકત અને અમર્યાદિત છે. આ પ્રમેયાત્મક શરણમાર્ગ સ્વય ફલ સ્વરૂપ છે. અને તે શ્રીમદાચાર્યચરણે શ્રીકૃષ્ણના હાર્દને જાણી આ વિપરીત આચાર વિચાર યુકત કલિકાલના જીવોના ઉદ્ધારાર્થે તેનો ઉપદેશ કર્યો તેથી શ્રીગુસાંઈજીએ શ્રીઆચાર્યજીનુ નામ સર્વોત્તમસ્તોત્રમા " पृथक् शरण मार्गोपदेष्टा " યોજ્યુ છે (વિશેષ આ પ્રસંગ શ્લોકો દ્વારા સમજાવીને આગલ ઉપર વિવેચન કરીશુ)

ઉપર્યુકત શ્લોકમા શ્રીકૃષ્ણે પૂર્ણ રૂપે સ્વતત્ર શરણમાર્ગ અર્જુન આગલ પ્રકટ કરી દીધો છે તે આ પ્રકારે --

સર્વ ધર્મો (લોકવેદાદિના) ને છોડવાથી થતુ જે પાપ તેમાથી હુ તને (અર્જુનને) મુકત કરીશ. અહીં પોતાના સ્વરૂપ બલનો પ્રયોગ બતાવ્યો છે એટલે કર્તુ અકર્તુ અન્યથા કર્તુમ્ સર્વ સામર્થ્યવાન શ્રીકૃષ્ણના શરણસ્થ જીવને લોકવેદાદીના શાસનો લાગુ પડતા જ નથી. એટલે ત્યા (સ્વતત્ર પ્રમેયાત્મક શરણમાર્ગમા) તેમા (વેદાદિમા) કહેલા દોષોની જરા પણ સંભાવના રહેતી નથી જ આનુ નામજ પુષ્ટિ (સ્વતત્ર) શરણ માર્ગ છે જેમાં શ્રીકૃષ્ણજ એક માત્ર રક્ષક છે આ માર્ગમા દ્રઢતાપૂર્વક જેઓ સ્થિર છે, અથવા પ્રભુ જેને સ્વય લોક અને વેદમા અસ્વાસ્થ્ય પ્રાપ્ત કરાવીને સ્થિત કરે છે, તેને વેદાદિના શાસનની જરાય અપેક્ષા રહેતી નથી જ (જે પુરૂષો પુષ્ટિ ભકિતમા દ્રઢ નિશ્ચયવાળા નથી તેઓ માટે વેદાદિમા કહેલા સાધન ધર્મોની અત્યત અપેક્ષા છે એ નિશ્ચે સમજવુ) ઉપરોકત સિદ્ધાતને નારદ ભકિત સૂત્રોની પણ પુષ્ટિ છે (જુઓ સૂત્ર ૧૪ મુ પદ્મનાભદાસની વાર્તાના પ્રસગ ૪ ની નોધ)

આવો સ્વતત્ર પ્રમેયાત્મક ભકિતમાર્ગ લોકમા પ્રકટ કરી તેની

ઉત્કૃષ્ટતા જણાવવાને અર્થેજ આવા પ્રકારની (લોકવેદ વિરૂદ્ધ) આજ્ઞા સ્વતત્ર રૂપે શ્રીહરિએ કરી.

હવે આ પ્રસગનું સૂક્ષ્મ રહસ્ય નિરૂપીએ છીએ—

આ પ્રસગમાં લોકવ્યવહાર સાચવીને તેથી (પ્રતિબધાદિથી) ઉત્પન્ન થતા ભગવદ્દવિષયક તાપક્લેશનુ અનુસરણ કેવી રીતે (દૈન્યતાપૂર્વક) કરવુ? તે તુલસાએ સ્વય દૈવીજનોના હિતાર્થ કરી બતાવ્યું છે.

જ્ઞાતિ વ્યવહારનો વિચાર કરીને જ તુલસાએ તે વૈષ્ણવને જરાયે પ્રસાદ લેવાનો આગ્રહ ન કર્યો. પરતુ તેથી (આજ કાલની માફક) હૃદયમા સંતોષ કરી તુલસાં બેસી પણ ન રહી પોતાના ઘરમાં સમય ઉપર આવેલા પોતાના પરમ પ્રિય પ્રભુના સંબધવાળા વૈષ્ણવનો પોતાના તરફથી સત્કાર ન થયો તેનો તુલસાંને અત્યત તાપ થયો. તેના ફલ સ્વરૂપ શ્રીપ્રભુએ તેની આર્તિ પૂર્ણ કરી.

એટલે તાપાત્મક સ્વરૂપ શ્રીઆચાર્યજીની ધારણા માત્રથી જ શ્રીઠાકુરજી લીલા પરિકર સહિત તુલસાને સાધન રૂપ થયા (આનું નામજ પુષ્ટિમાર્ગ અથવા સ્વતત્ર ભક્તિમાર્ગ, આ માર્ગમાં શ્રીકૃષ્ણજ પ્રમાણ પ્રમેય સાધન અને ફલરૂપ હોવાથી વેદાદિ પ્રમાણોની અપેક્ષા હોતી નથીજ.) અને તે તાપાત્મક શ્રીવલ્લભ લીલામધ્યપાતી હોવાથી સર્વ લીલા આપોઆપ સાનુકૂળ બને છે

આવા સ્વતત્ર ભક્તિમાર્ગમા શ્રીહરિ પણ બાધ કરવાને સમર્થ નથી તો વેદાદિ તો બાધ કેમ જ કરી શકે? (हरिरत्र न शक्नोति कर्तुं बाधां कुतोऽपरे ॥)

આ પ્રકારે આ પ્રસંગમા સ્વતત્ર ભક્તિમાર્ગનુ નિરૂપણ કર્યું. આ પ્રસગમા શ્રીઆચાર્યજીનું તાપાત્મક સ્વરૂપ કહ્યું. (જુઓ "વાર્તા–રહસ્ય.")

बहुरि एक समे × तुलसां के घर श्रीगुसांईजी पधारे ॥ तब तुलसां ने बहुत भली भांति सों सेवा कीनी ॥ श्रीठाकुरजी तें अधिक जानि के सेवा कीनी ॥ तब श्रीगुसांईजी बहुत प्रसन्न भए ॥ ओर एक दिन श्रीगुसांईजी भोजन करि के पोढे हते ॥ तुलसां भगवद्वार्ता करि श्रीगुसांईजीकों प्रसन्न कीए ॥ तब तुलसां सों अति प्रसन्नता में भगवद्वार्ता करत में श्रीगुसांईजी ने श्रीमुख सों कह्यो ॥ जो पद्मनाभदास की संतति एसीही चाहिए ॥

वार्ता प्रसंग २

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

याको अर्थ यह जो लीलामे सखी हे ॥ एसी क्यों न होई ॥ तहां श्रीगुसांईजी चंद्रावलीजी रूप हे ॥ सो इनको परकीया भाव श्रीठाकुरजी सों हे ॥ तातें हास्य बहोत प्रिय हे ॥ सो कटाक्ष के वचन पूछे जो श्रीठाकुरजी अपने स्वरूपानंद को अनुभव जतावत हे ? तुम हू तो सखी हो ॥ श्रीठाकुरजी की सेवा करि के बस कीए ॥ ताते हमारे साझेमे तुमहू हो ॥ या प्रकार व्यगके वचन कहे ॥ परतु तुल्सां शुद्ध सात्विक हे ॥ इनको कटाक्ष बहोत नाहि हे ॥ सुधी हे ॥

वार्ता प्र. २ शुरु

पाछे श्रीगुसांईजी ने तुलसां सों पूछी जो श्रीठाकुरजी सानुभावता जतावत हें ? ॥ तब तुलसांने कह्यो ॥ जो महाराज अब तो (हम) पेट भरि खइयत हें ओर नींद

× સંવત ૧૬૩૦–૩૧મા જુઓ તુલસા નો શેષ ભૌતિક ઇતિહાસ.

भरि सोइयत हें । परि श्री आचार्यजी के ग्रन्थ को पाठ नित्य करियत हें ॥ तब श्रीगुसांईजी वहोत प्रसन्न भए ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

पेट भरिके खइयत हें ॥ नींद भरिके सोइयत हें ॥ सो यह जो जितनो रस हमारे पेटमें समात हे ॥ जेसें हम पात्र हें ॥ तितनो श्रीठाकुरजी अनुभव जतावत हें ॥ तातें श्रीठाकुरजीकी संग नींद-भरि सोइयत हें ॥ काहेते हमारो स्वकीया भाव हे ॥ तातें सखी हें ॥ चिंता नांहि हे ॥ मुख्य अर्थ यह ॥

ओर गुरु भावसों यह अर्थ जो महाराज हम अनेक जन्म श्रीठाकु-रजीसों बिछुरिके पायो ॥ परतु काहू योनिमें पेट नांहि भर्यो॥ ओर सुख सों नींद नाहि आई ॥ अब आपु कृपा करिके सरन लिए ॥ सो अबके जनममें पेट हू भर्यो ॥ ओर श्रीठाकुरजीको एक आश्रय करिकें सोएहू ॥ सगरे जनम अविद्या करि दुःखमें विताए ॥ एक अर्थ यह ॥

ओर दैन्य पक्षमें यह जो हमकों कहा अनुभव करावें ॥ पेट भरिके खइयत हें ॥ नींद भरिके सोइयत हें ॥ जेसे पशुको खाइवेको ओर सोइ-वेको काम ॥ ओर काम परवसतें कोई लादे जो मारे तब करे ॥ तेसें हमहू प्रीति खानपानमें हे ॥ सेवा लोगनकी निंद्रा भए ते है ॥ जो बडे पद्मनाभदासकी संतति सेवा नांहि करत ॥ या प्रकार लोगनकी प्रतिष्ठा अर्थ ॥ तातें हमकों कहा अनुभव जतावें ? ॥ श्रीसूरदासजीनें गायो हे ॥ "सूर अधमकी कोन चलावें उदर भरे अरु सोये" ॥ एसे अधम जो हे ॥ तिनकी वात नांहि करनी ॥ जो सरीरको सुख चाहत हे ॥ या प्रकारके हम हें ॥ परंतु श्रीआचार्यजी के ग्रन्थको पाठ सदा करियत हें ॥

ताको भाव यह जो एसेहू अधमको श्रीआचार्यजीके ग्रन्थ मात्र कहे ॥ भावहू न जानत होइ तो पाठहीके किए ते श्रीठाकुरजी सगरो अनुभव जतावे ॥ तातें यह कहि अपनो पुरुषारथ नाहिं कहे ॥ श्रीआचार्यजीको प्रताप कहे ॥ जो उनके ग्रन्थके पाटते कृपा प्रभू करत हें ॥ या प्रकार प्रेममें लपेटे वचन तुलसांके सुनिके श्रीगुसांइजीको हृदय भरि आयो ॥

॥ इति प्रसंग २ समाप्त ॥

एसी भगवदीय तुलसां हती ॥ जिनके उपर श्रीगुसांईजी सदा प्रसन्न रहते ॥ तातें इनकी वार्ताको पार नांही ॥ सो कहां तांई लिखिये ॥

यह वार्ता ४की अन्तर्गत हे ताते वार्ता ४ (९६ मध्ये । वैष्णव ७ भए ॥) (६ठे वैष्णव जिनने तुलसांके यहां प्रसाद लीयो सो)

પારવતીની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને તેનું રહસ્ય—

આ વાર્તા શ્રીધર્મરૂપ છે

શ્રીનુ સ્વરૂપ આગળ કહ્યા પ્રમાણે (જુઓ કૃષ્ણદાસ મેધન અને પદ્મનાભદાસની વાર્તા) "श्रियोहि परमाकाष्ठा" इति वचनात् સ્વામીની આજ્ઞા ઉપર પરમ વિશ્વાસ છે

અહીં પણ પારવતીએ શ્રીગુસાંઈજીની આજ્ઞા ઉપર પૂર્ણ વિશ્વાસ રાખી શ્વેતકુષ્ઠથી થતી ગ્લાનીનો સર્વાંશે ત્યાગ કર્યો અને તે ભગવત્ સેવામા સ્થિત રહી જુઓ વાર્તાના આ શબ્દો —

जो प्रभूनकी (श्रीगुसाईजी की) आज्ञा प्रमाण चलती ।

પારવતી ને શ્રીગુસાંઈજી ઉપર દૃઢ વિશ્વાસ હતો માટે અન્ય ઔષધિ આદિ કોઇ પણ ઉપાય ન કરતા શ્રીગુસાંઈજી ઉપરજ

વિશ્વાસ રાખી શ્રીગુસાંઈજીને પત્રદ્વારા પોતાની ગ્લાનીનુ નિવેદન કર્યું (રોગનુ નહીં)

જુઓ આ શબ્દો:—

मेरी विनती तुम श्रीगुसांइजी सों करियो ॥ मेरी देहको यह प्रकार भयो हे ॥ तातें मोकों सेवा करत पाक करत बहुत ग्लानि आवत हें ॥

અને શ્રીગુસાઈજીની કૃપાથીજ હું સારી થઈ છું. એવો દૃઢ વિશ્વાસ પારવતીને હતો.

જુઓ આ શબ્દો—तामें लिखि जो महाराज के प्रतापतें नीकी भई हों ॥

આ બધા શબ્દોથી એ સિદ્ધ થાય છે કે પારવતી ને શ્રીગુસાઈજી ઉપર અતુલીત શ્રદ્ધા હતી. અને તે સ્વામી પ્રત્યેની શ્રદ્ધા-વિશ્વાસ જ—શ્રીધર્મરૂપ છે.

પૂર્વપક્ષી.—

તુલસા, પારવતી, અને રઘુનાથદાસ ત્રણે શ્રીઆચાર્યજીના સેવકો હોવા છતા શ્રીગુસાઈજી દ્વારા તેમના ઉપર ભગવત્કૃપા કેમ થઈ ?

સિદ્ધાન્તી.—પ્રશ્ન યથાર્થ છે આ ત્રણે ભક્તો સ્વકીય ભાવવાળા છે, એટલે શ્રીઆચાર્યજીએ તેમને શરણે લીધા. પરન્તુ તેઓ ક્રિયા પ્રાધાન્ય બાહ્ય ધર્મરૂપ સંયોગ રસવાળા હોવાથી સગુણ છે (જુઓ નિર્ગુણ-સગુણ ભેદ " વાર્તા માહાત્મ્ય ") એટલે તેઓને પરકીય ભાવદ્વારા સ્વકીયત્વની વૃદ્ધી છે તેથી શ્રીગુસાઈજી પરકીય ભાવરૂપ શ્રીચંદ્રાવલીજીનુ સ્વરૂપ હોવાથી તેમના દ્વારા આ ભક્તોના ભાવનું પોષણ છે. (વિશેષ શ્રીગુસાઈજીના સ્વરૂપનો પ્રકાર વાર્તા ભાગરમાં આપવામાં આવશે ત્યા જોવુ.)

પારવતીનો શેષ ભાૈતિક ઇતિહાસઃ-

પદ્મનાભદાસ ને કુલ ત્રણુ સતતી ક્રમશ તુલસા, જનાર્દન, અને નાની પુત્રી યમુના હતી જનાર્દનનો જન્મ સ ૧૫૪૦મા તુલસાના જન્મથી બે વર્ષ પછી થયો હતો. અને નાની પુત્રી યમુનાનો જન્મ સવત ૧૫૪૬મા થયો હતો

જનાર્દન જ્યારે અગ્યાર વર્ષનો થયો ત્યારે તેનુ લગ્ન એક જ્ઞાતિની દસ વર્ષની સુન્દર રૂપવતી પારવતી નામની કન્યા સાથે પદ્મનાભદાસે કર્યું.

જનાર્દન સવત ૧૫૬૦માં વીસ વર્ષનો થયો ત્યારે તેને ત્યાં એક રઘુનાથ નામક પુત્રનો જન્મ થયો તે પુત્ર પાછળથી ઘણોજ વિદ્વાન અને સુપ્રસિદ્ધ થયો (જુઓ વાર્તા)

ભાગ્યવશાત્ જનાર્દન સં૦ ૧૫૬૩મા હરિશરણ થયો તે વખતે રઘુનાથદાસનુ લાલન પાલન તેની માતા પારવતી પૂર્ણ પ્રેમથી કરતી.

પારવતી એક દ્રવ્યવાન પિતાની પુત્રી હોવાથી તેણીને દ્રવ્યની મુશ્કેલી નડી નહિં તેણીએ રઘુનાથદાસને કાશી મોકલી ભણાવ્યો.

પારવતી પદ્મનાભદાસના હરિશરણ થયા પછી ભગવદ્સેવામા તુલસાને અનુકૂળ થઈ અને શ્રીમથુરેશજીની સેવા અત્યત પ્રેમથી કરવા લાગી જેના પરિણામે શ્રીમથુરેશજી એને સાનુભાવ થયા. શ્રીમથુરેશજીએ તુલસાની ભગવદ્લીલા પ્રાપ્તિ પછી લગભગ ૩ વર્ષ પારવતી પાસે સ્વતત્રરૂપે સેવા કરાવી સ ૧૬૩૫ લગભગ પારવતીની દેહ છુટી

अब पद्मनाभदास के बेटा ताकी वहू पारवती तिनकी वार्ता ॥ और ताको भाव ॥

श्रीहरिरायजी कृत आधिदैविक स्वरुप

ए राजसी भक्त है ॥ पद्मनाभदास तो चंपकलता अष्ट सखीन में तिनकी सखी सुचरिता सो इहां पुरुषोत्तमदास मेहरा क्षत्री भए॥ सो सुन्दर चरित्र सबकों सुखरूप कार्य के करता हैं ॥ ए ओर सुचरिता की सखी रुपविलासिनी हे ॥ सो यहां पारवती भई ॥ सो लीला में पारवती को रूप वहोत सुन्दर हतो ॥ सो राजसी है ॥ अपनो रूप वहोत संवारती ॥ सो रूप के गर्व तें लीला सें गिरी*

वार्ता प्रसंग १

सो पारवती श्रीठाकुरजीकी सेवा नीकी भांति सों करती ॥ पुरुषोत्तमदास मेहरा इनको नीकी भांति सों जानते सो जब कन्नोज जातें तब याके घर उतरते ॥ सो एक समें पुरुषोत्तमदास मेहरा कन्नोज आइ अडेल श्रीगुसांईजो के दरशन कों गए ॥ (लीला के गर्व की निवृत्ती के अर्थ) यहां पारवती के हाथ पांच सुफेद भए ॥ तब ग्लानि दैन्यता भई ॥ तब अपने पूर्व स्वरूपकी हू (लीला के स्वरूप की) खबरि

---

* પારવતી પુષ્ટપુષ્ટિ જીવ છે એટલે તેની ગણત્રી મિશ્રપુષ્ટિમાં છે તે જીવો (મિશ્રપુષ્ટિ) આપાદિકથી ભૂતલમાં આવે છે. " आसक्तो भगवानेव शापं दापयति " (પુષ્ટિ પ્રવાહ મર્યાદા)

परी ॥ जो में पुरुषोत्तमदास की सखी हों ॥ मेरो काम इन-द्वारा होयगो ॥ तब पत्र पुरुषोत्तमदास कों लिख्यो जो मेरी बिनती तुम श्रीगुसांईजी सों करियो ॥ मेरी देह को यह प्रकार भयो हे ॥ तातें मोकों सेवा करत पाक करत बहुत ग्लानि आवति हें ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

ताको आशय यह हे जो में श्रीठाकुरजी सों रूप को गर्व कीयो (लीला में) ताको फल पायो ॥ अब कब कृपा करेंगे सो श्रीगुसांईजी सों बिनती करि लिखियो ॥

वार्ता प्रसंग १ शुरु

यह पत्र पठायो ॥ एक मोहर श्रीगुसांईजी कों भेट पठाई ॥ सो पत्र पुरुषोत्तमदास ने श्रीगुसांईजी को बांचि सुनायो ॥ मोहोर आगे राखी ॥ बिनती कीनी ॥ तब श्रीगुसांईजी पुरुषोत्तमदास कों कहे ॥ जो दिन दोई चारि में कहूंगो ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

सो याते जो लीला में रूप को गर्व ता अपराध तें (यह) भयो ॥ तथा ओरहू कोई अपराध न होइ ॥ सो बिचारे ॥ तब ओर अपराध नाहिं देखे ॥

---

* पुष्ट्या विमिश्रा. सर्वज्ञा (श्रीआचार्यचरण)

फेर तीन दिन पाछे श्रीगुसांईजी ने पुरुषोत्तमदास सों कही ॥ जो पारवती को पत्र लिखो ॥

वार्ता प्रसंग १ शुरु जो थोरे दिन में शरीर को भोग निवृत्त होइगो ॥

सेवा में ग्लानि मति करियो ॥ श्रीठाकुरजी थोरेसे दिन में तेरो रोग निवृत्त करेंगे ॥ तव पुरुषोत्तमदास मेहरा ने पारवती को पत्र लिख्यो ॥

तामें श्रीगुसांईजी के श्रीमुख के वचन कहे सो लिखि पठाए ॥ सो पत्र पारवती के पास पहोंच्यो ॥ सो पत्र वांचि के पारवती प्रसन्नता सों सेवा करन लागी ॥ सेवा करत ग्लानि मनमें न लावे ॥ पाछे महिना तीन चारि में हाथ पांव नीके भए ॥

तव पारवती वहोत प्रसन्नतासों सेवा करन लागी ॥ तव फेर श्रीगुसांईजी कों पत्र लिखि, पुरुषोत्तमदास मेहरा की पास पठायो ॥ तामें लिखी जो महाराज के प्रतापतें नीकी भई हों ॥ ओर भेट पठाई ॥ सो पुरुषोत्तमदास मेहराने श्रीगुसांईजी को वांचि सुनायो ॥ तव श्रीगुसांईजी वहोत प्रसन्न भए ॥ सो पारवती एसी भगवदीय हती ॥ जो प्रभून की आज्ञा प्रमाण चलती+ तातें श्रीगुसांईजी सदा इनके उपर प्रसन्न रहते ॥ तातें इनकी वार्ता को पार नांही ॥ सो कहां तांई लिखिये ॥

यह वार्ता ४ की अन्तर्गत हे तातें वार्ता ४ (९६ मध्ये । वैष्णव ९ भये) (पुरुषोत्तमदास मेहरा समेत)

+ श्री धर्म देखो पारवतीकी वार्ताको रहस्य.

રઘુનાથદાસની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને તેનું રહસ્યઃ-

આ વાર્તા જ્ઞાન ધર્મ રૂપ છે

પુષ્ટિ ધર્મના જ્ઞાનરૂપ મારગની પ્રણાલીકા, સિદ્ધાન્તરહસ્ય, કૃષ્ણાશ્રય, નવરત્ન, અને સેવાફલ છે આમા સમગ્ર પુષ્ટિમાર્ગના ફલાત્મક જ્ઞાનનુ નિરૂપણ છે અને તે શ્રીગુસાઈજીએ રઘુનાથદાસના હૃદયમા સ્થાપ્યુ (જુઓ વાર્તા)

જ્ઞાની પુરૂષો સેવા કરી શક્તા નથી તેમ અહિં પણ રઘુનાથદાસથી (ક્રિયાત્મક) સેવા થઈ શકી નહિ

જ્ઞાનધર્મરૂપ શ્રી યદુનાથજીની માફક રઘુનાથદાસે પણ સ્વતત્ર પણે સેવા કરી નથી

રઘુનાથદાસ શાસ્ત્ર અને સાપ્રદાયિક સિદ્ધાતોના અવલોકનમા જ જીવન પર્યંત મગ્ન રહ્યા

રઘુનાથદાસ નો શેષ ભૌતિક ઇતિહાસઃ-

રઘુનાથદાસના પિતાનું નામ જનાર્દન અને માતાનુ નામ પારવતી હતુ તેનો જન્મ ૧૫૬૦મા થયો હતો પારવતી એ નાનપણુથી જ પાલનપોષણુ કરી તેને મોટો કર્યો હતો તેનો પિતા જનાર્દન રઘુનાથદાસને બહુ જ નાની ઉમરનો છોડી પરલોક વાસી થયો હતો જ્યારે રઘુનાથદાસ વીસ વર્ષનો થયો ત્યારે તેને વિશેષ શાસ્ત્રીય અભ્યાસાર્થે પારવતીએ તેના મામાની સાથે કાશી મોકલ્યો ત્યા તે લગભગ વીસેક વર્ષ રહ્યો અને શાસ્ત્રનુ ખૂબ અધ્યયન કર્યું સર્વે શાસ્ત્રનો પારગત થયો પારવતી દ્રવ્યવાન પિતાની પુત્રી હોવાથી રઘુનાથદાસને દ્રવ્ય સંબધી કોઈ પણ પ્રકારની આપત્તિ પડી નહિ

પછી રઘુનાથદાસ ઘર આવી પોતાની વિદ્યાના અનુભવાર્થે પડિતોની સભામા જવા લાગ્યો સર્વે જગ્યાએ તેની ખ્યાતિ અત્યત થઈ.

રઘુનાથદાસને પદ્મનાભદાસે જ શ્રીઆચાર્યજી પાસે બ્રહ્મસંબંધ લેવડાવ્યુ હતુ. (પછીનો પ્રસગ વાર્તામા) રઘુનાથદાસનુ અવસાન સવત ૧૬૩૮ લગભગ થયુ,પછી શ્રીમથુરાનાથજી શ્રીગુસાંઈજીને ત્યાં પધાર્યા.

अव श्रीआचार्यजी के सेवक पद्मनाभदास के नाती पारवती को वेटा रघुनाथदास तिनकी वार्ता आर ताको भाव ॥

पारवती लीला मे रूपविलासिनी राजसी भक्त* ओर रघुनाथदासको नाम गुनाभिराम्या ॥ इन में गुन वहोत जो कोई ओरसो एक दिन में काम होइ सो एक घरि में यह करें ॥ सो ए तामसी हे ॥ सो दोऊ सुचरिता की सखि बराबरि की हें ॥ पुरुषोत्तमदास मेहरा की दोऊ आज्ञाकारिनी हे ॥

श्रीहरिरायजी कृत आधिदैनिक स्वरुप

वार्ता प्रसंग १

सो रघुनाथदास कासी गए ॥ तहां वहोत शास्त्र पढि के श्रीगोकुल आए ॥ श्रीगुसांईजी के दरसन कीए ॥ दंडोत करी ॥ तब श्रीगुसांईजी श्रीआचार्यजी के सेवक जानि (के) वहोत आदर सन्मान किए ॥ आप कथा सुबो-धिनीजी की कहते ॥ तब रघुनाथदास कों आगे वेटावते ॥ सो एक दिन परमानंद सोनी ने रघुनाथदास सों पूछी ॥ जो तू तो कासीमें वहोत शास्त्र पढ्यो हे ॥ सो आज श्रीगुसांईजी ने कहा कथा कही हे ॥ सो कहो ॥

---

* મિશ્ર પુષ્ટિજીવ

श्रीगुसांईजी श्रीआचार्यजी के सेवक पद्मनाभदास की सखी जानि रघुनाथदास को बहोत आदर करते ॥ ओर परमानंददास को नाम लीला में चंद्रका हे ॥ चंद्रमा की उजियारी वत इन की देह की कांति हे ॥ श्रीगुसांईजी (श्रीचंद्रावलीजी) अनेक चंद्रमारुप तिनकी अंतरंगिनि यह हे ॥ तातें रघुनाथदास सों कटाक्ष के वचन कहे ॥

श्रीहरिरायजी कृत आधिदैनीक स्वरुप

तब रघुनाथदासने परमानंद सोनीसों कह्यो जो तुम सांच पूछो तो में कछू समझत नांही ॥ श्रीआचार्यजी के मारग की परिपाटी ओर मारग की बात नांहि जानत हों रघुनाथदास को मान (विद्या को मद) सब मर्दन व्हे गयो ॥

वार्ता प्रसंग १ शुरु

यामें यह जताए जो शास्त्रादिक वेद पुरान के पढे तें श्रीआचार्यजी के ग्रन्थको सिद्धान्त जान्यो न जाइ ॥ कृपाहि को मारग हे ॥ सो कृपाहि तें जान्यो जाइ ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

पाछे परमानंद सोनी ने श्रीगुसांईजी सों कही जो महाराज रघुनाथदास तो कछू समझत नांहि ॥ तब श्रीगुसांईजी ने रघुनाथदास कों चारि ग्रन्थ अर्थ सहित पढाए (ओर) मारग की प्रणालिका कही ॥

वार्ता प्रसंग १ शुरु

(चार ग्रन्थ के नाम) १ सिद्धान्तरहस्य ग्रन्थ में सगरे मारग को सिद्धान्त वताए ॥ २ कृष्णाश्रय ग्रन्थ में एक आश्रय दृढ करि दिए ॥ ३ नवरत्न ग्रन्थ में लौकिक वैदिक चिंता दूर करि दीनी ॥ ४ सेवाफल में सेवा को फल वताइ दिए ॥ पाछे रघुनाथदास समुझन लागे ॥ श्रीगुसांईजी की कथा को भेद लीला को प्रकार सव जानन लागे ॥ वडे पंडित भए ॥

इति प्र. १ समाप्त.

वार्ता प्रसंग २

सो केतेक दिन पाछे कन्नोज में अपने घर आज्ञा मांगि के आए ॥ भगवत्सेवा में ममत्व वढ्यो ॥ तव माता पारवति सों कह्यो । जो होंतो न्यारो होउंगो ॥ श्रीठाकुरजी की सेवा करोंगो ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

यह कहेवे मे अभिप्राय यह हे ॥ जो पारवती ओर रघुनाथदास वरावरि की सखी हे ॥ तामें पारवती राजसी हे ॥ ओर रघुनाथदास तामसी भक्त हे ॥ सो पारवती ने श्रीठाकुरजी वस कीए हें, सेवा करि के ॥ सो भेद रघुनाथदास ने देख्यो ॥ सो एऊ वरावरि के ॥ तामसि सो सह्यो न गयो ॥ जो मेरे

श्रीठाकुरजी इननें मन लगाइ के वस किये हैं सो अब में बस करों ॥ तातें पारवति तें कहें ॥ में न्यारो होइ के सेवा करूंगो ॥

तब पारवती ने कही जो भलेही सेवा करि ॥ प्रीति काहू के बांटे में नांहि ॥ श्रीआचार्यजी की वार्ता प्रसंग २ शुद्ध कृपा ते होइगी ॥ पाछे रघुनाथदास न्यारे भये ॥ सो वाकी माता पारवती जल भरि लावे ॥ पात्र मांजे ॥ श्रीठाकुरजी की परचारगी सब करि पाछे अपने न्यारे घरमें आय अकेली लीटी करिके भावसों भोग धरे ॥ पाछे जलके घूंट सों उतार के लेइ ॥ श्रीठाकुरजी की सेवा शृंगार बिना सगरो राजस खानपान देह सुख सब त्याग कीयो ॥ या भांति सों करत दिन द्वे चारि बीते ॥ पाछे श्रीमथुरानाथजीने कह्यो ॥ तू धन्य हे मेरी सेवा नांहि छोडे ॥ अपनो सुख सब छोडे ॥ मनमें तापहू बहोत कीए ॥ अब तू कबहू तो दारि करि ॥ मेरो गरो अकेली लीटी× लेत खरखरात हे ॥ तब पारवती ने कह्यो जो महाराज तुम तो रघुनाथदास के इहां दारि भात खीरि आदि सब सालन्द सामग्री नित्य अरोगत हो ॥ गरो क्यों खरखरात हे ? ॥ तब श्रीठाकुरजीने पारवती सों कह्यो ॥ जो मोकों तो तेरो कीयो भावत हे । तातें लीटी अकेली अरोगत हो ॥

× ક્વચિત બાટીનો પણ ઉલ્લેખ છે.

यह कहि (यह) जताए जो प्रीति की लीटि मोकों प्रिय हे॥
अहंकार करि छप्पनभोग प्रिय नांहि हे॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

रघुनाथदास के इहांहू अरोगत हों॥ श्रीआचार्यजी की कान तें॥ परंतु तेरो कीयो वहोत भावत हे॥ यह कहि यह जताए॥ जो भक्तजन सुख लेइ श्रीठाकुरजी लीए जानिए॥ ओर इतनो कहे पारवती सों॥ सो पारवती के लिए जो में अपने गरे को नाम लेउंगो॥ तब यह सगरी सामग्री करेगी॥ पाछें प्रसाद लेइगी॥ तब मोकों सुख होइगो॥

या प्रकार पारवती को सुख विचारे॥ तब पारवती सगरो सामग्री अपने घर करन कों

वार्ता प्रसंग २ शुरु

दोरी आवती॥ दार भात सालन सब करती॥ पारवती ने विचार्यो जो श्री-ठाकुरजी सुखी होइ सा करनो॥

पाछे रघुनाथदास कछूक दिन सेवा करि॥ पाछे ज्ञान भयो जो पारवती की सेवा अहंकार करि छुडाइ॥ तातें प्रभू मो पर अप्रसन्न हे॥ तातें भगवदीय सों मिलि के चलूंगो॥ तो श्रीठाकुरजी प्रसन्न होइंगे॥ अहंकार कीए मेरी यहू सेवा जाइगी॥ यह ज्ञान श्रीगुसांईजीने मारग को सिद्धान्त वतायो हतो, तातें उनकी कृपा तें भयो॥ तब रघुनाथदास पारवती सों कहे॥ माता अब तुमही सेवा करो॥ तुम आज्ञा करो सो में करूं॥ में चूक्यो॥ तब पारवती कों कछू ईरसा तो नांही॥

शुद्ध भक्त हे ॥ सो प्रसन्न होइ रसोई करन लागी ॥ रघुनाथदास सों शृंगारादि करावे ॥ या प्रकार एसें करत पारवती के संग करि रघुनाथदास कों प्रीति भई ॥ तब दोउन को बराबरि अनुभव होन लाग्यो ॥ या प्रकार पद्मनाभदास को परिवार अलौकिक भयो ॥ या प्रकार (८४ मध्ये) वैष्णव सात भए ॥ परंतु पद्मनाभदास के कुटुंब सहित वार्ता एक जाननी तातें वैष्णव ४ भए ॥ (९६ मध्ये वै. १० भए)

રજોબાઈની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને રહસ્ય:–

આ વાર્તા વૈરાગ્ય ધર્મ રૂપ છે.

પુષ્ટિમાર્ગનો વૈરાગ્ય એ વિરહ રૂપ છે. અને તે વિરહનો અનુભવ રજો ને છે માટે આ વાર્તા પુષ્ટિના વૈરાગ્ય રૂપ કહી છે "विरहानुभवैकार्थसर्वत्यागोपदेशक" એ શ્રીઆચાર્યજીનુ નામ અહિં સાર્થક છે રજોને શ્રીઆચાર્યજીના આધિદૈવિક સ્વરૂપનો અનુભવ છે તેથી તેઓ સર્વ પ્રકારની લૌકીકાસક્તિનો સર્વાંશે ત્યાગ કરી આપશ્રીના ચરણમા સ્થિત છે " सत्यज्यसर्वविषयांस्तवपादमूलम् " એ શ્રી–ગોપીજનોના વાક્યનો અનુભવ રજો કરે છે શ્રીઆચાર્યજીના અર્થે સર્વ પ્રકારના સુખનો ત્યાગ કર્યો છે

શ્રીગોકુલનાથજી (ચતુર્થપુત્ર) સર્વોત્તમ ઉપરની પોતાની સ્વતત્ર ટીકામા "दासदासीप्रिय" ત્યા દામોદરદાસને દાસ અને રજોને દાસીમાં અગ્રગણ્ય ગણે છે એટલે આ રજો દામોદરદાસની સમાન કોટીનાં છે.

રજોને પરમાનંદરૂપ વિપ્રયોગાત્મક સ્વામિની સ્વરૂપનો અનુભવ છે (જુઓ "વાર્તા–રહસ્ય")

રજોનો શેષ ભૌતિક ઇતિહાસઃ-

કાશીમા એક ક્ષત્રી રહેતો હતો તે ગગાજીનો પૂર્ણ ભક્ત હતો તેમજ તે દ્રવ્યસપન્ન પણ હતો. તેને કોઈ સંતાન નહતુ. જ્યારે તે લગભગ ૫૦ વર્ષનો થયો ત્યારે તેને સતાનની આશા છોડી દીધી. અને પોતાના દ્રવ્યનો ઉપયોગ દાનપુણ્યમાં કરવાનો નિશ્ચય કર્યો. એજ રાત્રે શ્રીગગાજીએ તેને સ્વપ્નમા આજ્ઞા કરી કે હે ક્ષત્રી ! તું શોચ ન કર, તારે ત્યાં એક અદ્દભૂત કન્યાનું પ્રાકટય થશે. તેથી તે ક્ષત્રીએ શ્રીગગાજીના વચન ઉપર વિશ્વાસ રાખી કેટલોક સમય ધાર્મિક કૃત્યોમાં વિતાવ્યો. થોડા સમય બાદ તેને ત્યા એક પુત્રીનુ પ્રાગટય થયુ તેનુ નામ તેને રજો રાખ્યુ. રજો એક અતિ અદ્દભૂત સ્વરૂપવાન હતી તેના લલાટમા પૂર્ણ ભગવદ્દતેજ ઝળહળતુ હતુ. તે એટલી બધી સ્વરૂપવાન હતી કે તેની પરછાઈ ધરતી ઉપર પડતી. છતા તે પૂર્ણ વૈરાગ્યયુક્ત હતી. નાનપણથી જ નિત્ય તે શ્રીગગાજીનું પુજન કરવા શ્રીમહાલક્ષ્મી (શ્રીઆચાર્યજીનાં પત્ની) સાથે જતી જ્યારે તે દસ વર્ષની થઈ ત્યારે તેનું લગન એક જ્ઞાતિના છોકરા સાથે કર-વામા આવ્યુ રજોના પિતાનું ઘર શ્રીમહાલક્ષ્મીજીના પિતા ભટ્ટ જેકીસનજી સાથે જ હોવાથી તે બન્નેમા અત્યત પ્રેમ હતો. શ્રીમહા-લક્ષ્મીજીના લગ્નનુ સમગ્ર ખર્ચ રજોના પિતાએ કર્યું હતુ જ્યારે શ્રી-મહાલક્ષ્મીજી શ્રીઆચાર્યચરણ સાથે અડેલમા કાયમ રહેવા લાગ્યાં ત્યારે રજો પણ પોતાના પતિ અને પિતા સાથે અડેલમા જ રહેવા ગઈ રજોનો શ્રીમહાલક્ષ્મી સાથેનો પ્રેમ અત્યત ગાઢો હતો શ્રીમહાલક્ષ્મીજી વિના એક ક્ષણ પણ અલગ રજો રહેતી ન હતી. રજો સ્વભાવથી જ પૂર્ણ વૈરાગ્યવાન હતી તે અહર્નીશ ભગવત્સેવામાં જ પોતાનો સમય વ્યતીત કરતી શ્રીઆચાર્યચરણે રજોને માથે એક ભગવત્સ્વરૂપ (શ્રીબાલકૃષ્ણજી) પધરાવી આપ્યુ હતુ. તેની તે અહર્નીશ સેવા કરતી શ્રીઆચાર્યચરણ ઉપર તેની અતુલીત શ્રદ્ધા હોવાથી તે ભગવત્સ્વરૂપમા શ્રીઆચાર્યચરણનીજ ભાવના કરતી. અને તેની ભાવનાને અનુસાર શ્રીઆચાર્યચરણ રજોને

અનુભવ કરાવતા. રજો ને વૈષ્ણવો ઉપર પણ અત્યત પ્રેમ હતો. આવ્યા ગયા વૈષ્ણવોનુ નિત્ય મહાપ્રસાદ આદિથી સમાધાન કરતી. દામોદરદાસ હરસાની અને શ્યામદાસ સુતારની તે પૂર્ણ કાળજી રાખતી. સમય ઉપર પ્રસાદ લેવડાવતી. રજોનો જન્મ અનુમાનત સં ૧૫૪૦ લગભગ મનાય છે અને તિરોધાન સં.૧૫૮૭–૮૮નુ માનવામા આવે છે.

अब श्रीआचार्यजी महाप्रभून के सेवक रजो क्षत्राणी तिनकी वार्ता ओर–ताको भाव ॥

सो रजो क्षत्राणी लीला में ललिताजी की सखी हें ॥ इनको नाम रतिकला हें ॥ रति जो प्रीति ताकी कला ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

अथवा रति जो विहार ताकी कला जो जिनको श्रीठाकुरजी श्रीस्वामिनीजी को विहार सिद्ध होइ ॥ यही भाव में मगन हें ॥ ओर जानत ही नांही ॥ श्रीस्वामिनीजी के लिए नाना प्रकार की सामग्री करनी ॥ निकुंजादिक में रात्रि को दूधादिक अरोगावनो ॥ यह ललिताजी की सेवा हे ॥ तातें यहांहू रजो कें यह नेम जो रात्र की सामग्री नित्य नेम सों श्रीआचार्यजी कों आरोगावनो ॥ सो लीला में रतिकला को बहोत ताप हतो ॥ जो श्रीस्वामिनीजी कों परोसों (एसो) भाग्य मेरो कब होय ? ॥ काहेतें (जो) अरोगावनो सो ललिताजी की सेवा हे ॥ सो केसें मिले ? ॥ ललिताजी तो अत्यंत प्रिय मध्याजी हे ॥ सगरी लीला की सिद्धि करता ॥ सो ताप रतिकला के हृदय को हे ॥ (सो) अब श्रीआचार्यजी (श्रीस्वामिनीजी) मनोरथ पूरन करें, ताप मिटाए ॥ काहेतें ? ॥ नारायणदास ब्रह्मचारी ब्राह्मण हते ॥ तिनकी करी खीरि श्रीगोकुलचंद्रमाजी खीरि लेवे कों श्रीआचार्यजी सों कहे ॥ तब श्रीआ-

र्यजी कहे ॥ पाक केसें लियो जाइ ? ॥ पाछे श्रीगोकुलचंद्रमाजी के ग्रन्थ (वाक्य) तें लीए ॥

ओर इहां रजो क्षत्राणी हती॥ ताकी अनसखडी आप नित्य नेम सों लेते ॥ सो लीला संबंध को भाव विचारि के ॥ तथा रजो एकांगी अनन्य भक्त के वस होइके, सो प्रेमके भरतें मर्यादा छूटि जाय ॥ यामें रजो को प्रेम जताए ॥ रजो के प्रेमतें मर्यादा स्वरुप को तिरोधान होइ जातो ॥ लीला रस में मगन होइ सामग्री अंगीकार करें ॥

वार्ता प्रसंग १

सो रजो नित्य पक्वान सामग्री करि रात्रकों ले आवति ॥ सो श्रीआचार्यजी महाप्रभू आरोगते ॥ वाके नेम हतो ॥

सो एक दिन लक्ष्मन भट को श्राद्ध दिन हतो ॥ सो श्रीआचार्यजीने ब्राह्मण भोजन कों बुलाए हते ॥ तहां घृत थोरो सो चहियत हतो ॥ तब श्रीआचार्यजीने एक वैष्णव सों कह्यो जो रजो के इहां ते घृत ले आवो ॥ सो एक वैष्णव जाइ के रजो सों कह्यो ॥ जो श्रीआचार्यजीने घृत मंगायो हे ॥ तब रजोने वा वैष्णव सों कह्यो जो घृत काहेको मंगायो हे ? ॥ तब वा वैष्णवने कह्यो, जो लक्ष्मण भट्टजी को श्राद्ध दिन आज हे ॥ सो ब्राह्मण भोजन कों बुलाए हे तहां घृत घट्यो हे ॥ सो तातें मंगायो हे ॥ तब रजो ने कह्यो जो घृत मेरे नांही हे, जाय कहीयो ॥ तब वैष्णव फिरि आयो ॥ ओर श्रीआचार्यजी सों कह्यो जो महाराज रजो के घृत नांहि हे ॥ तब श्रीआचार्यजी कहे ॥ जो एकबार तू फेरि जा ॥ खीजि के कहियो जो घृत दे ॥ तब वह वैष्णव फेरि आयो ॥ रजो सों

कह्यो ॥ जो श्रीआचार्यजी खीझत हें ।। तातें घी देउ ॥ तोहू
रजोने घृत दीनो नाहीं ।। कह्यो मेरे घृत नांही हे ॥ कहां ते
देऊं ? तब वैष्णव फिरि आय श्रीआचार्यजी सों कह्यो
जो महाराज रजो घृत नांही देत ॥ पाछे और ठोरते घी
मगाई काम चलायो ।। पाछे रात्र भई ।। तब रजो सामग्री
सिद्ध करि श्रीआचार्यजी पास आई ।। तब श्रीआचार्यजी
पीठि दे बेठे ।। तब रजोने कह्यो ॥ जो महाराज, जीव तो
दोष ते भर्यो हे ।। अपराध कहा जो आप दरसन नांहि देत ।।
तब श्रीआचार्यजीने कह्यो जो आज लक्ष्मण भट्टजी को श्राद्ध
हतो ।। सो तेंने घृत क्यों नाहि दीनो ? तब रजोने कही
मेरे घी नांहि हतो ॥ तब श्रीआचार्यजीने कही सामग्री कहां
ते करि लाई ? ।। तब रजोने कही महाराज आपु के घरमें
हू घी हतो क्यों नाहीं लीए ?।। तब श्रीआचार्यजी कहे उह तो
श्रीठाकुरजी को हतो ।। वामें ते केसें लीयो जाई ? ।। तव रजोने
कही मेरे घरमें कोन हे ? ।। श्रीठाकुरजी तें अधिक आपको
स्वरूप हे । सो आपकी लीला संबधी सामग्री में ते श्राद्ध में
कैसे दऊं? ॥ और में लक्ष्मन भट्ट की लोंडी नांहि हों ॥ में तो
आपकी लोंडी हों आप मेरी परीक्षा लेन अर्थ घी मगायो, सो
पहले वैष्णव पठायो तब तो लौकिक आवेस सों घी घटयो ॥
तव आपु कहे रजो सो ले आवो ॥ यह लौकिक प्रवाह
आज्ञा जानि के मेंने घी की नांहि करि ।। सो पाछें आपु यह
मनमें विचारे जो श्राद्ध के लिये ब्राह्मण भोजन में वेगे चाहिए॥

फेरि जो उह वैष्णव आईकें कह्यो ॥ जो खीजि के कहे घी देहू ॥ तव में मर्यादा जानी ॥ जो पुष्टि कार्य में क्रोध को प्रयोजन हे नांहि ॥ काहेतें भावही सें सगरी वस्तु सिद्ध हे ॥ ओर मर्यादा में तो वेउ वस्तु विना कर्मको नास होइ ॥ (वस्तु तें) पूरनता हें ॥ तातें वस्तु के लिये क्रोध हे ॥ जो वह वस्तु आवश्यक चाहिए ॥ तातें मर्यादाकी आज्ञा हु नांहि माने ॥ ओर मर्यादा के कार्यार्थ घी हू नांहि दीयो ॥ पाछें तीसरे पुष्टि के आवेश ते मांगते तो में घी देती ॥ ओर आपुको घी मंगावनो हतो ॥ (तो) इतनो उह वैष्णव सें कहि देते ॥ जो रजो सो कहियो ॥ तेरे पुष्टि धर्म में हांनि नांहि हे, घी दीजो ॥ तो में काहेको फेरती ॥ ओर महाराज जानि वूझि के कूवा में केसे परूं ? ॥ आपुकी कृपा तें इतनो ज्ञान भयो तव में घी नांहि दीयो ॥ आपु:तो वुद्धि प्रेरक हो ॥ मेरे हृदय में वेठि के घी देवे की नांहि कहे ॥ उहां के घी मगाए ॥ सो में विना मोल की दासी हों ॥ आपु कृपा करिए ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

याहि तें शिक्षापत्र में कह्यो हें * श्रीठाकुरजी की आज्ञा तीन प्रकार की हे ॥ लौकिक आज्ञा प्रवाहसें के करन अर्थ ॥ याहि तें श्रीभागवत में लौकिक आदि कार्य यह तीन हो वरनन हें ॥ अलौकिक कार्य में श्रीठाकुरजी को आश्रय ओर भगवदीयको संग ॥ वैदिक कार्य में तीर्थ देव पूजा कर्मादि ॥ लौकिक में कुटुंव पाल्नों खानपान शरीर को सुख ॥ सो तीन्यों फलहू न्यारे न्यारे कहे

---

* જુઓ શિ. ૬ શ્લોક ૪-૫

हें ॥ लौकिक तें संसार ॥ वैदिक तें स्वर्गादिक ॥ अलौकिक तें भगवद प्राप्ति ॥ या प्रकार के भेदसों घी नांहि दीयो ॥

तब श्री आचार्यजी प्रसन्न होइ के दरसन दिए ॥ तब रजो नें सामग्री श्रीआचार्यजी के आगे राखि ॥ ओर कह्यो जो अरोगो ॥ तब श्रीआचार्यजीने रजो सों कह्यो जो आजु श्राद्ध दिन हे ॥ सो दूसरी बेर लेनो नांहीं ॥ तब रजो ने कह्यो ॥ जो महाराज घर की होइ सो लोगन के मर्यादा के लीए मति लेहू ॥ यह तो लीयो चाहिए ॥

वार्ता प्रसंग १ शुरु

ताको अर्थ यह जो लीला के भाव सों अपने निज स्वरुप सों अरोगो ॥ अब मर्यादा को आवेश कहां राखोगे ॥ लीला के आवेश में मन दीजे ॥ भक्तन को मनोरथ पूरन करो ॥ इतनो सुनत ही आप (में) पुष्टि लीला को आवेश व्हे गयो ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

मर्यादा की आज्ञा सब जात रही ॥ सामग्री अरोगे ॥ जेसे परमानंदजी गाए ॥ "हरि तेरी लीला की सुधि आवे" ॥ इतनो सुनत ही तीन दिनलों शरीरको अनुसंधान न रह्यो ॥ एसे लीला में आवेस होइ ॥ रजो को मनोरथ पूरन कोए ॥ तातें रजो एकांगी भगवदीय हे ॥

तब रजो के आग्रह तें श्रीआचार्यजी ताहू दिन सामग्री अरोगे ॥ सो वह रजो क्षत्राणी श्रीआचार्यजी महाप्रभून की एसी कृपापात्र भगवदीय ही ॥ ताते इनकी वार्ता को पार नांही ॥ सो कहां तांई लिखिये ॥ (९६ मध्ये वै. ११ भये)

८४ मध्ये वैष्णव ५ वार्ता समाप्त ॥

શંકા સમાધાન અને રહસ્યઃ—

પૂર્વપક્ષીઃ--આ વાર્તામાં વર્ણાશ્રમ ધર્મનો સ્પષ્ટ વિરોધ કહેલો છે અને શ્રીઆચાર્યચરણ વર્ણાશ્રમ ધર્મના અત્યત પક્ષપાતી છે માટે આ વાર્તા સશોધ્ય છે.

સિદ્ધાન્તી—આપ પુષ્ટિમાર્ગના જ્ઞાનથી પૂર્ણ પરિચિત નથી તેમ અમને આ પ્રશ્નથી સહજ જણાઈ આવે છે બીજા પ્રકારે સ્પષ્ટ કહીએ તો આપ લોક અને શાસ્ત્રના જ્ઞાનમાં પણ અર્ધદગ્ધ છો એટલે જ આપને આવા પ્રકારના કુતર્કો આવી નિર્દોષ સર્વોત્કૃષ્ટ દશાને સમજાવનારી વાર્તામાં થાય છે

આપ વર્ણાશ્રમ ધર્મનુ સ્વરૂપ જાણો છો? વર્ણાશ્રમનો ધર્મ ક્યા પ્રકારનો, કેવો અને કેટલો બલિષ્ઠ છે તે જાણો છો? તેમજ પુષ્ટિ ભક્તિનુ સ્વરૂપ આપ જાણો છો?

પૂર્વપક્ષી--મારા જ્ઞાનથી હું એટલુ કહી શકુ છું કે વર્ણાશ્રમ ધર્મનુ સ્વરૂપ સ્મૃતી પ્રતિપાદ્ય આચાર વિચારનું છે. અને તે વર્ણાશ્રમ ધર્મ એ દેહનો ધર્મ છે અને તેનુ બલ પણ મર્યાદીત છે.

જ્યારે પુષ્ટિ ભક્તિ એક સ્વતત્ર અમર્યાદિત અને પ્રમેયબલ વાળી હોઈ આત્માના ધર્મ રૂપ છે. વળી વર્ણાશ્રમ ધર્મ કાલાધીન અને પરિવર્તનીય છે જ્યારે પુષ્ટિ ભક્તિ રૂપી ધર્મ ત્રિકાલાબાધિત અને સર્વ સમયમાં સર્વ સ્થલે સર્વ પ્રકારથી અપરિવર્તનીય છે. મારી સમજ પ્રમાણે આ ઉપરોક્ત શાસ્ત્ર સિદ્ધ વાત વિદ્વાનોને માન્ય છે.

સિદ્ધાન્તી—યદિ આપ ઉપરોક્ત કથનને સ્વીકારો છો તો આપના મુખથી જ આપ કહી શકશો કે પુષ્ટિ ભક્તિ રૂપી પ્રમેયબલયુક્ત ત્રિકાલાબાધિત ધર્મ આગળ વર્ણાશ્રમ ધર્મ ક્ષુદ્ર અને નિસ્તેજ છે તેથી વર્ણાશ્રમ ધર્મ આશ્રયને યોગ્ય નથી જ.

પૂર્વપક્ષી—હા, તે તો અમે સ્વીકારીએ છીએ જ કે વર્ણાશ્રમ ધર્મ ભક્તિમાર્ગીય જીવો ને માટે આશ્રયરૂપ નથી કારણ કે તે દેહ

ધર્મ છે તેમજ આ કલિયુગમા તેનુ વિશુદ્ધ રૂપમા સાગોપાગ અસ્તિત્વ પણુ નથી છતા તે ત્યાજય પણુ નથી જ.

સિદ્ધાન્તી—અમારો એ સિદ્ધાન્ત જ નથી કે વર્ણાશ્રમનો હરેક મનુષ્યે ત્યાગ કરવો કારણુ કે તેના ત્યાગથી પાખડીત્વ અને અશુદ્ધતા પ્રાપ્ત થાય છે માટે શ્રીમદાચાર્યચરણુના કથનાનુસાર જેવા સ્વરૂપમા તે ધર્મ પ્રાપ્ત થતો હોય તેવા સ્વરૂપમા તેનુ પાલન અવશ્ય કરવુ. પરતુ તે કેવી રીતે ? ભક્તિરૂપી આત્મધર્મમા જે વખતે જેટલી આવશ્યક્તા તેની હોય તેટલા જ પ્રમાણુમા અને તે પણુ કપટ રૂપથી જ એટલે મનરહિતપણે

વળી આ સર્વ પ્રકાર સાધન દશાના ભક્તોને માટે છે જેમને ભક્તિ પૂર્ણુ રૂપે પ્રાપ્ત થઈ નથી તેમને માટે જ.

જ્યારે વૈદિક કર્મોમા અને જ્ઞાનમા પણુ વર્ણાશ્રમનો ત્યાગ કેટલીય જગ્યાએ કરવાનો સ્વય શાસ્ત્ર આજ્ઞા કરે છે જેવા કે.— બ્રહ્મચર્ય અવસ્થામા, સન્યાસ અવસ્થામા, તો પછી ભક્તિમાં તેનો ત્યાગ હોય તેમા કહેવુ જ શુ ?

એક વિપ્રને બ્રહ્મચર્ય અવસ્થામા વૃદ્ધિ સૂતક આદિ કઈપણુ શાસ્ત્ર રીતીથી લાગતુ નથી તેવી જ રીતે સન્યાસમા પણુ છે

જ્યારે કર્મ જ્ઞાનાદિની સન્યાસાદિ અવસ્થામા આવા પ્રકારના ત્યાગો રહેલા છે તો ભક્તિની ઉત્કૃષ્ટ દશામા (ભક્તિના સન્યાસરૂપ વિરહદશામા) વર્ણાશ્રમ તો સહજ ત્યાગ થઈ જાય તેમાં સદેહ હોય જ કેમ ? ભક્તિનું સ્વરૂપ જ માહાત્મ્ય જ્ઞાનપૂર્વક સુદ્રઢ સ્નેહનુ છે એટલે તે સિદ્ધ થયા પછી (સુદ્દઢ પ્રેમ પ્રભુમા થયા પછી) તેને માટે શાસ્ત્રીય વિધિ નિષેધનુ સ્થાન જ હોતુ નથી. સૂરદાસજી પણ એજ સમજાવે છે કે सूरदास जाके नेम धरम व्रत सो प्रेमी कोडी को ते પ્રેમનુ સ્વરૂપ

જ એવું છે જેમા લોક અને વેદના રાગનો અને જ્ઞાનનો પૂર્ણ અભાવ છે. તો તેનુ અસ્તિત્વ તો હોય જ ક્યાથી ?*

હવે એ પ્રેમમાં પણ વિપ્રયોગની કોટી સ્વતત્રરૂપ હોવાથી મુખ્ય છે. એટલે ધર્મી વિપ્રયોગવાળા ભક્તોને પોતાના સ્નેહી તરફના સુખની મુદ્દલે અપેક્ષા રહેતી નથી જ. તેમજ સ્વરૂપ તકની અપેક્ષા રહેતી નથી આટલી નિષ્કામભક્તિ અને પૂર્ણ સુખનો ત્યાગ કેવલ આ ધર્મીવિપ્રયોગ દશામા જ છે. તે ભક્તો કેવલ પોતાના સ્વતત્ર ભાવમા જ વિલસે છે.

યદ્યપિ પ્રેમમાં સ્વય લોકવેદના રાગનો અભાવ હોવાથી તે ભક્તિના સન્યાસરૂપ છે. તદપિ તે સન્યાસરૂપ પ્રેમની પણ આતરીક સન્યાસ અવસ્થા તે આ ધર્મીવિપ્રયોગ અવસ્થા છે. એટલે તે અવસ્થામાં બાહ્યક્રિયાત્મક ભાવ (કામભાવ)ની **તેમજ સ્વરૂપની પણ અપેક્ષા નથી હોતી તો બિચારા વર્ણાશ્રમ ધર્મની અપેક્ષા તો હોય જ કેમ ?**

આ ધર્મીવિપ્રયોગવાળા ભક્તો સ્વતત્ર ભક્તો છે અને તે આતરીક સન્યાસ અવસ્થાવાળા છે ત્યાં વેષ ક્રિયા આદિની અપેક્ષા નથી કેવલ ભાવમા જ વિલસનારા ભાવાત્મક ભક્તોની તે કોટી છે.

તે ભક્તિનુ સ્વરૂપ નાદરજી પોતાના ભક્તિસૂત્રમા આ પ્રમાણે સમજાવે છે —

૨ ॐ सा कस्मै परमप्रेमरूपा । તે ભક્તિ ઇશ્વરમા પરમ પ્રેમરૂપા છે.

૩ ॐ अमृतस्वरूपा च । અને તે અમૃત સ્વરૂપા છે.

૪ ॐ यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवत्यमृतीभवति तृप्तोभवति । જેને પ્રાપ્ત કરીને મનુષ્ય સિદ્ધ થાય છે અને અમૃત થાય છે અને તૃપ્ત થાય છે.

---

* સરખાવો અષ્ટ સખાની વાણી —

केसे कीजे वेद कह्यो विधि निषेध को नाहिन ठोर रह्यो ।
दु:ख को मूल सनेह सखीरी सो उर पेठ रह्यो ।
परमानंद प्रेम सागरमें पर्यो सो लीन भयो ।

તેઓને અપેક્ષા મુદ્દલે હોય જ નહિ તે ભક્તિનુ સ્વરૂપ એવું છે કે તેને પ્રાપ્ત કરીને ભક્ત ભક્તિમા પાગલ થઈ જાય છે, નિરક્ષેપ થઇ જાય છે લોકવેદાતીત થઈ સ્વય આત્મારામ થઇ જાય છે. (જુઓ ૪–૫–૬ સૂત્ર) હવે આવી દશામા બિચારો ક્ષુદ્ર બાહ્ય ધર્મરૂપ દેહધર્મ (વર્ણાશ્રમ) ટકી જ ક્યાં શકે ?

આવી ભક્તિમાં સૂરદાસજીના કથનાનુસાર "वेद पुरान ज्योतीष बडे ठग जानत फासी जीको।" એનો વસ્તુત અનુભવ થાય છે આ ભક્તિ-માર્ગની સન્યાસરૂપ વિપ્રયોગ અવસ્થામા ન વેદની સ્થિતિ છે ન લોકની. કારણુ કે તે ભક્તિ પ્રાપ્ત થવાથી તે ભક્ત સ્વયં લોકવેદાતીત થઈ જાય છે.

વળી શ્રીહરિના સમાન રૂપ, ગુણુ અને શીલવાળા વૈષ્ણવોમા જ્ઞાતિબુદ્ધિ રાખવાથી મહાન દોષ થાય છે તેવુ શાસ્ત્ર કહે છે. (જુઓ ભાર-તેંદુનુ નારદ ભક્તિસૂત્ર ઉપરનું ભાષ્ય, તેમાં અનેક પ્રમાણોનો સંગ્રહ છે)

नयस्यजन्मकर्मीभ्यांन वर्णाश्रमजातिभिः।
सज्जतेस्मिन्नहंभावो देहेवै सहरेः प्रिय॰ ॥

આવા વૈષ્ણવોમાં જાતિબુદ્ધિ કરવી તે ૬૪ અપરાધોમાનો એક અપરાધ છે.

ॐ नास्तितेषुजातिविद्यारूपकुलधनक्रियादिभेदः (ना०म०सू०७२)

અર્થ—એવા (ભક્તો)મા જાતિ, વિદ્યા, રૂપ, કુલ, ધન અને ક્રિયા આદિનો ભેદ નથી

ॐ यतस्तदीयाः। (७२)

અર્થઃ—કેમકે એ (ભક્તો) એના છે

એજ પ્રમાણે શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુએ પણુ શિક્ષાપત્રમા કહ્યું છે.

આતો થઈ શાસ્ત્રીય વાત હવે આપણે સાંપ્રદાયિક વાત કરીએ આ વાર્તાના શબ્દો જોવાથી આપણે એ સ્પષ્ટ સમજી શકીએ છીએ

કે આચાર્યચરણે મર્યાદા રૂપથી (આચાર્ય રૂપથી) આ સામગ્રી અગીકાર કરી નથીજ. પરતુ લીલાના નિજસ્વરૂપ શ્રીસ્વામિની રૂપથીજ. જુઓ આ શબ્દો:-

ओर इहां रजो क्षत्रानी हती॥ ताकि अनसखडी आपु नित्य नेम सों लेते सो लीला संवंध को भाव विचारि के × ×× लीला रस में मगन व्हे सामग्री अंगीकार करे × × + ताको अर्थ यह जो लीला के भावसों अपने निज स्वरुपसों आरोगो (શ્રી હરિ૦) એટલે એ સ્પષ્ટ છે કે શ્રીઆચાર્યચરણ શ્રીસ્વામિની રૂપથી સામગ્રી આરોગતા માટે અહિં વર્ણાશ્રમ ધર્મનો પ્રશ્નજ રહેતો નથી.

શ્રીઆચાર્યચરણનું સ્વરૂપ શ્રી ગુસાંઇજી " વસ્તુત કૃષ્ણ એવ" એમ કહે છે. એટલે નિજ વિવિધ પ્રકારના સ્વરૂપોનો અનુભવ શ્રી આચાર્યચરણ ભક્તોને પોતપોતાની ભાવના અનુસાર કરાવે તેમા જરાય આશ્ચર્ય હોયજ નહિ અને તેથીજ કૃષ્ણદાસજીએ (અષ્ટસખા) ગાયુ છે કે कोऊ कहे विप्र, कोऊ विविध पंडित कहे, कोऊ कहे अंश, कोऊ आत्मारामी । स्त्रकीयजन एक, मन निश्चे निरधार कीयो वस्तुतः कृष्ण जे वंधे दामी એટલે નિજજનો ને તો શ્રીઆચાર્યચરણે પોતાના દામોદર સ્વરૂપનોજ અનુભવ કરાવ્યો છે.

आचार्यवान् पुरूषोवेद । आचार्यमाम् विजानीयात् । આવા અનેક શાસ્ત્રીય વાક્યોથી પણ શ્રીઆચાર્યચરણનું ઇશ્વરત્વ સિદ્ધ છે તેથી આચાર્ય-

---

કોટાના સુપ્રસિદ્ધ વિદ્વાન અને સંપ્રદાયના મર્મજ્ઞ શ્રીયુત ગોકુલદાસજી મુખીયાજી (શ્રીમથુરેશજીના) આ પ્રસંગ માટે આ પ્રમાણે લખે છે.—

जौन पुस्तकमें अनसखडी अरोगने का लिखा है उनही पुस्तक में यह बात स्पष्ट की गई है कि श्रीआचार्यचरण स्वामिनी रुप से सामग्री अरोगते । इस लीए इस वार्ता से वर्णाश्रम धर्म में कीसी भी प्रकार की हानी नहि होती है ।

માં પ્રમેયબલ રહેલુ છે, અને તે પ્રમેયબલથી યદિ લોકમાં કોઈપણ આચાર્ય કવચિત્ કોઈ લોકવેદ વિરૂદ્ધ સાહસ કરે તો તે તેમના ઇશ્વરત્વના સ્પષ્ટીકરણ રૂપ છે. તેથી પણ આ વાર્તા શ્રીઆચાર્યચરણના પ્રમેયબલને દેખાડનારી છે–અને આવા ચરિત્રો શકરાચાર્ય આદિ અન્ય આચાર્યોમા પણ સ્પષ્ટ થએલાં છે

શ્રીગોપીજનોની માફક રજોને ભક્તિ પ્રાપ્ત થયેલી હોવાથી તે લૌકિક સ્ત્રી નહિં હતી કિંતુ શ્રુતીઓના પણ ભાવરૂપ હતી- આથી આ વાર્તામા લૌકીક દૃષ્ટીને સ્થાન નથી જેને સ્વતત્ર ભક્તિ પ્રાપ્ત થાય છે તે આત્મારૂપ થાય છે તે ન તો સ્ત્રી રહે છે ન પુંરૂષ તેમાથી સ્ત્રી અને પુ બન્ને ભાવ નષ્ટ થઈ જાય છે–

પૂર્વપક્ષી –આપનો ઉત્તર સપ્રમાણ અને યથાર્થ છે એટલે હવે અમને એ શકા રહેતી નથી કે શ્રીઆચાર્યચરણે આમા વર્ણાશ્રમ ધર્મનુ ઉલ્લઘન કર્યું છે અથવા તો આ વાર્તા કલ્પિત છે કિંતુ હવે અમે એમ કહી શકીએ છીએ કે આ વાર્તા શુદ્ધ ભક્તિની પરમોત્કૃષ્ટ દશાની સ્થિતિનુ સુનિપૂણ પ્રતિપાદન કર્તા હોઈ અવશ્ય મનનીય છે

પરન્તુ આ વાર્તાને ન સમજી અન્ય સામાન્ય લોકો આ સિદ્ધાતનો દુરૂપયોગ કરે (એટલે વર્ણાશ્રમ ધર્મનો ત્યાગ કરે) તો તેની જવાબદારી આ વાર્તા પ્રગટ કરનારને માથે છે કે નહિં ?

સિદ્ધાન્તી —ત્યા પણ આપની ભૂલ થાય છે દૃષ્ટાત તરીકે- શ્રીમદ્ભાગવતમા વ્રતચર્યા રાસાદિ પ્રસંગોનુ શ્રી શુકે વર્ણન કર્યું છે અને તેના રહસ્યને અજ્ઞાની પુરૂષ ન સમજી વિરૂદ્ધાચરણ કરે અથવા ટીકા કરે તો શુ તેની જવાબદારી શ્રીશુક ઉપર રહે છે કે ?

શ્રીશુકે તો એવી પરમ પુનિત શ્રીકૃષ્ણની નિર્દોષ લીલાઓનું વર્ણન કર્યું છે કે જેના શ્રવણથી જ મનુષ્ય કૃતકૃત્ય થાય છે અભાગ્ય વશ કોઇ ઉંધે રસ્તે જાય તો તેની જવાબદારી તેની અજ્ઞાનતાની જ છે શ્રીશુકની નહિ તેજ પ્રમાણે અહીં સમજવુ

ग्रन्थस्य स्वातन्त्र्येण साकल्येन च प्रकाशनमेवाभ्यरोचेत, किन्तु तथा प्रकाशितस्तु स केवलं विद्वत्समाजस्यैव सम्मानपात्रमभिनन्दनीयश्च स्यात्, न तु संस्कृतभाषासम्बन्धिस्वल्पज्ञानं धृतवतो जनसाधारणस्यापि, तेन वाञ्छितस्य संस्कृतवार्ताप्रचारस्याभावः कदाचित्सम्मुखमापतेत्, अतः "ग्रन्थोऽसौ मूलेन (भाषावार्तारूपेण), तदुपरि श्रीहरिरायमहानुभावचरणप्रकाशितेन भावप्रकाशेन, तत्सम्बन्धिटिप्पणान्तरेण च सह प्रकाशितः सर्वोपयोगितामावहन् भूयांसं प्रचारमधिगमिष्यतीति दृष्ट्या मूलादिभिः सहैव यथासुविधं खण्डश एव प्रकाशमानेतुं निरचीयत। अस्तु!

तस्यैव ग्रन्थरत्नस्य प्राथमिक वार्ताष्टकं प्रारम्भिकभागरूपेण प्रकाशमुपनतस्तत्रभवतां भवतां करयुगलीमलंकरोति। एतदवलोकनेन विदितं स्याद् यत्—साकल्येन प्रकाशमुपनतेनानेन भक्तिमार्गीयसंस्कृतसाहित्यं विकलतां विजहद् भृशं भ्राजिष्यते। यतो हि भक्तिमार्गसाहित्ये भाष्यनिबन्धादिग्रन्थानां बाहुल्ये सत्यपि चरित्रग्रन्थानां तु नितान्तमभाव एव। भाष्यनिबन्धेषु संप्रदायस्य सिद्धान्तानां रहस्यानां च विद्यमानेऽपि विशदस्वरूपे तेभ्योऽमुमनाकलयतां संसारव्यवहारमाचरतामपि भक्तिमार्गीयत्वाभिमानिनामनधिगतशास्त्रशाणोत्तेजितसुशेमुषीकाणां मन्दाधिकारिणां हृदयेषु सरलया गिरा पुष्टिभक्तिमार्गरहस्यानि प्रवेशयत संस्कृत भाषाभाषिणां मनीषिणामपि शास्त्रकान्तारसततपरिभ्रमणपरिश्रान्ताया मतौ च ऋते क्लेशादेव शुद्धाद्वैतसिद्धान्तानवतारयतोऽस्य ग्रन्थस्य साम्प्रदायिक साहित्ये महद् गौरवम्, प्रपूर्यते चानेन संस्कृतसाम्प्रदायिकसाहित्यक्षेत्रे रिक्तमतिमहनीयं चरित्रग्रन्थस्थानम्।

ग्रन्थोऽयं हिन्दीभाषायां राजमानानां चतुरशीतिवैष्णववार्तानां

श्रीनाथदेवकृत: संस्कृतानुवाद: । अनुवादत्वादेव यथास्थानं निवेशयितुं शक्यत्वेऽप्यलंकाराणां नास्त्यस्मिन् सन्निवेशः । अनुवादस्यानुवादत्वं तु तत एव सिद्ध्यति, यदा कस्यांचिदेकस्यां भाषायां सालंकारो निरलंकारो वा समुपलभ्यमानः कोऽप्यर्थो भाषान्तरशब्दैस्तथैवोपस्थाप्येत । शब्दालंकारा यद्यनुवादग्रन्थे प्रयासमन्तरा स्वयमेव निविष्टाः स्युस्तर्हि न ते कदाचिदपि तदनुवादत्वविघातकाः । यतो हि कीदृशा अपि स्युर्नाम शब्दाः, अर्थोपस्थापनं तु कैश्चिदपि करणीयमेव भवेत् , यदि कुत्रापि अश्राव्यादिशब्दानां स्थाने सुभाष्याणि श्रवणमधुराणि मनोहराणि च पदानि प्रयुज्येरन् , तदा को नाम दोषो भवेच्छब्दालंकाराणाम् । किन्तु त एव यदि श्रममङ्गीकृत्यापि निर्बन्धेन निबद्धा भवेयुस्तर्हि पाठकानां मनः क्षणं प्रतिपाद्यविषयादाक्षिप्य स्वशोभानिरीक्षणाभिमुखीकरणेन, सातत्यप्रयोजितत्वादरुचिजनकत्वेन, कविकौतुकमाकलयतां तत्त्वान्वेषिणां वैराग्यवतां कदाचिदश्रद्धेयतोद्भावकत्वेन तेषां दोष एव । अतो नास्ति निर्बन्धप्रयोजितानां शब्दालङ्काराणां कुत्राप्यावश्यकता, विशेषतोऽनुवादग्रन्थे, तत्रापि च भक्तिमार्गीये चरित्रग्रन्थे । अर्थालङ्कारास्तु सर्वथैवानुवादग्रन्थे अप्रयोज्या एव भवन्ति । यतो हि अर्थस्यालङ्करणेऽर्थान्तरस्यैवावश्यकता निश्चिता, तद्यद्यनुवाद्यग्रन्थेऽनुपलभ्यमानं पाण्डित्यप्रचिकाशयिषुणाऽनुवादग्रन्थे निवेश्येत, तर्हि सोऽनुवाद एव नास्ति, किन्तु वस्त्वन्तरम् ; अनुवादस्तु स एव नाम यत्—केषुचिच्छब्देषु यथोपलब्धस्य वस्तुनोऽन्यूनानधिकीकृतस्य तथैव शब्दान्तरैरुपस्थापनम् । कस्यचिद्वस्तुनो रूपकोपमादिभिरलंकारैः परिवर्द्धनं स्फुटमेव तस्य स्वरूपान्तरकरणम् । अतोऽर्थालंकाराणामनुवादग्रन्थेषु सर्वथा नास्त्येवावश्यकता । ततो यदुच्यते कैश्चिन्महाशयैः "अस्य ग्रन्थस्यालंकारिकी

सुश्लाघ्या नास्ति भाषेति" तदनवधेयम्। अनुवादस्य सकलत्व सफलत्वं च भाषान्तरे प्रसिद्धस्य वस्तुनो याथातथ्येन स्वेष्टभाषयोपस्थापने सत्येव भवति, तदस्मिन् ग्रन्थे पर्याप्ततयावलोक्यते। अहं तु विश्वसिमि यत्—सरलयाप्यर्थगम्भीरया, संक्षिप्तयापि विशदस्वरूपया समासव्यासादिप्रौढि गुणवत्या गिरा मूलार्थं यथातथमनुवदन् भट्ट. श्रीमान् श्रीनाथदेव स्वकीयं भूयस्तरां पाण्डित्यं प्राचीकटत्, महतामप्यन्येषां कृते कार्यमेतन्न सुकरं स्यादिति।

विद्याविभागसंचालकैः पं कण्ठमणिशास्त्रिभिः स्नेहवशंवदत्वेन विशनगरवास्तव्यैः प. पुरुषोत्तमशास्त्रिभिश्च कार्यान्तरव्यासक्तत्वेन यद् आदर्शपुस्तकान्तररहितस्य प्रतिपदं प्रायोऽशुद्धस्यास्य ग्रन्थस्य कठिनतमं संशोधनकार्यं स्वल्पकेऽपि न्यधायि, तच्चिरायुष्मतामाचार्य कुमारश्रीयदुनाथलालजीशर्मणामध्यापनकार्यं कुर्वन्नपि यथामति कथंचित् परिपूर्य कम्पमानेन हृदा तेषामेव पुर स्थापये, प्रार्थये च चक्षुर्दोषेण मतिभ्रमेण वा सम्भाव्यमाना यदि काश्चित् संशोधनत्रुटयो जागरिताः स्यु साम्प्रतमपि, तर्हि प्रथमप्रयासे समुदात्तचित्तैः क्षमावित्तैर्भवद्भि क्षन्तव्या इति।

अनावश्यकविस्तरमचिकीर्षुर्ग्रन्थस्यास्य समुचितसम्मानाय सुधीसमुदायं सम्प्रार्थ्य, अवशिष्टांशप्रकाशने विघ्नविहतिं कार्यकर्तॄणां शश्वदुत्साहाभिवृद्धिं च श्रीपतिपदारविन्दयोरभ्यर्थयमानः समुपैमि विरामम्।

श्रीशु सं तृ पोठेश्वरैःसह
हालोलस्थितौ
द्वि. श्रा. कृ. ५ सं. १९९६

विनीतनिवेदकः—
पु. लक्ष्मीनारायणशास्त्री
साहित्यभूषणः

श्री हरिः

अथ श्रीनाथदेव कृता

संस्कृत वार्ता मणिमाला

वार्ता १

जयत्यनन्तलीलः श्रीगोवर्द्धनधरः प्रभुः ॥
व्रजनागरिकः कृष्णः साङ्गोपाङ्गः सुपार्षदः ॥१॥
अथासीद्दक्षिणे देशे खंभंकाकरसंज्ञके ॥
यज्ञनारायणो भट्टस्तैलङ्गो याज्ञिको द्विजः ॥२॥
सभारद्वाजगोत्रोऽग्न्यस्तैत्तिरीययजु कृती ॥
वेदादिसर्वशास्त्रज्ञो विष्णुस्वामिमतानुगः ॥३॥
तत्सुतोऽभूत्सोमयाजी गंगाधर इति श्रुतः ॥
तस्य सूनुर्गणपतिस्तस्य श्रीवल्लभः सुतः ॥४॥
तस्य श्रीलक्ष्मणो यज्वेल्लम्मगारुपतिर्महान् ॥
तस्य पुत्रा रामकृष्णश्रीश्रीवल्लभकेशवाः ॥५॥
तेषां मध्येऽभवच्च श्रीवल्लभःसोग्निरेव हि ॥
आचार्यो भगवान्साक्षादाज्ञया श्रीहरेरिह ॥६॥
महालक्ष्म्यां तस्य गोपीनाथो ज्येष्ठः सुतो वलः ॥
यस्यैक आसीत्तनय पुरुषोत्तम इत्यलम् ॥७॥
कृष्णोऽभूच्छ्रीवल्लभस्य कनिष्ठो विट्ठलः सुतः ॥
आचार्यरत्नं स महान्यतो गिरिधरादयः ॥८॥
गिरिधरश्च गोविन्दो बालकृष्णश्च वल्लभः ॥
रघुनाथो यदुपतिर्घनश्यामः इति क्रमात् ॥९॥

रुक्मिण्यां षट् सुता जाताः पद्मावत्यां तु सप्तमः ॥
यत्संततिरिहाद्यापि राजते श्रेयसे नृणाम् ॥१०॥
तान्नौमि, श्रीमदाचार्यान् श्रीवल्लभविभावसून् ॥
विधूंश्च श्रीविट्ठलेशान्यान्प्रपन्ना हरिं गताः ॥११॥
चतुरशीतिकलक्षवियोनितः समनु कृष्णरतान्हरिरात्मनि ॥
समनुगृह्य यथा समशेषतां तदनु वृत्तमथेह तथोच्यते ॥१२॥
श्रीमदाचार्यगोस्वामिसेवकानां हरिं जुषाम् ॥
वर्णानामिह लिख्यन्ते वार्ता. स्त्रीणां तथा नृणाम् ॥१३॥
गोकुले गोविन्दघट्टे वेद्यामाचार्यसूरयः ॥
आसीना विश्रमंतस्ते क्वचिद्दिव्यं स्म चिन्तयन् ॥१४॥
महाप्रभोरिति ह्याज्ञा वचनं यदिह त्वया ॥
जीवानां ब्रह्मसम्बन्धः कार्यं स च कथं भवेत् ॥१५॥
जीवाः स्वभावतो दुष्टाः कलिकाले विशेषतः ॥
इति चिन्तातुरेष्वाशाच्छ्रीगोपीजनवल्लभः ॥१६॥
आविर्भूयार्यानपृच्छत्कुतश्चिन्तातुरा स्थ भोः ॥
श्रुत्वेत्यार्याः प्रोचुरहो जीवा दुष्टा इति स्वयम् ॥१७॥
भवता चेदसम्बन्धो ब्रह्मणस्ते कथं घटेत् ॥
इत्याकर्ण्याथ विभुनाचार्यान्प्रत्युक्तमादरात् ॥१८॥
जीवानां ब्रह्मसम्बन्धबोधनं कार्यमार्यकाः ॥
तानहं स्वीकरिष्यामि भवन्नामोपदेशतः ॥१९॥
निवृत्तसर्वात्मदोषानिति श्रावण शुक्लके ॥
एकादश्यामर्धरात्रे पवित्राद्वादशीयुजि ॥२०॥

साक्षाद्भगवता प्रोक्तं पवित्रं श्रीप्रभोर्गले ॥
तस्मिन्कालेऽर्पितं त्वार्यैः सिता खण्डीकृतापि च ॥२१॥
तदक्षरश आचार्यैः स्वानुभूतं निरूपितम् ॥
स्वसिद्धान्तरहस्याख्ये ग्रन्थे समवधार्यताम् ॥२२॥
अथ कस्मिँश्चन पुरे श्रीमदाचार्यसेवकः ॥
श्रीदामोदरदासाख्यो हरसानीति विश्रुतः ॥२३॥
क्षत्री समर्पितस्वात्मा श्रीवल्लभपदानुगः ॥
दमलेति च संबोध्य वल्लभाचार्यदीक्षिताः ॥२४॥
प्रीत्या यस्याग्र इत्याहुरेष पुष्टिपथस्तव ।
हितार्थं वै प्रकटितस्तथा भागवतीं कथाम् ॥२५॥
रसभावभृतां नित्यं कथयन्ति स्म ते रहः ॥
किंच वार्ता भगवतो न भवेद्वा यदा क्वचित् ॥२६॥
तदेति कथयन्तिस्म दमलाऽजनि भोश्चिरम् ॥
प्रभोर्वार्ता नहि कृता क्रियतामधुनेति यत् ॥२७॥
स तादृगन्तरङ्गोभूद्येन गोपीपतेः श्रुतम् ॥
श्रीवल्लभाचार्यवर्यब्रह्मसम्बन्धबोधनम् ॥ ॥२८॥
तदनु श्रीमदाचार्यैर्दामोदर किमु श्रुतम् ॥
त्वया भगवता प्रोक्तमिति पृष्टो जगाद स ॥२९॥
श्रुतं भगवता प्रोक्तं न तु बुद्धं मयेति किम् ॥
तदा श्रीवल्लभचार्यैं सूचितं भोः प्रभोर्मयि ॥३०॥
ब्रह्मसम्बन्धवचनं प्रोक्तं जीवहिताय हि ॥
तद्द्वाराङ्गीकृतिर्विष्णोः सर्वदोषनिवृत्तितः ॥३१॥

तदाज्ञाय स तुष्टोऽभूदात्मानं सततं मुदा ॥
कृतार्थं भुवि मन्वान॰ कृपयाचार्यपादयो॰ ॥३२॥
जात्वन्तिके भगवत॰ स्वाचार्यैं प्रार्थितं हृदा ॥
मा दामोदरदासस्य संस्था भूत्पुरतो मम ॥३३॥
भगवञ् श्रौतमार्गं च माप्नोत्विति विषादतः ॥
तदोमिति प्रदायैव ह्यार्येभ्योऽन्तर्हितो हरि॰ ॥३४॥
एकदा श्रीविट्ठलेशा गोस्वामिचरणाः स्थितम् ॥
श्रीदामोदरदासाख्यं पृष्टवन्त॰ स्वसेवकम् ॥३५॥
भो दामोदरदास त्वं श्रीमदाचार्यदीक्षितान् ॥
किं स्वरूपान्विजानासि वदेति स ततोऽवदत् ॥३६॥
यो ह्यत्र जगदीशोऽस्ति सर्वैर्गीतो महान् प्रभु॰ ॥
ततोपि ह्यधिकान् जाने स्वाचार्यान् वल्लभाभिधान् ॥३७॥
इत्याकर्ण्यैव गोस्वामिश्रीविट्ठलमहाशया॰ ॥
उक्तवन्तः कथमिदमीश्वरादपितेऽधिका॰ ॥३८॥
ततो दामोदर प्राह भो श्रीमद्विट्ठलेश्वरा॰ ॥
देयं गुर्वथवा दातेत्येतदेव विचिन्त्यताम् ॥३९॥
पार्श्वेधिकं धनं यस्य यदि राति न कर्हिचित् ॥
तर्हिस्वित्तस्य किं कोर्थो यो ददाति स वै गुरुः ॥४०॥
श्रीशाख्यं यद्धनं सर्वस्वमाचार्या ददुर्यदि ॥
अस्मादशेषु जीवेषु ततस्तेऽभ्यधिका मता॰ ॥४१॥
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य श्रीविट्ठलमहाशयाः ॥
संतुष्टहृदया स्वीयमनुगृह्णन्ति ते स्म तम् ॥४२॥

किं चैकदा श्रीगोस्वामिश्रीमदाचार्यसूनव॰ ॥
स्वैरं स्थिता रमन्ते स्म पार्श्वे कुम्भनदासक॰ ॥४३॥
गोविन्दस्वामिनामान्ये तथा द्वित्राश्च सेवकाः ॥
उपविष्टा रहस्यग्रे हसन्तो हासयन्ति च ॥४४॥
तदैव दामोदराख्यमालोक्यागतमन्तिके ॥
उत्थिता॰ श्रीविट्ठलेशा॰ श्रीगोस्वामिमहौजसः ॥४५॥
तत्रोपवेशयामासुः स्वान्तिके तं महादरात् ॥
तदा दामोदरेणोक्तं श्रीगोस्वामिपुर॰ स्वत. ॥४६॥
महाराज न मार्गोयं सुनिश्चिन्ततया मत॰ ॥
किन्तु कृच्छ्रेणोपगते हरौ चिन्तात्मभावतः ॥४७॥
तदा गोस्वामिभिः प्रोक्तं सत्यमुक्तं त्वयानघ ॥
परन्तु श्रीमदाचार्यकृपा यत्र यदा तदा ॥४८॥
हरौ जनस्यार्तिचिन्ता भवित्रीत्यवसीयते ॥
विनैतच्छ्रीमदाचार्यानुग्रहान्नेति मे मति॰ ॥४९॥
तदा दामोदरेणोक्तं दण्डवत्प्रणिपातत॰ ॥
महाराज बताऽस्माकं धर्मो विज्ञापनं सकृत् ॥५०॥
अग्रे तु श्रीभवन्तो हि गुरव शुभकारिणः ॥
परमेतादृशो मार्ग इत्याचार्यमुखाच्छ्रुतम् ॥५१॥
इत्याश्रुत्य प्रसन्ना श्रीगोस्वामिचरणाः सदा ॥
ऊचुर्दामोदरेह स्वां वार्तां प्रायस्तवास्यतः ॥५२॥
प्राहुर्मे श्रीमदाचार्याः कृपयेति विनिश्चितम् ॥
भवानेवं न चेद्ब्रूयादाप्तः क. कथयेदिति ॥५३॥

किंच दामोदर त्वां हि यदा पश्यामि मे मनः ॥
तदा संतुष्यति भृशं श्रीमदाचार्यसेवक ॥५४॥
नान्यस्त्वत्तो हिततम इति मन्ये न संशयः ॥
इत्येवं वल्लभाचार्यात्मजाः श्रीविठ्ठलेश्वराः ॥५५॥
यच्छिक्षां मानयामासुः सोऽभूद् दामोदरो महान् ॥
अथैकदा भगवतः समक्षमिति याचितम् ॥५६॥
त्रिवारं श्रीमदाचार्यैर्दामोदररतात्मभिः ॥
मदग्रे भगवन्दामोदरदासस्य मा स्म भूत् ॥५७॥
देहत्यागोन्यथा कोऽत्र मार्गरीतिं वदिष्यति ॥
सेवोत्सवप्रकारं त्वं श्रीगोपीनाथसंज्ञके ॥५८॥
बाले ममात्मजे गूढं विट्ठले चेति भावतः ॥
काश्यां पूर्वप्रतिज्ञार्थं मयि सन्यस्य गच्छति ॥५९॥
तदेतदादिकार्यार्थमयमुद्भववन् मम ॥
चिरं श्रीभगवन्मार्गं ज्ञात्वा भुवि स तिष्ठतु ॥६०॥
एतादृशे निजे तस्मिन्सेवके सेवनाध्वनः ॥
धुरं न्यस्य गता काश्यां सन्यस्याचार्यसूरयः ॥६१॥
अथो कियद्दिनान्ते हि श्रीगोस्वामिमहात्मभिः ॥
अक्कापृष्टा महालक्ष्मीः क्वचिन्मातार्भभावतः ॥६२॥
अम्ब श्रीतातचरणैराचार्यैर्दर्शितेऽध्वनि ॥
कथं सेवोत्सवविधिः को भाव इति कथ्यताम् ॥६३॥
न जानीमो बालधियः शास्त्रतः को वदिष्यति ॥
इत्युक्ता सा ऽब्रवीद्वत्स स्वे दामोदरसंज्ञके ॥६४॥

निवेदित॰ स्वमार्गीयसिद्धान्तः श्रीमदार्यकैः ॥
स वेत्ति सर्वभावेन स्वमार्गोत्सवपद्धतिम् ॥ ॥६५॥
जिज्ञासया स पृष्टो हि सम्यगेव वदिष्यति ॥
इत्यावेदितहार्दास्ते श्रीगोस्वामिमहाशया॰ ॥६६॥
गता दामोदरगृहं तत्त्वजिज्ञासया तदा ॥
दामोदरः पितृश्राद्धं कुर्वाणो दृष्टवान् प्रभून् ॥६७॥
श्रीमदाचार्यतनुजानुत्थाय प्रणनाम ह ॥
निवेशयामास च तानासने संमुखः स्थितः ॥६८॥
तदा गोस्वामिभि॰ प्रोक्तं श्रीदामोदरदास भोः॥
कारयिष्यामि त्वां श्राद्धमित्यथो कारयन्मुदा ॥६९॥
श्राद्धकर्मोत्तरं प्रोक्तं श्रीगोस्वामिभिरुत्स्मितम् ॥
भो दामोदरदासाद्य देहि मे श्राद्धदक्षिणाम् ॥७०॥
तदा दामोदरेणोक्तं ज्ञातहार्देन केवलम् ॥
वक्ष्यामि दक्षिणास्थाने मार्गवार्त्तां पुरोऽद्य व. ॥७१॥
तदा गोस्वामिभिस्तूष्णीमनुमोद्य स्मितं कृतम् ॥
ततो दामोदरेण श्रीगोस्वामिषु महात्मसु ॥७२॥
मार्गप्रणालिका सर्वा प्रतिपाद्य निवेदिता ॥
तदाप्रभृति गोस्वामिचरणैस्तातत्तत्त्वद. ॥७३॥
श्रीदामोदरदासाख्य॰ स्वप्रगामैककर्मणि ॥
हठात्स्वचरणाब्जाम्बुपाने च प्रतिबोधितः ॥७४॥
तदनु श्रीमदाचार्यै॰ स्वात्मा सन्दर्शितो वहिः ॥
अपूर्वं च वचः प्रोक्तं दामोदरपुर क्वचित् ॥७५॥

मत्सूनुविट्ठलाधीश चरणोदकमाज्ञया ॥
प्राह्यमार्येण भवता लोकान् वै संजिघृक्षता ॥७६॥
इत्याधाय शिरस्याज्ञा प्रातर्गोस्वामिनां गतः ॥
निकटेऽर्थितवान् दामोदरस्तच्चरणोदकम् ॥७७॥
प्रतिषिद्धस्तदा तैश्च प्रोक्तवाननुशासनम् ॥
मेऽभूत्पूर्वैर्गुराचार्यशासनं नान्यथा तु यत् ॥७८॥
तदाज्ञाय ददु· श्रीमदाचार्यप्रभुसूनवः ॥
तदाप्रभृति गोस्वामिचरणाश्चरणोदकम् ॥७९॥
यस्मै दामोदराख्याय तृतीये तृतीयेऽहनि ॥
स्वात्मानं दर्शयन्ति स्म श्रीमदाचार्यदीक्षिताः ॥८०॥
स्वमार्गवार्त्तामाहुश्च कृपापात्राय भाविताः ॥
कदाचिच्चेद् दर्शयेयुर्न स्वमाचार्यसूरयः ॥८१॥
तदास्यात्तद्दिने शूल्यथा तस्योदरेऽधिका ॥
यदात्मानं दर्शयेयुः साऽथ शांता तदा भवेत् ॥८२॥
इत्याचार्यावलोकातिमुदितात्मा स वैष्णवः ॥
श्रीदामोदरदासाख्य· कियत्संवत्सरावधि ॥८३॥
अवदद्भगवद्वार्ता गूढां गोस्वामिनः प्रति ॥
अहर्निशं भागवतप्रक्रियां च स्वमार्गतः ॥८४॥
इत्थं यस्याधिकां बोधशक्तिं वीक्ष्य विलक्षणाम् ॥
गोस्वामिपादा. प्रणतिं प्रत्याचेरुर्हि तद्दिनात् ॥८५॥
वैष्णवानामथान्येषामाहु· स्म पुरत· क्वचित् ॥
अहो दामोदरस्यान्तराचार्याः सम्प्रतिष्ठिताः ॥८६॥

त एवोपदिशन्तीति ततो दामोदरस्य ताः ॥
वार्ता अगाधा भूयस्य इति प्रोक्ताः समासतः ॥८७॥
यावच्छ्रीवल्लभार्याणां मार्गस्येह स्थितिः कलौ ॥
तावद्दामोदरस्यास्य भवित्री जन्मभिर्मुहु ॥८८॥

इति वैष्णव वार्ताया मालायां प्रथमो मणिः

वार्ता २

अथान्यो वैष्णवः श्रीमदाचार्यपदसेवक ॥
मेघनश्रीकृष्णदासस्तस्य वार्ता निरूप्यते ॥८९॥
यदा श्रीवल्लभाचार्या, पृथ्वीप्रक्रमणे गता. ॥
तदा सार्थे कृष्णदासोऽनुयाति स्म पदानुगः ॥९०॥
उदीच्यां वदरीनारायणस्थानोत्तरं गिरेः ॥
कर्णिकाख्यस्य महत शिखरात्पतितां शिलाम् ॥९१॥
स्तम्भयामास हस्तेनेत्यालोक्याचार्यवर्यका ॥
तुष्टा वरं वृण्विति तं त्रिवाचा समुदैरयन् ॥९२॥
तदा तेन पुरस्तेषां याचितं हि वरत्रयम् ॥
आद्यो मुखरतादोषनिवृत्तिर्मेऽस्त्विवति स्वत. ॥९३॥
आयातु हरिसिद्धान्त. स्वमार्गस्येति चाऽपर ॥
तृतीयो मद्गुरुगृहे पदधारणमित्युत ॥९४॥
तदाकर्ण्याचार्यवर्या ददुस्तदद् वरद्वयम् ॥
गुरुगृहे पदन्यासं नाऽङ्गीचक्रुर्महाशया. ॥९५॥
अथो वदर्याश्रमतोऽप्यग्रे प्रचलितै. पुनः ॥
अमर्त्यगम्ये प्रदेशे श्रीमदाचार्यवर्यकैः ॥९६॥

प्रतिषिद्धोनुगः कृष्णदासोऽत्र स्थेयमेव ते ॥
नाऽऽगन्तव्यमितश्चेति स्वयं त्वेकाकिभिर्गतम् ॥९७॥

दिनत्रयावधि स्थाने स्थितं तेन च तत्र हि ॥
तृतीय दिवसान्ते तु स्वाचार्यैः सुसमागतैः ॥९८॥

उक्तस्तदेतो न गत परावृत्य कथं भवान् ॥
तदातेनोक्तमाचार्या. क्क यामि भवतामहम् ॥९९॥

मुक्त्वा वो पादयुगलं शरणं मम नेतरत् ॥
श्रुत्वेति श्रीमदाचार्या भूयस्तुष्टास्तमब्रुवन् ॥१००॥

वरं ब्रूहि वर ब्रूहि वरं ब्रूहीति सेवकम् ॥
भूयोपि तत्तेन वृतं प्राक्तनं हि वरत्रयम् ॥१०१॥

पूर्ववत्तदद्वयं दत्तमाचार्यैर्न तृतीयक. ॥
एकदा श्रीमदाचार्यान् गङ्गासागरसैकते ॥१०२॥

सुप्तान् यथासुखं रात्रौ कृष्णदासो विलोक्य स·
पाद संवाहनं मन्द कुर्वाणोऽत्रोचदादरात् ॥ ॥१०३॥

भो महाप्रभवः किञ्चिद् बुभुक्षाचेत्तदेर्यताम् ॥
इत्याश्रुत्योक्तमाचार्यैर्धानापृथुकतन्दुला. ॥१०४॥

भर्जिता मुदुला लभ्याश्चेत्स्युस्तानदम्यहन्त्विति ॥
श्रुतवान्स समाज्ञाय स्वाचार्यान् शयिताञ् शनै. ॥१०५॥

कृष्णदास समुत्थाय गङ्गां तीर्त्वा पुरे गत. ॥
तत्र भ्राष्ट्रे भर्जयित्वा क्रीतान् पृथुकतन्दुलान् ॥१०६॥

आनिनाय पुनर्मन्दं पादसंवाहमाचरत् ॥
अथाचार्यान्सम्प्रबुद्धानुत्थितानवलोक्य स. ॥१०७॥
कृष्णदासोऽग्रतस्तेषामर्पयामास तान्मृदून् ॥
तदा तानवलोक्योक्तमाचार्यैः कुत आहृता ॥१०८॥
इति पृष्टः स्म स प्राह यथावद्वृत्तमात्मनः॥
भुक्त्वा भूय. प्रसन्नैस्तैरुक्तं भो वृणु मद्वरम् ॥१०९॥
ततस्तदेव तेनापि प्रार्थितं प्राग्वरत्रयम्॥
ओमिति श्रीमदाचार्यैरभ्युपेत्य हृदीरितम् ॥११०॥
किमपि प्रार्थितुं शक्तो जीवोऽल्पोऽयं न मद्वरम् ॥
यदेतत्समये तेन प्रार्थितं देयमेव तत् ॥१११॥
यद्वा कदाचिद्भगवत्स्वरूपं प्रार्थितं भवेत् ॥
तदप्यस्मै दातुमर्हं वाग्वद्धेन मयेत्यथ ॥११२॥
प्रयातं श्रीमदाचार्यैरुत्थितै. शूकरस्थले ॥
तत्र श्रीकृष्णदासेन कृतं विज्ञापनं पुरः ॥११३॥
अत्रास्ते मे गुरु· कश्चिदानये तं पुरोऽद्य च· ॥
तद्विज्ञापनमाकर्ण्यप्रोक्तमाचार्यपण्डितै· ॥११४॥
तदन्तिके याहि परं दु खं ते भवितेति वै ॥
तदा श्रीकृष्णदासस्तु मुदाविष्टस्ततोगतः ॥११५॥
प्रणम्याह गुरुं शीते तपन्तं वह्निनाऽऽसने ॥
भोः प्राप्ता· श्रीवल्लभार्यास्तत्पार्श्वे गम्यतां गुरो ॥११६॥
श्रुत्वोक्तं तेन सरुषा कृतः किमपरो गुरुः ॥
त्वं मे गुरुः परं युष्मत्प्रसादात्पुरुषोत्तमः ॥११७॥

लब्धो मयेश्वरः साक्षादिति सत्यं ब्रवीमि भोः ॥
तदोक्तं गुरुणा त्वेतत्कथं शक्येत वेदितुम् ॥११८॥
यदीश्वरः सत्यमिति साक्षात्स पुरुषोत्तमः ॥
तदैव कृष्णदासेन ज्वलतोऽग्नेर्गुरोः पुरः ॥११९॥
अङ्गारानञ्जलौ कृत्वा मुहूर्तान्ति समास्थितम् ॥
उक्तं च सत्यवचसाऽन्यथा भावोऽत्र चेदणु ॥१२०॥
मे तदास्तां करौ दग्धाविति भीतो विलोक्य सः ॥
गुरुराह स्म करतो निःक्षिपेति पुनः पुनः ॥१२१॥
तथापि तेन ते नैव क्षिप्ता अङ्गारकाः करात् ॥
तदातेनैव गुरुणा हस्ताभ्यामात्मनो द्रुतम् ॥१२२॥
धृत्वा श्रीकृष्णदासस्याञ्जलितस्ते निपातिताः ॥
आः सत्यं तेऽभिविज्ञातं सन्ति ते पुरुषोत्तमाः ॥१२३॥
अतोऽहमपि तेषां वै शरणं यामि नान्यथा ॥
इत्यन्तर्गूढनिर्वेद स तेषां शरणं गत ॥१२४॥
कालान्तरे तत्कृपया सिद्धिं प्राप सुदुर्लभाम् ॥
अथ श्रीकृष्णदासस्तु गुरुक्षोभसुदुःखभाक् ॥१२५॥
आगत्य श्रीमदाचार्यसमीपे तद्यथाऽब्रवीत् ॥
सर्वं जातं भवत्प्रोक्तं नान्यथेति कृपाबलात् ॥१२६॥
श्रीमदाचार्यपादानां मार्गसिद्धान्त आहित ॥
वहिर्मुखरतादोष कृष्णस्य सुविनिर्गत ॥१२७॥
पुनः कदाचिदाचार्या गोप्यवार्तां स्म कुर्वते ॥
रसभावभृतां विष्णोः कृष्णदासाय धीमते ॥१२८॥

स च हर्षेण महता वैष्णवेष्ववदत्क्वचित् ॥
तस्योक्तं वृत्तमाचार्यसमीपे वैष्णवै क्वचित् ॥१२९॥
प्रकाशयत्यं राजश्रीमदाचार्यवर्यका ॥
भवदुक्तां गोप्यवार्तां वैष्णवेष्विति चासकृत् ॥१३०॥
तदैव श्रीमदाचार्यै स पृष्टः कृष्णदासकः ॥
किमहो कृष्णदास त्वं गोप्यवार्तां वदस्यलम् ॥१३१॥
मदीरितां वैष्णवानामग्र एते वदन्ति हि ॥
तदोक्तं कृष्णदासेन महाराजा महाग्रये ॥१३२॥
ते पृष्टव्याः समाहूय भवद्भिर्वैष्णवा खलु ॥
कृष्णदासेन का गोप्यवार्ता प्रोक्ता भवत्स्विति ॥१३३॥
तदैव श्रीमदाचार्यैराहूता वैष्णवास्तु ते ॥
प्राप्ताः प्रणम्योपासीना पृष्टा गोप्यकथास्मृतौ ॥१३४॥
तदोक्तं तैर्महाचार्याः कृष्णदासमुखाच्छ्रुताः ॥
गोप्यवार्ता. परं नाप्ता स्मृतिगोचरतामिति ॥१३५॥
तदा तूष्णीं स्थितं श्रीमदाचार्यै. सस्मिताननैः ॥
सर्वेषा मिषतां मध्ये कृष्णदास उवाच ह ॥१३६॥
भो महाप्रभवो गोप्या वैष्णवैर्यदि वा श्रुताः ॥
ता वार्तास्तर्हि किं जातं हृदि न स्थिरतामिता ॥१३७॥
तत्स्थैर्यं दानसापेक्ष दानं दातृवशं यत ॥
तद्दानं तु महाचार्या भवन्त कुर्यु रेव चेत् ॥१३८॥
तास्तद्धृदिस्था भवन्ति नान्यथेति मतिर्मम ॥
इत्युक्त्वा विरराmाथ सर्वे नि संशयास्तदा ॥१३९॥

यथागतं गताः सर्वे श्रीमदाचार्यसेवकाः ॥

एतादृशः कृष्णदासो बभूवान्वर्थनामभाक् ॥१४०॥

श्रीवल्लभाचार्यवर्यकृपापात्रं स वैष्णव. ॥

एकदा कृष्णदासेन पृष्टमाचार्यकान्प्रति ॥१४१॥

आर्याः प्रभोः प्रियं किंस्विदप्रियं ब्रूत शाश्वतः ॥

श्रुत्वेत्यार्याः प्राहुरहो प्रभुरुत्तमवस्तुभुक् ॥१४२॥

परन्तु गोरसस्यातिभोक्ता नो भक्तवत्सलः ॥

विद्धचप्रियं हरेर्धूमं भक्तिमार्गविरोधि यत् ॥१४३॥

इत्याकर्ण्य प्रमुदित· क्वचिदित्थं स पृष्टवान् ॥

रघुनाथ. कोशला· स्वा· प्रजा आदाय जग्मिवान् ॥१४४॥

स्वधामाथ स्वरनयद्रामो दशरथं कुत· ॥

तत्र प्रत्यूचुराचार्या भो दयालु· स राघवः ॥१४५॥

तं तादृशं स्वरनयत्पितरं कैकयीवशम् ॥

य· स्ववाक्यमृतं कर्तुं विपिने राममत्यजत् ॥१४६॥

श्रुत्वेति पुनरापृच्छदार्या भक्तोपि सन्न यः ॥

प्रभोर्लीला यथारूपसम्बन्धं भावयत्यसौ ॥१४७॥

विधिवत्तत्कथमिति संशयो मे निवार्यताम् ॥

तत्र प्रोचुर्भूय आर्या रे करोति प्रभु· स्वतः ॥१४८॥

अनाचन्रतो यथावदेते भक्ता अपि स्वयम् ॥

स्यु. कथं वा नु भविनो भक्तसङ्गतिवर्जिताः ॥१४९॥

सद्भक्तसङ्गिन स्युश्चेत्प्रभोर्लीलाविदस्तदा ॥

स्वरूपयोग्यमात्मानं जानन्तो नाचरन्ति तत् ॥१५०॥

आचरन्ति च केऽप्यन्ये नान्तःकरणपूर्वकम् ॥
ततो विमोरूपलीलाभेदं नानुभवन्ति ते ॥१५१॥
सङ्गादुत्तमभक्तानां श्रीभागवतभावनात् ॥
पृष्ट्वा वा भावमारूढो भगवद्भावमाप्नुयात् ॥१५२॥
कृष्णो व्रजस्थानां सङ्गे सदैव स्थितवान्यथा ॥
सेवायां स तथारुद्ध इति निश्चयवान् भवेत् ॥१५३॥
यत्रैतन्मार्गीयजना येषां हृदि हरिः सदा ॥
ते वैष्णवाः सानुमन्नास्तेषां सङ्ग· फलावहः ॥१५४॥
यथेह गर्जनाद्याः स्युर्भावतः सेवया सिताः ॥
तेषां सर्वेऽत्राभिलाषाः सिद्धा आसन् भवन्ति च ॥१५५॥
लीलानां व्रजभक्तानां भावमेवानुचिन्तयेत् ॥
सेवाप्रकारमेतस्य वैष्णवसङ्गतश्चरेत् ॥१५६॥
यः पृष्ट्वा सर्वभावेन स कृष्णानुभवी भवेत् ॥
इत्याश्रुत्य स गम्भीरं शास्त्रार्थं मुखतः सतः ॥१५७॥
आर्याणां सेवकः कृष्णदासो नि संशयोऽभवत् ॥
एकदा श्रीमदाचार्यैर्गतः सह स वैष्णव· ॥१५८॥
वदर्यां श्रीमदाचार्याः फलाहारं समाचरन् ॥
तत्र क्वापि फलाहारकरणार्थं फलान्यपि ॥१५९॥
न लेभे कृष्णदासोऽथ वदरीगोऽप्यमार्गयत् ॥
क्वचिन्न लेभे सोऽपीग कृष्णदासश्च तावुभौ ॥१६०॥
ऊचतुः श्रीमदाचार्यसमक्षं खिन्नचेतसौ ॥
भो महार्या फलाहारकृते वोऽत्र फलान्यपि ॥१६१॥

क्वचिन्न लब्धान्यावाभ्यां ज्ञाप्यतां करवाव किम् ।
तथालोक्याचार्यवर्याः स्वान्त. खिन्नहृदोऽब्रुवन् ॥१६२॥
अहो मदर्थं बदरीनाथोऽपि श्रममाचरत् ॥
इत्युत्थाय स्वयं पाकमाचरन्नार्यसत्तमा ॥१६३॥
समर्प्य तद्भोगमस्मै बुभुजुस्त प्रसादितुम् ॥
इत्येतद्वृत्तमालक्ष्य वैष्णवाश्चावदन् प्रियम् ॥१६४॥
हंहो श्रममिमं त श्रीबदरीश' कुतोऽकरोत् ॥
तदाकर्ण्याब्रवीकृष्णदासो रे विकला स्थ किम् ॥१६५॥
आचायार्थं श्रमं साक्षाद्गोवर्द्धनधर प्रभुः ॥
कुरुते किमुतैषोऽत्र बदरीपतिरित्यलम् ॥१६६॥
कदाचित्ते महाचार्या बदरीविपिने घने ॥
विचरन्त. स्वीयकृष्णदासमर्वाग् जनस्थले ॥१६७॥
अवस्थाप्यावदन्नेवं त्वमिह तिष्ठ मेऽनुग ॥
अहमेकः प्रतिष्ठामि प्रभोर्मन्दिरसंमुखम् ॥१६८॥
इत्याज्ञाप्य गतास्त्वार्या. स्वालयं बदरीपते. ॥
तदन्तिके व्यासमुनेराश्रमं स्वयमभ्यगुः ॥१६९॥
तत्रासीनं व्यासदेवं वीक्ष्योचुर्विनयान्विता' ॥
जयश्रीकृष्णेति मुदा व्यासोऽभ्यागत्य सोऽब्रवीत्॥१७०॥
भो वागीशाचार्यवर्या श्रीमद्भागवतेऽखिले ॥
टीका कृताऽऽस्ते भवद्भिरिति श्रुत्वाऽथ तेऽब्रुवन् ॥१७१॥
कृष्णद्वैपायन विभो कृता सेह मयेत्यृतम् ॥
तन्निशम्याऽथ स मुनिर्मह्यमाश्राव्यतां तु सा ॥१७२॥

तदोमित्यभ्युपेत्यार्याः टीकां स्वेन कृतां मुदा ॥
वामवाहुकृतेत्यत्र व्याचख्युर्नैकधा वुधाः ॥१७३॥
तदाकर्ण्याब्रवीद्व्यासोऽवधर्तुं न क्षमोस्म्यहो ॥
एतावताऽलं गम्भीरश्रीभागवतभावुकाः ॥१७४॥
तमापृछंस्तदाचार्या मुने भ्रमरगीतके ॥
ब्रजौकसामभिमुखोद्धवप्रस्थापनोत्सवे ॥१७५॥
पद्यं पतितमाभाति तद्द्वयमपरत्र च ॥
ज्ञाप्यं न्यूनं यदधिकं पाठं भिन्नं समाहितम् ॥१७६॥
तच्छृण्वानः कृष्णमुनिरङ्गीकृत्येत्यवाचयत् ॥
आत्मत्वाद्भक्तवश्यत्वात्सत्यवाक्त्वात् स्वभावत· ॥१७७॥
इत्याद्युपरि टीकान्तेऽनन्तरं चक्रुरादरात् ॥
ततो द्वितीयेऽह्न्याचार्या वदरीशं व्यलोकयन् ॥१७८॥
तद्दिने वामनद्वादश्युपोषणपरान्स तान् ॥
वदरीपतिराहेति भो महार्या मया वने ॥ ॥१७९॥
सर्वत्र फलमन्विष्टं फलाहाराय निर्जने ॥
आतिथ्यार्थं च भवतामुपलब्धं न कुत्रचित् ॥१८०॥
तद्भुज्यतां प्रसादान्नमुत्सवान्ते च पारणम् ॥
ततः प्रभृति केषांचिदस्मन्मार्गानुवर्त्तिनाम् ॥१८१॥
कृताकृतं श्रीवामनद्वादशीव्रतमुच्यते ॥
ततस्त्वार्या वदरिकाधीश्वरेण विसर्जिता· ॥१८२॥
तत्र सन्तं कृष्णदासं समेताश्चिदिनेन तम् ॥
तिष्ठन्तमेकपादेन दृष्ट्वात्यर्थमभर्त्सयन् ॥ ॥१८३॥

अहो त्वामहमास्थाप्य गतवान्स भवानिह ॥
उपविष्टः कथं नात्र कृष्णदास यथासुखम् ॥१८४॥
तदाकर्ण्योक्तवान्कृष्णदासो भो मे महाशयाः ॥
एवमेवानुशास्तिर्वो यदत्र स्थीयतामिति ॥१८५॥
ततोऽहं स्थितवानेवं न त्वत्रासितवानिति ॥
आश्रुत्य श्रीमदाचार्यास्तुष्टा मुमुदिरे भृशम् ॥१८६॥
सेवकस्य तु धर्मोऽयं यथाज्ञावचनं सताम् ॥
तथैवानुविधातव्यमिति धर्मविदो विदुः ॥१८७॥
इति वैष्णववार्तामालायां द्वितीयोमणिः

वार्ता ३

श्रीदामोदरदासोन्यः कान्यकुब्जे बभूव ह ॥
क्षत्री शभरवालाख्यस्तस्यवार्ता निरूप्यते ॥१८८॥
तेन दामोदरेणाऽत्तं ताम्रपत्रं क्वचिद् भुवि ॥
तस्मै केनचिदित्युक्तं स्वप्ने येनाक्षराणि भोः ॥१८९॥
ताम्रपत्रगतान्यग्रे वाचितानि भवन्ति हि ॥
तस्य त्वं शरणं याहि सर्वथेति प्रबुद्धवान् ॥१९०॥
बहूनां स पुरः पत्रं दर्शयामास वैश्यराट् ॥
अस्पष्टवर्णं तत्पत्रं नैव केनापि वाचितम् ॥१९१॥
ततः कतिपयाहानुपदमाचार्यपण्डिताः ॥
तत्र याता उपवनस्थले समुषिताः पुरे ॥१९२॥
प्रेषयामासुरामान्नानयने कृष्णदासकम् ॥
न ज्ञापनीयोऽस्मि पुरः कस्यापीति प्रबोध्य तम् ॥१९३॥

यद्दामोदरदासः स्वयमायास्यति पथिस्व आचार्याः ॥
जीवोद्धारणमुदितं भावि स्वतएव तदिति हृदा ॥१९४॥
गतस्स कृष्णदासोऽपि ततो ग्रामे तदाज्ञया ॥
आमान्नानयने दामोदरदासोऽमिलत्तदा ॥१९५॥
प्रत्यभ्यजानात्तं कृष्णदासं दर्शनमात्रतः ॥
मध्येमार्गं नृपद्वारादश्वारूढः समागतः ॥१९६॥
दामोदरः पृष्टवान् भोः किमाचार्याः समागताः ॥
तदोक्तं कृष्णदासेन न मे तदनुशासनम् ॥१९७॥
यद्ब्रूयामधिकां वार्तामामान्नानयनात्पराम् ॥
इत्यावेद्य तदामान्नं कृष्णदासः समाययौ ॥१९८॥
तस्यानुपदमायातः स च दामोदरः स्वतः ॥
आगत्यान्तःस्थितान् गेहे श्रीमदाचार्यपण्डितान् ॥१९९॥
प्रणम्य दण्डवद्दामोदरदासोऽग्रतः स्थितः ॥
दृष्ट्वा तमारात् पप्रच्छुः कृष्णदास कथं त्वया ॥२००॥
ज्ञापितोऽहमिति श्रुत्वा कृष्णदास उवाचह ॥
न मया वेदितः श्रीमदागमोऽस्यानुवर्त्तिनः ॥२०१॥
तावद्दामोदरेणोक्तं महाराजा धिया मयि ॥
अनेन नैवाभिहितं श्रीमदागमनं स्मृतम् ॥२०२॥
परं दृष्टवता चैनं मयानुपदमागतम् ॥
इति सत्यं समाकर्ण्य श्रीमदाचार्यसूरयः ॥२०३॥
दामोदरं तं प्रत्यूचुरहो पत्रं समानय ॥
तदोक्तं तेन भो प्राज्ञाः किं पत्रेण प्रयोजनम् ॥२०४॥

प्रपन्नं मां सानुबन्धमङ्गीकुरुत किंकरम् ॥
तथापि तैः प्रसिद्ध्यर्थमीरितः स समानयत् ॥२०५॥
ताम्रपत्रं तदाचार्यचरणाग्रे न्यवेदयत् ॥
विलोक्य पत्रमाचार्या वाचयामासुरादरात् ॥२०६॥
ज्ञात्वाऽऽभिप्रायमखिलमङ्गीचक्रुर्हरीच्छया ॥
तं दामोदरदासं तत्पत्नीं चापि पतिव्रताम् ॥२०७॥
शरणात्मकमन्त्रेण गद्यपञ्चाक्षरेण च ॥
हरौ निवेदयामासुरात्माद्यर्पणपूर्वकम् ॥२०८॥
ततस्ताभ्यां दम्पतिभ्यां परमादरपूर्वकम् ॥
स्वगृहे श्रीमदाचार्याः समानीता निवासिताः ॥२०९॥
तदन्वाभ्यां जम्पतिभ्यां विज्ञाप्याञ्जलिपूर्वकम् ॥
प्रोक्तं भोः प्रभवो नित्यमावाभ्यां कार्यमत्र किम् ॥२१०॥
तदाकर्ण्योक्तमाचार्यैर्भो युवाभ्यां प्रभुर्हरिः ॥
भजनीयः कलौ मूर्त्यां प्रेमसेवाप्रकारतः ॥२११॥
तदान्विष्याचार्यवर्यैः स्वर्णकारस्य कस्यचित् ॥
गृहे विप्रन्यासभूतो मूर्तिमान् द्वारिकेश्वरः ॥२१२॥
चतुर्भुजः श्यामतनुः प्रदाय धनमाहृतः ॥
दामोदरस्य स गृहे लिप्ते समुपवेशितः ॥२१३॥
आदितो नूतनैः पात्रैर्मृन्मयैरपि चाम्बरैः ॥
समं संभृत्य सम्भारं शय्यासिंहासनादिकम् ॥२१४॥
आगत्य श्रीमदाचार्यैर्मन्त्रपूर्वकमादरात् ॥
पञ्चामृतेनाभिषिक्तः प्रभुः श्रीद्वारिकेश्वरः ॥२१५॥

वस्त्रभूषालंकृतश्च स्थापितः पीठके शुभे ॥
भोगारार्तिसुगीताद्यैरुत्सवः सुमहान्कृतः ॥२१६॥
दामोदरेण विप्राद्या वैष्णवाश्च विशेषतः ॥
भोजिताः परमान्नेन सपत्नीकेन तेन हि ॥२१७॥
ततःप्रभृति नित्यं स प्रेम्णा सेवां समाचरत् ॥
नागवल्लीदलानि श्रीद्वारिकेशार्थमेकदा ॥२१८॥
आनीतानि श्यामलानि दृष्ट्वाचार्यैः प्रबोधितः ॥
भो दामोदरदासेत्थं नागवल्लीदलानि ते ॥२१९॥
श्यामानि नार्पणीयानि ह्युत्तमोत्तमभोजिने ॥
नूतनं वस्तु परममर्प्यमन्यानिवेदितम् ॥२२०॥
यद्यदिष्टतमं लोकेयच्चातिप्रियमात्मनः ॥
भोज्यं भक्ष्यं रम्यवस्त्रं सुगंधिद्रव्यमेव च ॥२२१॥
अथ ग्राह्यमर्पणीयन्तत्प्रसादीकृतं स्वयम् ॥
इत्येवं भगवन्मार्गविधिं श्रुतवता हृदि ॥२२२॥
श्रीमदाचार्योक्तशिक्षावचनं तेन धारितम् ॥
श्रीदामोदरदासेन सपत्नीकेन नित्यदा ॥२२३॥
सेवापरेण स्वविभोर्जलानयनकारिणा ॥
आहरन्तं जलमिमं वीक्ष्याह श्वशुरः क्वचित् ॥२२४॥
आनेतव्यं जलं दास्या ज्ञातयोऽत्र हसन्ति नः ॥
श्रुत्वेति तेनोमित्युक्तं परेद्युर्दम्पती गतौ ॥२२५॥
प्रत्येकं घटमादाय तस्यापणसमीपतः ॥
तथोभौ प्रेक्ष्य स ह्रीणो गृहे तस्याऽपतत्पदोः ॥२२६॥

क्षम्यतां पूर्वं तत्कार्यं स्वयं कुर्यास्तथा नहि ॥
श्रुत्वेति स्वयमेवैको जलमाहरदुत्तमः ॥२२७॥
एवं जुषं तु तं साक्षाद्याचते भाषते प्रभुः ॥
एकदा श्रीमदाचार्यैरुक्तं तत्परिचर्यया ॥२२८॥
दृष्ट्वा तयोर्मोदभावं दम्पत्योर्मिषतां सताम् ॥
हं हो न दृष्टो यै राजाम्बरीषो वैष्णवः श्रुतः ॥२२९॥
तैरयं दृश्यतां दामोदरदासः स्त्रिया सह ॥
सचाम्बरीषो मर्यादामार्गीयो वैष्णवोऽभवत् ॥२३०॥
अयं तु पुष्टिमार्गीय इति भावविवेकतः ॥
एवं सेवां स कुर्वाणः पत्न्या सह महामतिः ॥२३१॥
मन्दिरे श्रीद्वारिकेशं शाययित्वोर्ध्वमेकदा ॥
स्वय सुप्वापोष्णकाले चतुर्द्वारि सुवातके ॥२३२॥
तदहोरात्रमूष्मापि भूय एवाभ्यजायत ॥
अधः सुप्तां गृहे दासीमेकां संप्रतिबोध्य च ॥२३३॥
श्रीद्वारिकेश संप्राह कपाटोद्घाटनं कुरु ॥
तदाश्रुत्य तु दास्या तत्कपाटोद्घाटनं कृतम् ॥२३४॥
कृत्वा तु सुप्ता सामूढा निद्रयोपहतेन्द्रिया ॥
जाते प्रभातेऽथ दामोदरदासः समुत्थित ॥२३५॥
चैत्यं ददर्श पत्नीं तदुद्घाटितकपाटकम् ॥
ससंभ्रमधियाऽपृच्छत्कपाटोद्घाटनं कथम् ॥२३६॥
कृतं केन विशङ्केन जनेनेह निगद्यताम् ॥
तदाकर्ण्य भिया दास्या गदितं भो मया निशि ॥२३७॥

द्वारिकेशेनेरितया कपाटोद्घाटनं कृतम् ॥
इत्याश्रुतवता तेन सरुषोक्तं सतर्जनम् ॥२३८॥
त्वया किमिति रे दासि कपाटोद्घाटनं कृतम् ॥
ततस्तसो सेवनार्थं मन्दिरे गतवाँस्त्वयम् ॥२३९॥
तत्र प्रबोधयामास प्रभुं स्वं द्वारिकेश्वरम् ॥
तदोक्तं द्वारिकेशेन कथं दामोदर त्वया ॥२४०॥
भर्त्सिता वर्जिता दासी सा मयैवेरिता खलु ॥
कपाटोद्घाटनं चैत्यद्वारः कृतवती सती ॥२४१॥
त्वं तु गत्वोपरिगृहे सुप्तो वातायने निशि ॥
मां शाययित्वान्तर्गेहे स्वयमूष्मातिकातरः ॥२४२॥
इत्याकर्ण्य प्रभोर्वाक्यं तत्र दामोदरः स्वयम् ॥
संकल्पं कृतवानन्यं कारयित्वैव मन्दिरम् ॥२४३॥
वातायनमथान्नं हि भोक्ष्यामीतिप्रतिज्ञया ॥
तदा स्त्रियोक्तं प्रतिज्ञा कथं ते निर्वहेदहो ॥२४४॥
अनल्पकालसाध्यत्वात् प्रभुमन्दिरनिर्मितेः ॥
विना प्रसादान्नभुक्तिं चिरं कथमवस्थितिः ॥२४५॥
इत्युक्ते स पुनः प्राह तर्हि रन्धितमन्नकम् ॥
नात्स्यामि तु फलाहारं करिष्यामीति निश्चितम् ॥२४६॥
इति सत्यप्रतिज्ञेन फलाहारं प्रकुर्वता ॥
श्रीदामोदरदासेन मन्दिरं कारितं शुभम् ॥२४७॥
शुभे मुहूर्त्ते तत्रात्मप्रभुः समुपवेशितः ॥
नित्यं सेवां चकारासौ सपत्नीको मुदान्वितः ॥२४८॥

एकदापुनरात्मीयंप्रभोर्भोगोत्तरं मुदा ॥
शय्यां मार्जयता तेन मन्दिरे तल्पकान्तिके ॥२४९॥
स्वास्तृते स्वासने दृष्ट्वा मार्जार्योच्चरितं मलम् ॥
उक्तं हंहो भगवता स्वशय्यापि न रक्ष्यते ॥२५०॥
तदनु स्वजनेनाथ तन्नि.सार्य विलिप्य च ॥
सेवाकर्मण्याप्रृतोऽभूत् राजभोगसमर्पणे ॥२५१॥
समर्प्य सूपोदनकस्थालं शाकादिवेष्टितम् ॥
यावद्वहि· समासीत तावत् स्वप्रभुगा रुषा ॥२५२॥
पदा नि·क्षिप्य तत् स्थालमुक्तं रे सेवकोऽत्र क· ॥
त्वं वाऽहं वेति रक्षां क. कुर्यात्सर्वस्य वस्तुनः ॥२५३॥
इत्याकर्ण्य तदा दामोदरेण च सह स्त्रिया ॥
अनुनीतश्चाटुवाक्यैर्द्वारिकेशोऽनुतापिना ॥२५४॥
पूर्णनूतनपाकेन राजभोगेन भोजितः ॥
तथापि मासद्वितयं द्वारिकेशो न चावदत् ॥२५५॥
ततो वहुविधैर्वाक्यैरनुनीतः स्वयं प्रभु· ॥
चिरादवददाचार्यानुगं दामोदरं प्रति ॥२५६॥
एकदा हरसान्याख्य· श्रीदामोदरदासक· ॥
गृहं शंभलवालस्य गतो दामोदरस्य ह ॥२५७॥
श्रीदामोदरदासेन शंभलग्रामवासिना ॥
संमानितो वहुविधं पंचसप्तदिनं स्थित· ॥२५८॥
ततोऽरिल्लग्राममितः स्वाचार्यान् दृष्टवान्नत· ॥
पृष्टोऽथ श्रीमदाचार्यैः स्वागतं भद्रमस्तु ते ॥२५९॥

दामोदरगृहे स्थानं सुकृतं वत ते कृतम् ॥
प्रसदान्नं किं गृहीतं तत्र स्थितवतेति भोः ॥२६०॥
अवदत् सत्यमेवाऽग्रे तेषां दामोदरोऽनुगः ॥
महाचार्या मया तत्र प्रसादान्नं न रन्धितम् ॥२६१॥
भुक्तं चिरं स्थितवता दामोदरगृहे सता ॥
तदाकर्ण्याचार्यवर्यैरुषोक्तं करुणाकरैः ॥२६२॥
अहो मदन्तरङ्गाय सेवकाय गृहे प्रभोः ॥
सेवकेन मदीयेन तेन नाऽवेदितं कुत' ॥२६३॥
रन्धितं तत्प्रसादान्नमुच्छेपमधरामृतम् ॥
इत्यस्फुरद् गृहे दामोदरशम्भलवासिनः ॥२६४॥
प्रायो रुष्टा ममाचार्या यामि कान्ते हरिं जुप ॥
श्रीमदाचार्याभिमुखमित्युक्त्वा नि सृतो गृहात् ॥२६५॥
अरिल्लग्राममागत्य स च स्वाचार्यपादयोः ॥
पतितो दण्डवन्मूर्ध्ना साष्टाङ्गं प्रणनाम ह ॥२६६॥
तमालोक्याचार्यवर्या न तत्संमुखमास्थिताः ॥
इत्यकस्मात्क्रुधो वीजमन्विष्यन्स विसिस्मिये ॥२६७॥
विज्ञप्तिं कृतवान्नीचैर्महाराजा महाशयाः ॥
कोऽपराधोस्तिऽमे दृष्टो न तं जानामि वोच्यताम् ॥२६८॥
तदोक्तं श्रीमदाचार्यै. कथं तस्मै त्वया प्रभोः ॥
प्रसादान्नं स्थितवते रन्धितं नोपभोजितम् ॥२६९॥
तदाश्रुत्योदितं दामोदरदासेन कम्पता ॥
महाराजधिया दामोदरः पृष्टव्य एव वः ॥२७०॥

रन्धितं तत्प्रसादान्नं कथं नात्तं त्वयेति सः ॥
तदाहूय स तैः पृष्टः श्रीमदाचार्यपण्डितैः ॥२७१॥
यथातथं समवदन्महाराजा मयोषसि ॥
बालभोगाप्तसामग्रीप्रसादान्नं प्रभोस्तुयत् ॥२७२॥
तदेव भुक्त्वा सुप्रीतं मेवापक्वान्नमेवच ॥
रन्धितान्नं रुच्यभावान्न गृहीतमिति स्वतः ॥२७३॥
तच्छ्रुत्वा श्रीमदाचार्यैरुक्तं भो यद्यपि त्वया ॥
न स्वेच्छया रन्धितान्नं भुक्तं मे तु ततोऽपि रुट् ॥२७४॥
अस्मिन्दामोदरे जातेत्याचार्यास्तदनु स्वयम् ॥
समाधाय तदा दामोदरदासं स्वसेवकम् ॥२७५॥
वहु शंभलवालं तं मुदा विससृजुर्गृहे ॥
अथ वार्तेतरा दामोदरदासस्य रूप्यते ॥२७६॥
ख्याता शंभलवालस्य श्रीमदाचार्यसेविनः ॥
कान्यकुब्जे निवसतो गृहे गत्वा समेत्य हि ॥२७७॥
श्रीनन्दवासिनो लोका यान्त्यग्रे वैष्णवा खलु ॥
श्रीमदाचार्यचरणदर्शनार्थं समुत्सुका ॥२७८॥
तदा दामोदरोऽप्येषां प्रत्येकं स्वर्णमुद्रया ॥
हस्तेसमुपहारार्थं प्रतिपादितयात्मन ॥२७९॥
श्रीमदाचार्यपादेषु नतिसंदेशभावदत् ॥
रिक्तपाणिः कथमिति ब्रूयां प्रणतिवाचिकम् ॥२८०॥
तादृक्स्वभावो यो भावोद्गारिवर्णश्च निर्ममः ॥
दामोदर सदामोदी पटुः प्रभुनिपेवणे ॥२८१॥

शतं यच्छ्वशुरेणोरुधनार्धेनेह दासिका ॥
कन्यकोद्वाहसमये पारिवर्हे प्रयोजिता   ॥२८२॥
सुखस्थितां मम सुतामेता परिचरन्त्विति ॥
तथापि दामोदरस्य तस्य पत्नी हरिप्रिया   ॥२८३॥
परिचर्याकर्म हरेः स्वयमेव चकार ह ॥
पादौसंवाहयन्तं स्वं दामोदरमथ क्वचित्   ॥२८४॥
गृहे शयानाः स्वाचार्याः पप्रच्छुरिदमादरात् ॥
रे कश्चित्तेऽभिलाषोऽस्ति श्रुत्वेत्याह स मे नहि ॥२८५॥
स्त्रियं पृच्छेति सच तामपृच्छत्साऽर्थयत्सुतम् ॥
तत्काममावेदयत्तांस्ते चाऽहुर्भविता सुतः   ॥२८६॥
इत्युक्त्वाऽथगतास्ते श्रीद्वारं सा सत्ववत्यभूत् ॥
एकदा गर्भवत्यान्त कुर्वत्या परिचारणम्   ॥२८७॥
पार्श्ववर्तिगृहस्त्रीभिर्द्वाराद्दृष्टः स्व (भड्ली) ॥
प्राह ते भविता पुत्र इत्यन्याश्रयदोषत   ॥२८८॥
तस्य भावात्सुतं श्रुत्वा प्राप्तैराचार्यकै क्वचित् ॥
अस्पर्शयद्भिः स्वौ पादौ पुरो दामोदरस्य ह   ॥२८९॥
प्रोक्तं भावी म्लेच्छ इति जातो नीतोऽम्बिकाम्बया ॥
बभूव म्लेच्छसंसर्गान्म्लेच्छो देशान्तरं गतः   ॥२९०॥
तद्दुःखपरितप्तौ तावनपत्यौ च दंपती ॥
अतिचक्रमतु. कालं भूयांसं हरिसेवया   ॥२९१॥
श्रीदामोदरदासस्य देहत्यागो यदाभवत् ॥
तदा पत्न्या तथाभूतो गोपितो न प्रकाशित   ॥२९२॥

वैष्णवेभ्य· शनैरुक्तं नौरानेया सुमूल्यतः ॥
इतीरितैस्तैरानीता नौर्घट्टे कान्यकुब्जके ॥२९३॥
तत्र नावि धृत· श्रीमान् द्वारिकेशः प्रभुः स्त्रिया ॥
धनवस्त्रादिसामग्रीसहितः सपरिच्छदः ॥२९४॥
उक्तं भो वैष्णवा एतदरिल्लग्राममाप्यताम् ॥
श्रीमदाचार्यनिकट इति तैस्तत्तथा कृतम् ॥२९५॥
त्रिंशत्क्रोशगतायां तु नौकायां गाङ्गवारिणि ॥
दामोदर स्त्रिया संस्थामित· पश्चात्प्रकाशित· ॥२९६॥
श्रुत्वा मृत समायाता वैष्णवा सुहृदस्तदा ॥
तस्य देहस्य सस्कारमकुर्वन् विधिवत्पुरः ॥२९७॥
श्रुत्वाऽऽगत सुतो म्लेच्छो जातो दामोदरस्य यः ॥
गृहे किमपि नाऽऽत्रासमासीद्रव्यं पितुर्हियत् ॥२९८॥
शिर आहतवानुक्तवृत्तान्तः केनचित् खलः ॥
नौकामनुगतोप्येको न प्रापाऽसौ दिगंतरम् ॥२९९॥
अथकैद्दोक्तमागत्य वैष्णवैर्हितमीप्सुभि· ॥
श्रीदामोदरदासस्य श्वसुरादिभिरागतै· ॥३००॥
पुत्रिके भक्ष्यमप्यास्ते धान्यं नेह किमत्स्यसि ॥
तयोक्त यद्भवद्भिर्हिदेयं भोक्ष्यामि नान्यथा ॥३०१॥
इत्यभिप्रेत्य करुणैर्यद्दत्तं भक्षणं हि तै. ॥
तेनैवाऽऽमृति निर्वाहं कुर्वाणाऽगाद्धरेः पदम् ॥३०२॥

इतिश्री वैष्णववार्त्तामालायां तृतीयवार्तामणिः

वार्ता ४

पद्मनाभः कान्यकुब्जजातीयः कोपि ब्राह्मणः ॥
श्रीमदाचार्यशरणस्तस्य वार्ता निरूप्यते ॥२०३॥

कान्यकुब्जः पद्मनाभो व्यासासनसमाश्रितः ॥
कथां कथयति स्माऽग्रे श्रोतॄणां वृत्तिर्मस्ततः ॥२०४॥

प्रष्टुमार्यानतो जानँस्तत्राप्तान्पुरुषोत्तमान् ॥
प्रपन्नः शरणं तेषां भक्तः स्वात्मसमर्पणी ॥२०५॥

उत्थापनक्षणे श्रीमदाचार्याः स्वासने स्थिताः ॥
कथां भागवतीं वक्तुं दामोदरसखान्प्रति ॥२०६॥

प्रथमं स्वनिबन्धं सत्पद्यं प्रोचुर्हितार्थिनः ॥
" पठनीयं प्रयत्नेन श्रीभागवतमादरात् ॥२०७॥

वृत्त्यर्थं नैव युञ्जीत प्राणैः कण्ठगतैरपि " ॥
श्रुत्वेति सोऽम्भोञ्जलिना संकल्पं कृतवानिमम् ॥२०८॥

वृत्त्यर्थं नैतत्कर्तेति तमाचार्यास्तदाब्रुवन् ॥
वृत्त्यर्थं नैतदार्योन्यं तदा तेनोक्तमीश्वराः ॥२०९॥

संकल्पो मे कृतः किंचिन्नकार्यमिति वै गतः ॥
स्वीयानां यजमानानां गृहे तैरादृतो बहु ॥२१०॥

इतस्तु ग्लानिमाप्तो न वैष्णवस्य ममोचितम् ॥
उक्तश्चार्यैस्तव कथं निर्वाहो भविता वत ॥२११॥

तदोक्तवान् पद्मनाभो वैश्यवृत्त्येति निश्चितः ॥
एकदा श्रीमदाचार्यैः प्रयागे सुशयालुभिः ॥२१२॥

निशीथार्द्धे पद्मनाभदासः आज्ञापितः सकृत् ॥
आनयस्व गृहादकामिति सत्वरमुत्थितः ॥२१३॥

प्रतिषिद्धोपि वहुभिर्वैष्णवैर्भो· क यास्यसि ॥
निशीथार्द्धेऽत्र नौर्वद्रा सुप्ता· कर्णधरा इति ॥२१४॥
गुरूणामविचार्याज्ञेत्येकवाक्येन चोदितः ॥
वेणोर्तीरं समासाद्य नाऽपश्यत्कमपि क्वचित् ॥२१५॥
स एतर्ह्येव कमपि ह्यकस्माद्बालमागतम् ॥
दशार्द्धवयसं धृत्वा प्लवमेकं ददर्श ह ॥२१६॥
वालेन पृष्ट किमहो पारमस्या यियाससि ॥
तदोक्तवान् पद्मनाभो हंहो पारं यियासितम् ॥२१७॥
तेन प्लवे स आरोह्य पारमुत्तारित· क्षणात् ॥
पृष्टोऽप्येष्यसि किं भूय इति श्रुत्वाऽवदत्स तम् ॥२१८॥
आयास्ये घटिकामध्ये तेनोक्तं त्वरयत्विति ॥
ततस्तु पद्मनाभोऽपि गत्वा प्रागन्तरालयम् ॥ २१९॥
विज्ञप्तिपूर्वमक्कां स्वामानिन्ये वालकप्लवे ॥
वालेन प्रेरिते देवीमारुढां पारमानयत् ॥२२०॥
उत्तीर्य पश्चात्नाऽपश्यत् प्लवं नैव च वालकम् ॥
विस्मित स समावेद्य तामक्कामागतां पुर· ॥२२१॥
श्रीमदाचार्यपादानां प्रणत साञ्जलिः स्थितः ॥
दृष्ट्वा तु श्रीमदाचार्यैराज्ञप्तस्तुष्टमानसै· ॥२२२॥
शयस्व साम्प्रतं नक्तमिति सुष्वाप नोदित ॥
वैष्णवानां तदा तेषां मध्ये तै पृष्ट आदरात् ॥२२३॥
किं विधाय गतोसीति तेन सर्वं तदीरितम् ॥
तदोक्तं वैष्णवैर्मित्र प्रभुस्ते प्रापित· श्रमम् ॥२२४॥

आयातो वालरूपेण प्लवं धृत्वा निशीथके ॥
इत्याकर्ण्याऽभवत्तूर्ष्णीभूतः सुप्त. स निद्रया ॥३२५॥
प्रातः समुत्थितैरस्य वैष्णवैरीरितं पुनः ॥
श्रीमदाचार्यपुरत· पद्मनाभविचेष्टितम् ॥३२६॥
स्वप्रभोः श्रमदानादि श्रुत्वाचार्यैस्तदीरितम् ॥
सत्यमेतत्परमिदं मदिच्छातोऽस्यनाऽग्रहात् ॥३२७॥
नाऽधुना प्रतिदेष्टव्यो भवद्भिर्वैष्णवैः क्वचित् ॥
एकदा श्रीमदाचार्याश्चलिता व्रजगोकुलात् ॥३२८॥
अरिल्लं स्वमार्गमध्ये सङ्गताः क्षत्रियेण ह ॥
व्यापारिणा केनचित्संद्वाणिज्यपरिवारिणा ॥३२९॥
कान्यकुब्जदिशं मन्दं चलता सार्थमारिणा ॥
निरपेक्षास्तदाचार्या अग्रतो दूरमुज्झिता. ॥३३०॥
पश्चात्स्थित. स च शठैश्चोरैः पथि विलुण्ठितः ॥
श्रीमदाचार्यपादास्तु कान्यकुब्जपुरङ्गता. ॥३३१॥
स्वदामोदरदासस्य गृहे समुषिता मुदा ॥
प्रणताः सत्कृतास्तेन सकुटुम्बेन चात्मवत् ॥३३२॥
तत्रान्नं रन्धितं कृत्वाऽर्पयामासुः प्रभो· पुरः ॥
एतावता क्षत्रिय. स क्रन्दमान· समागतः ॥३३३॥
पप्रच्छान्यान्वताचार्या किं कुर्वन्त. क्वचाऽसते ॥
तदाश्रुत्य पद्मनाभदासेन हृदि चिन्तितम् ॥३३४॥
भोजने ह्यत्राऽऽचार्याणां वैयग्र्यं भवितेत्यत. ॥
उत्थित. पाणिना धृत्वा व्यापारिणमथाऽनयत् ॥३३५॥

बहिः प्रदेशे दूरेण पृच्छति स्म स तं शनै. ॥
भ्रातर्हृतं कियद्द्रव्यं चोरैस्तत्ते ददाम्यहम् ॥३३६॥
मा शुचो दैवविहतं यदीश्वरवशं जगत् ॥
तदा व्यापारिणा प्रोक्तमियद् द्रव्यं गतं मम ॥३३७॥
तदाश्रुतवता पद्मनाभदासेन वै करे ॥
गृहीत्वा श्रेष्ठिनः साधो स नीतः कस्यचिद् गृहे ॥३३८॥
आराद् दृष्ट्वा पद्मनाभदासं स श्रेष्ठिसंज्ञक· ॥
स्वागतं पृष्टवानाज्ञा दीयतां कथमागति· ॥३३९॥
तदा प्रोक्तं पद्मनाभदासेन श्रेष्ठिसत्पते ॥
अस्मै व्यापारिणे देयमियद् द्रव्यं गिरा मम ॥३४०॥
तावद् द्रव्यस्यास्य पत्रं मूल्वृद्धियुतं लिख ॥
तन्निशम्येरितं साधु श्रेष्ठिना लिखितेन किम् ॥३४१॥
यद् द्रव्यं वाञ्छितं यावद् गृह्यतां तावदेव तत् ॥
तत्रोक्तं पद्मनाभेन नाऽदास्ये लिखितं विना ॥३४२॥
तदोक्तं श्रेष्ठिना द्रव्यमेव ग्राह्यं निजेच्छया ॥
लिखित्वा तु तदा पत्रं पद्मनाभेन हस्तत· ॥३४३॥
विन्यस्य धर्मं तद्द्रव्यग्रहणे श्रेष्ठिकोन्वितः ॥
प्रदाप्याऽभीप्सित द्रव्यं व्यापारी क्षत्रियोऽपि सः ॥३४४॥
विसर्जितः पद्मनाभदासोऽथाऽचार्यवर्यकै. ॥
भुक्तवद्भिर्बुधै पृष्टः किमर्थं गतवान् क्व भोः ॥३४५॥
स तदा साञ्जलि· प्राह वहिः किंचित्कृते गत· ॥
तथापि श्रीमदाचार्यैरीश्वरैर्विदितं हि तत् ॥३४६॥

आक्षिप्योक्तमहो किंवा वयं तत्सार्थरक्षकाः ॥
तद्व्यापारप्रसक्ता वा यद्द्रव्यंदेयमेव न. ॥३४७॥
पश्चात्किमर्थं रहितो भारवाही स बाहुजः ॥
यच्चोरैर्लुण्ठितोऽकस्मादिति कुर्मो वयं हि किम् ॥३४८॥
त्वया चैतद्वत महत्कृतं दुश्चेष्टितं वृथा ॥
ऋणं कृत्वा धनं दत्तं लिखित्वा पत्रमात्मना ॥३४९॥
तदाकर्ण्येरितं पद्मनामदासेन धीमता ॥
महाराजधिया भोक्तुमुद्यतेषु भवत्स्विह ॥३५०॥
क्रन्दमानः समायातः क्षत्रबन्धुः स लुण्ठितः ॥
तथा दृष्टो भुञ्जतां हि वैयग्र्ये हेतुरित्यतः ॥३५१॥
समाधाय बहिर्नीतोऽन्यथा मे जन्म वै वृथा ॥
ऋणं कृतं यत्तद्देयं परेद्युरपि संभवेत् ॥३५२॥
तदाकर्ण्योक्तमाचार्यैस्तर्हि पत्रे त्वया कृत. ॥
धर्मो विन्यस्य लिखित परस्वार्थं वदेति मे ॥३५३॥
स चोक्तवान्महाचार्या गाढलेखं विना क्वचित् ॥
न दातुं संभवेत् द्रव्यमृणनिर्मुक्तिपूर्वकम् ॥३५४॥
इत्याकर्ण्य प्रसन्नैस्तैर्ज्ञातहार्दैर्महाशयैः ॥
प्रस्थितं श्रीमदाचार्यैररिल्लग्रामसंमुखे ॥३५५॥
पद्मनाभो गतो विप्रो राजानं क्वचिदेकदा ॥
वीक्ष्यैनमागतं राजा प्रत्युत्थायाऽभिवन्द्य च ॥३५६॥
उवाच मह्यं भो ब्रह्मन् कथां श्रावय वैष्णवीम् ॥
तदावोचत्पद्मनाभः कथां भागवतीं तु न ॥३५७॥

भारतीं श्रावयिष्यामि चेद्राजन् श्रोतुमिच्छसि ॥
तदोवाच महान् राजा बाढं श्रोष्यामि भारतम् ॥३५८॥
इत्यामन्त्र्यैव नृपतिरेकदा सुमुहूर्तके ॥
वाचयामास स कथां भारतीं पद्मनाभतः ॥३५९॥
पद्मनाभो महान् वक्ता वाचयामास भारतीम् ॥
कथां नित्यं नियमतो राजलोकस्य संसदि ॥३६०॥
कथां वाचयता नित्यं यदा युद्धप्रसङ्गकः ॥
आगतस्तेन वै प्रोक्तं सर्वेषां शृण्वतां पुरः ॥३६१॥
अद्य शस्त्रायुधानीह सर्वैर्मुक्त्वा निशम्यताम् ॥
तदाज्ञया राजलोकैर्मुक्त्वा शस्त्रायुधानि तैः ॥३६२॥
उपविष्टं श्रोतुमेकचेतसा भारतीं कथाम् ॥
भारतं युद्धमाश्रुत्य पद्मनाभेन वाचितम् ॥३६३॥
तदैवात्यद्भुतो वीररसः प्रादुर्बभूव यत् ॥
अन्तस्तेषां मिथः स्वेषां मुष्टामुष्टि पदापदम् ॥३६४॥
युद्धमासीत्कियत्कालं प्रशशाम स्वतः क्षणात् ॥
यावद्युद्धप्रसंगीयकथा तावदभूदिति ॥३६५॥
कियद्दिनावसानेन समाप्तां भारतीं कथाम् ॥
श्रुतवान्पूजयामास पुस्तकं वाचकं नृपः ॥३६६॥
ददाति स्म बहु द्रव्यं दक्षिणां वाचकाय सः ॥
तदोक्तवान् पद्मनाभदासो राजानमादरात् ॥३६७॥
राजन् भार धनस्येमं न गृहीष्यामि ते वृथा ॥
अपेक्षितं गृहीष्येऽहमृणनिर्मुक्तिहेतवे ॥३६८॥

राज्ञोक्तं बाढमस्त्वेवमिति दत्तं धनं मुदा ॥
तदा स्वापेक्षितं पद्मनाभस्त्वादाय जग्मिवान् ॥३६९॥
तस्यैव श्रेष्ठिनो हस्ते तत् द्रव्यं दत्तवान् स्वयम् ॥
वृद्धिमूल्युतं लेखपत्रं पाटितवाँस्ततः ॥३७०॥
मन्वानः स्वं सुकृतिनं पद्मनाभस्ततो महान् ॥
किं च श्रीपद्मनाभस्य कान्यकुब्जद्विजन्मनः ॥३७१॥
गृहे पुत्री कुमार्येका तदर्थं वर उत्तम. ॥
श्रीमदाचार्यसंसेवी विप्र. संनाहमोचक· ॥३७२॥
विचारितः कृष्णभक्तिमधुमत्तहृदा कचित् ॥
पद्मनाभो विस्मृतस्वव्यवहारो दिने शुभे ॥३७३॥
वरस्य वैष्णवैः साकमलिके तिलकं व्यधात् ॥
स्वहस्तेन समाजे स ततः स्वगृहमागतः ॥३७४॥
अवदत्तुलसाख्याया ज्येष्ठाया दुहितु· पुरः ॥
पुत्रिके ते कनीयस्या स्वसुरुद्वाहयोजनम् ॥३७५॥
वरेण तेन विप्रेण सममद्य मया कृतम् ॥
तदोक्तं तुलसानाम्न्या हंहो किमिति ते कृतम् ॥३७६॥
संनाहमोचको विप्रो पसे ह्यभिमत· कथम् ॥
तदा ध्यात्वा पद्मनाभदासेनोक्तमहो सुते ॥३७७॥
जातं यदधुना जातं संभवेत्तत्कथं मृषा ॥
तदा प्रोक्तं तुलसया संबन्ध परिवर्त्यनाम् ॥३७८॥
श्रुत्वेदं पद्मनाभेन प्रोक्तं तर्हि सुतेऽधुना ॥
छुरिकामानयस्वेह छिन्द्यामङ्गुष्ठकं यत. ॥३७९॥

तिलकं रचितं तस्य भाले सर्वसमक्षतः ॥
तदा पुनस्तुलसया प्रोक्तमङ्गुष्ठकं त्वया ॥३८०॥
किमति च्छिद्यते तात ततस्तेनेरितंपुनः ॥
दुहितुः कृतसंबन्धः परिवृत्येत वै कथम् ॥३८१॥
इत्युक्त्वोपरराामाथ तथा तामुद्वाहयत् ॥
कालान्तरे पद्मनाभो वैष्णवः सत्यवाग् द्विजः ॥३८२॥
अन्यवैष्णववाक्यैकविश्वासभरयन्त्रितः ॥
भगवत्प्रेममत्तश्च चकार न ततोऽन्यथा ॥३८३॥
किंचास्य क्षत्रियाण्येका पद्मनाभस्य वै गृहे ॥
आयान्ती प्रत्यहं दृष्टा पृष्टा तुलसया क्वचित् ॥३८४॥
किमित्यायासि हे नित्यमिति पृष्टा जगाद सा ॥
अयं महांस्त्रिकालज्ञस्तव तातोऽत्र वैष्णवः ॥३८५॥
संततिर्न ममेत्यर्थमायामि प्रत्यहं त्विह ॥
पुत्रि त्वं मे तदेवास्य विज्ञापय पुरः क्वचित् ॥३८६॥
तच्छ्रुत्वाऽग्रे तुलसया पितुर्विज्ञापितं क्वचित् ॥
तन्निशम्याज्ञतमग्रे तर्ह्यानय जलं मम ॥३८७॥
तदानीत जलं स्वस्य पदा स्पृष्टं ददौ तदा ॥
क्षत्रियाण्यै पद्मनाभः प्रोक्तवांस्त्रिः पिबेति वै ॥३८८॥
पुत्रस्ते भविता भद्रे मथुरादासनामतः ॥
आकारणीयो भक्त्या स बन्धुभिर्याहि ते गृहम् ॥३८९॥
इत्युक्ता सा लब्धवरा गृह्णन्ती चरणोदकम् ॥
तथैव गृहमागत्य कृतवत्यचिरेण ह ॥३९०॥

तथा प्राप्तवती पुत्रं मथुरादासनामकम् ॥
यत्प्रसादात्क्षत्रियाणी स्वमूर्त्तिसिद्धमनोरथा ॥३९१॥
स वैष्णवः पद्मनाभदासः स्वाचार्य सेवकः ॥
गोवर्द्धनेशाभ्यन्तर्यसेविनो वैष्णवस्य स. ॥३९२॥
रामदासस्य विप्रस्य पद्मनाभः पुराऽभजत् ॥
सेव्यं प्रभुं नित्यदा हि ब्राह्मणे ब्राह्मणो गतिः ॥३९३॥
एकदा तत्र वै देशे यवनो मौनसंज्ञितः ॥
आगतो ग्राममारुध्य सर्वं लुण्ठितवान् खल. ॥३९४॥
रामदासनिषेव्यं तं प्रभुं मौनो गृहीतवान् ॥
दृष्ट्वा तथा हृतं तेन प्रभुं मोनेन मौनतः ॥३९५॥
अन्वियाय शनैः पद्मनाभदासोऽपि दूरतः ॥
नाम्भोऽपि पीतवान्सप्तदिनावधि विना प्रभुम् ॥३९६॥
मौनद्वारस्थितो दीनो हीनोऽप्यनशनव्रती ॥
अष्टमेह्नि यवन्योक्तो यवनः सामवाक्यतः ॥३९७॥
अन्वायातो द्विजः कश्चित् द्वार्येकोऽनशन. स्थितः ॥
निरम्बुपानः सहसा यतोऽग्रेऽयं मरिष्यति ॥३९८॥
हत्या तव शिरस्येषा मा भूद् देहीति तत्प्रभुम् ॥
तदाकर्ण्यैव यवनः प्रभु तस्मै न्यवेदयत् ॥३९९॥
स पद्मनाभदासोऽपि व्सासो पिहितमम्बरे ॥
रामदासप्रभुं देवमादाय गृहमागतः ॥४००॥
पञ्चामृतेन मन्त्रेण स्नापयित्वा शुभासने ॥
तं प्रतिष्ठापयामास वासोभूषायलंकृतम् ॥४०१॥

भोगमावेद्य नैवेद्यं ततो व्यासोऽपि भुक्तवान् ॥
इति ज्ञातं रामदासेनात्माभ्यन्तरसेविना ॥४०२॥
तस्मिन्नेव दिने श्रीशपुरे गोपालके स्वत· ॥
हाहाकारं कृतवता तेन सप्तदिनावधि ॥४०३॥
नोपभुक्तं प्रसादान्नं स्वसेव्यदुरवग्रहात् ॥
परन्तु गोवर्द्धनेशसेवां स्वीकुर्वता स्थितम् ॥४०४॥
इति वृत्तं श्रुतवता पद्मनाभेन वै क्वचित् ॥
आगतं श्रीनाथदेवं द्रष्टुं गोपालके पुरे ॥४०५॥
संगतो रामदासेन पृष्टो वै पद्मनामक. ॥
अहो कष्टमुरु प्राप्तो यवनप्रभुनोद्यतम् ॥४०६॥
तदा व्यासः पद्मनाभ· प्रोक्तवान् रामदासकम् ॥
यल्लभ्येत मया दु.खं तद्युक्तं यत्प्रभुस्त्वया ॥४०७॥
सेव्यो मे शिरसि न्यस्त सदसञ्चोपयाजितम् ॥
प्रसादान्नं न सप्ताह भवतात्तं किमित्यहो ॥४०८॥
तदोक्तं रामदासेन व्यास सत्यं त्वयोदितम् ॥
तथापि तु चिरं सेवा कृता सेव्यस्य यन्मया ॥४०९॥
तत्सबन्धेऽक्षये तावत्कृतं युक्तं विचार्यताम् ॥
किं च व्यास· पद्मनाभ प्रभुं श्रीमथुराधिपम् ॥४१०॥
स्वसेव्यमेकदादाय सकुटुम्बश्च निर्धन ॥
अरिङ्ग्राममेयाय स्वाचार्यान्त्यालये स्थितः ॥४११॥
नित्य श्रीमथुरानाथप्रभो· सेवां समाचरत् ॥
घृतपक्वैर्नव्यहरिच्चणकैर्भोगमार्पयत् ॥४१२॥

हरित्पालाशपत्रेषु पुटकेषु च राशितः ॥
मुद्गा एते भक्तमेतद् व्यञ्जनं पायसं घृतम् ॥४१३॥
वटकाः क्वथिताद्योघः शर्करा मुष्टिभिः पृथक् ॥
तत्तत्समग्रसामग्रीनामभिर्व्याहरत्पुरः ॥४१४॥
तथा भावत एवास्य प्रभुर्नैवेद्यमश्नुते ॥
तदूहितं वैष्णवेन केनचित् ज्ञापितं पुरः ॥४१५॥
श्रीमदाचार्यपादानां चणकोरुविधार्पणम् ॥
कदाचित्स्वेच्छयाऽऽचार्याः प्रभोर्भोगसमर्पणे ॥४१६॥
समागताः पद्मनाभदासेनोपहृतं नवै. ॥
नित्यवच्चणकैरेव सर्वसामग्र्युपायनम् ॥४१७॥
पृथक् पप्रच्छुरालोक्य पद्मनाभ महामते ॥
पुटकेषु च पत्रान्यां का एता राशयः कृताः ॥४१८॥
तदाऽवोचत्पद्मनाभो महाराजा इमे पृथक्
राशयः सर्वसामग्र्यो दध्यद: पायसं घृतम् ॥४१९॥
शर्करेयं शिखरिणी व्यञ्जनं मुद्गभक्तकम् ॥
इत्यादयोऽर्पिता एते हरिद्भिश्चणकैः कृताः ॥४२०॥
इत्याकर्ण्याऽऽचार्यवर्यैस्ततः क्लिन्नहृदेरितम् ॥
ज्ञातं हा द्रव्यसंकोचादित्थं भोगोऽर्प्यतेऽमुना ॥४२१॥
तत आगत्यात्मगृहमक्रां प्रत्युक्तमार्यकैः ॥
अकिंचनस्य भोः पद्मनाभदासस्य वै गृहे ॥४२२॥
भोगार्थमत्र सामग्री प्रत्यहं प्रेष्यतामिति ॥
अक्रयोमित्युरीकृत्य द्वितीयदिवसात्ततः ॥४२३॥

प्रेषिताऽमान्नसामग्री पद्मनाभगृहे प्रभोः ॥
वीक्ष्याऽसां तां तुलसया पद्मनाभं प्रतीरितम् ॥४२४॥
प्रायोऽस्मान्प्रभुरस्माकं निर्वासयितुमुद्यतः ॥
आचार्या धान्यभारेण दीनान् स्वान् परिपीडयन् ॥४२५॥
इत्याकर्ण्योद्विग्नमना· पद्मनाभः कथंचन ॥
अर्थं व्ययार्थं संगृह्य गन्तुकामो परत्र च ॥४२६॥
नाव्येकस्यां स्वमारोप्य मथुरेशं कुटुम्बकम् ॥
समागतः प्रणामार्थमाचार्यचरणान्तिकम् ॥४२७॥
तं सज्जितं क्वापि यातुं प्रेक्ष्याऽथाऽचार्यपण्डिताः ॥
पृष्टवन्त. पद्मनाभ सेव्यः क्वाऽस्ते तव प्रभुः ॥४२८॥
तदोक्तवान् पद्मनाभ· प्रस्थितो नावि मे प्रभु· ॥
नौश्चास्माच्चलिता ग्रामादित्यवेत्य विसर्जित· ॥४२९॥
पद्मनाभो द्वित्रदिनप्रापितामान्नसंचयम् ॥
प्रापय्य श्रीमदाचार्यभाण्डागारे परोक्षत· ॥४३०॥
जगाम नावमारूढो देशान्तरमकिंचन· ॥
विसर्जनानन्तरं हि भाण्डागारे परोक्षत ॥४३१॥
श्रीमदाचार्यनिकटे प्रोक्तं यत्प्रापितं गृहे ॥
भाण्डागारे स्वमामान्नं पद्मनाभेन तत्समम् ॥४३२॥
इत्याश्रुत्योक्तमाचार्यै सोऽन्नसकोचतो गत· ॥
हन्त ग्रामादितोऽस्माकमावासात्सेवक· खलु ॥४३३॥

इति श्रीमद्वैष्णवकथासुमालिकायां चतुर्थवार्तामणिः

वार्ता ९

पद्मनाभस्य या पुत्री तुलसी कीर्तिता पुरा ॥
तस्या भगवदीयाया भव्या वार्ता निरूप्यते ॥४३४॥
श्रीमदाचार्यचरणसेवक· कोऽपि वैष्णव ॥
आयातस्तुलसागेहे कृतवान् दर्शनं प्रभो· ॥४३५॥
तदा तुलसया प्रोक्तं स्नातव्यं वैष्णव त्वया ॥
वैष्णवेनेरितं गत्वा स्नास्यामि स्थानके स्वके ॥४३६॥
तदा तुलसया तूष्णींभूय स्थितमधोदृशा ॥
उक्तं हा वैष्णवो यातो मम गेहादभोजितः ॥४३७॥
ज्ञातं ज्ञातं गतो ज्ञात्वा सामग्री रन्धितेति ते ॥
शुचयो ब्राह्मणा अन्यजातीया व्यवहारतः ॥४३८॥
वाढं भूयः प्रातरहमरन्धितमुदारतः ॥
घृतपक्वं प्रसादान्नं चित्रधा रचित प्रभोः ॥४३९॥
भोजयामीति मिष्ठान्नसारं गोधूमपिष्टजम् ॥
सुष्वाप तुलसा स्वप्ने मथुरेश उवाच तां ॥४४०॥
वैष्णवात्तं प्रसादान्नं तुलस्या न कथं गृहे ॥
अद्य गत्वोपभोक्तव्यं वैष्णव्या सत्कृतेन रे ॥४४१॥
तुलसे वैष्णवं तं त्वं प्रसादान्नेन तर्पय ॥
स सत्कृतस्त्वया भद्रे भोक्ष्यते नात्मगेहजम् ॥४४२॥
इत्याकर्ण्य प्रबुद्धा सा प्रात स्नात्वा चकार ह ॥
पक्वान्नं पूरिकामिष्टमथ श्रीमथुराधिपम् ॥४४३॥
प्रबोध्य स्नापयित्वा तु यावच्छृङ्गारयेत् प्रभुम् ॥
तावत्समागतः सोऽपि वैष्णवो हर्षितः ।

प्रातस्तुलस्या· सदने दर्शनं कृतवान्प्रभोः ॥
समर्प्याथो राजभोगं तुलसा बहिरागता ॥४४५॥

उपविष्टं वैष्णवं तं स्नानार्थमपि चेरयत् ॥
तदोक्तं तेन भो भद्रे प्रातः स्नातं पुनर्मया ॥४४६॥

स्नातव्यमित्येवमुक्त्वा भूय स्नात स वैष्णवः ॥
अस्मरच्छरणं कृष्णो ममेति च वदन्मुहु· ॥४४७॥

एतावता तुलसया राजभोगोऽपि सारितः ॥
राजभोगारार्त्तिकं श्रीदर्शनं कृतवान्प्रभोः ॥४४८॥

कृत्वाऽनवसरं प्रागात्तुलसा बहिरादरात् ॥
इहासितव्यमिति सा निवेश्य शुचिमानयत् ॥४४९॥

अरन्धितं प्रसादान्नं घृतपक्का सुपूरिकाः ॥
वटका मिष्टमित्यग्रे पत्राल्यां परिवेषितम् ॥४५०॥

भोक्तव्यं वैष्णव मुदेत्युक्तं तुलसया तदा ॥
श्रुत्वेरितं वैष्णवेन भोक्ष्ये नेदं हि केवलम् ॥४५१॥

अहं तु रन्धितं भोक्ष्ये तुलसे तत्समानय ॥
तदेरित तुलसया संकोच· क्रियतां न भोः ॥४५२॥

भवता विसजातीयव्यवहारो विचारित· ॥
तदोक्तं वैष्णवेनेत्थं सत्य प्राक् हृदि मे स्थितम् ॥४५३॥

परन्तु जातं मे स्वप्ने मथुरेशानुशासनम् ॥
तेन भोक्ष्ये रन्धितं श्रीप्रसादान्नं.च नान्यथा ॥४५४॥

इत्यावेदितवृत्तान्तो वैष्णवस्तुलसार्पितम् ॥
रन्धितं तत्प्रसादान्नं वैष्णवो बुभुजे प्रभो· ॥४५५॥

भोजयित्री प्रसादस्य तुलसी वैष्णवश्च भुक् ॥
प्रसीदतो मिथश्चोभौ मथुरेशानुमोदितौ ॥४५६॥

क्वचिद् गोस्वामिभिर्यातं तुलसाया गृहे मुदा ॥
तत्रैव भोजनं कृत्वा सुप्तमुत्थापनावधि ॥४५७॥

स्वासनेऽथोपविष्टैस्तैस्तां प्रत्युदितमादरात् ॥
कृष्णवार्तानन्तर भो· पद्मनाभस्य संततिः ॥४५८॥

एवंविधैवोचितेति तुलसे वः प्रभु· क्वचित् ॥
दर्शयत्यनुभावं स्वमिति पृष्टा जगाद सा ॥४५९॥

संशेमहे महाराजा· सम्प्रत्यभो, भृतोदरम्
श्रुत्वेति तुष्टास्ते प्रोचुर्वैष्णवस्य प्रभुस्त्वहो
आर्ति न सहते जातु दयालुरिति मे मति· ॥ ॥४६०॥

इति श्रीमद्वैष्णवकथासुमालिकायां पञ्चमवार्तामणिः

वार्ता ६

किंच पूर्वोक्तस्य तस्य पद्मनाभस्य वै स्नुषा ॥
विधवावीरसू· प्रीत्या प्रभो सेवां सदाचरत् ॥४६१॥

पुरुषोत्तमदासश्च मेघराट् वैष्णव· क्वचित् ॥
प्रीत्या वैष्णवतारीत्या प्रपुनाति स्म यद्गृहम् ॥४६२॥

कियद्दिनोत्तरं साध्वी पार्वती तस्य सा स्नुषा ॥
श्वित्रेण श्वेततां याता रोगेण करपादयो. ॥४६३॥

नानाविधान्नसामग्रीं प्रभो सेवा कराढिना ॥
तथाविधेन कुर्वन्ती मनसि ग्लानिमानयत् ॥४६४॥

लिखित्वात्मसमाचारान् पत्रं सा पुरुषोत्तमे ॥
प्रेषयामास दीनारं स्वाचार्यार्थमुपायनम् ॥४६५॥

वाचयामास तत्पत्रं पुरुषोत्तमदासक· ॥
यत्त्वमाचार्यनिकटे पृच्छ मे श्वित्रकं कथम् ॥४६६॥

निवर्त्तेताशु संभूतमति पृष्ठाङ्घ्रिहस्तयोः ॥
अङ्गसेवां पाकसेवां कुर्वन्त्या ग्लानिरेति मे ॥४६७॥
ततोऽत्र कुर्यां किमिति पत्रमादाय सोऽगमत् ॥
श्रीमदाचार्यवर्याणामन्तिके स तदाज्ञया ॥४६८॥
श्रावयामास पत्रस्थान् समाचारान् व्यजिज्ञपत् ॥
पार्वत्योपहृतां स्वर्णमुद्रामग्रे न्यवेदयत् ॥४६९॥
तदाकर्ण्योक्तमाचार्यैः पश्चाद्वक्ष्ये प्रतिक्रियाम् ॥
दिनद्वयोत्तरं भूय आचार्यैरेव वेदितम् ॥४७०॥
पुरुषोत्तमदासाग्रे तस्याः पत्रे विलिख्यताम् ॥
सुखेन पाकाङ्गसेवां कुर्वत्याग्लानिरण्वपि ॥४७१॥
त्वया न कार्या मनसि प्रभुः क्षेमं विधास्यति ॥
रोगं निवृत्तमचिरादिति तैः स विसर्जितः ॥४७२॥
पुरुषोत्तमदासोऽपि समायातो निजे गृहे ॥
श्रीमदाचार्योक्तरीत्या प्राहिणोल्लिखितं दलम् ॥४७३॥
पार्वत्या अपि हस्ताङ्घ्री मासत्रिचतुरान्तरे ॥
विनिवृत्तश्वित्ररुजौ सेवया परया प्रभोः ॥४७४॥
तुष्टा प्रभुं भजन्ती स्वं पार्वती प्रकृतिं गता ॥
भूयः पत्रं स्वर्णमुद्रां प्राहिणोद्यो विभूत्तमाः ॥४७५॥
भवत्प्रसादाद्विरुजा भजामीति विलिख्य सा ॥
तच्छ्रुत्वा श्रीमदाचार्यास्तुष्टा ऊचुर्महत्सुखम् ॥
जातं प्रभुः स्वया वृत्त्या साहाय्यं कृतवानिति ॥४७६॥
इति श्रीमद्वैष्णवकथासुमालिकायां षष्ठो वार्तामणिः

वार्ता ७

पार्वत्याश्चसुतो नाम्ना रघुनाथ इतीरितः ॥
पद्मनाभस्य पौत्रः स गतो वाराणसीं चिरात् ॥४७७॥
तत्र शास्त्रमधीत्योरु श्रीगोकुलमिहागतः ॥
प्रणतः श्रीविठ्ठलेशान्दण्डवत् पूर्ववैष्णव ॥४७८॥
श्रीमदाचार्यचर्याङ्गीकृतवंश्यानुरोधत. ॥
गोस्वामिपादाः सुकथां कथयन्ति स्म यत्पुर ॥४७९॥
रघुनाथः शृणोति स्म वाच्यमानां कथांसुधी ॥
एकदा परमानन्दस्वर्णकारेण चादरात् ॥४८०॥
पृष्टो भो रघुनाथ त्वं वाराणस्यामधीतवान् ॥
कथां किमनुसंधत्से श्रीगोस्वामिसमीरिताम् ॥४८१॥
तर्हि तां कथयास्माकं श्रोतॄणामविदां पुरः ॥
तदोक्तं रघुनाथेन सत्यं वेद्मि न पद्धतिम् ॥४८२॥
तेन मे बुद्धिविण्या न कथेयमिति ध्रुवम् ॥
निशम्य परमानन्दस्वर्णकारेण तत्पुन ॥४८३॥
श्रीगोस्वाम्यन्तिके प्रोक्तं महाराजधिया खलु ॥
श्रोता न रघुनाथोऽनुसंधत्तेऽण्वपि व कथाम् ॥४८४॥
इति स्माकर्ण्य गोस्वामिपादात्तं रघुनाथकम् ॥
द्वित्रानध्याप्य स्वाचार्यग्रन्थानाहुः प्रणाल्किाम् ॥४८५॥
ततस्तु सर्वं बुबुधे प्रकारं भक्तिवर्त्मनः ॥
शास्त्ररीत्या बुधो जातु कान्यकुब्जे समागतः ॥४८६॥
मातरं पार्वतीं प्राह भविष्यामि पृथक् गृही ॥
प्रभोः सेवां करिष्यामि श्रुत्वेत्थं तं जगाद सा ॥४८७॥

बाढं कुर्वित्यथाऽप्येषा प्रभुं पर्यचरद्बहिः ॥
प्रत्यहं नीरमानिन्ये प्रातः पात्राण्यमार्जयत् ॥४८८॥
परिचारक्रियां कृत्वा राजभोगोत्तरं गृहे ॥
गत्वात्मनः पृथक् कृत्वा लीटिकाः प्रार्पयन्मुदा ॥४८९॥
प्रत्यहं प्रभवे तस्मै भुङ्क्तेऽस्यास्तु प्रसादतः ॥
पञ्चसप्तदिनान्ते श्रीमथुरेशेन सेरिता ॥४९०॥
वधु पार्वति मेत्यन्तं कण्ठः खरखरायते ॥
लीटिका भोजिताः शुष्का नित्यं, सूपं क्वचित् कुरु ॥४९१॥
तदाकर्ण्येति पार्वत्या प्रोक्तं भो भवता प्रभो ॥
भुज्यन्ते वै बहुविधाः सामग्र्योऽस्य गृहे सदा ॥४९२॥
कोऽयं हि तव निर्बन्धः शुष्कलीटीप्रभोजने ॥
तदोक्तं प्रभुणा भद्रे त्वद्धस्तकृतमद्म्यहम् ॥४९३॥
इति श्रुत्वा प्रभोर्वाक्यं तद्धितार्थाय पार्वती ॥
सूपोदनं शाकमपि कृत्वा प्रार्पयदन्वहम् ॥४९४॥
ततोऽचिरादेव तेन पुत्रेणोक्ता च पार्वती ॥
त्वमेव तु प्रभोः पाकसेवां कुर्विति चासकृत् ॥४९५॥
तदा पुनः पाकसेवां कुर्वाणा पार्वती प्रभोः ॥
वत्सला वत्सलस्येव जननी सुखमन्वभूत् ॥४९६॥
इतिश्रीमद् वैष्णवकथासुमालायां सप्तमवार्तामणिः ॥

वार्ता ८

किंचासीत् क्षत्रियाण्येका रज्जोनाम्नीति विश्रुता ॥
श्रीवल्लभाचार्यवर्यसेविका शरणं गता ॥४९७॥

नित्यं पक्वान्नसामग्रीं नूतनां विरचय्य सा ॥
नक्तं निवेदितवती श्रीमदाचार्यभुक्तये ॥४९८॥
तां भुञ्जते स्म ते नित्यं प्रीत्या तद्विनिवेदिताम् ॥
आचार्यास्तन्नियमतः कृतया सेवया वशाः ॥४९९॥
एकदाचार्यकैस्तात लक्ष्मणस्य क्षयाहनि ॥
श्राद्धे विप्रा यथाशक्ति भोजनार्थं निवेशिताः ॥५००॥
मानतः सर्वसामग्रीं पूर्णां प्रेक्ष्य घृतं विना ॥
तत्रोक्तमाचार्यवर्यैर्भगवान्प्रति किंकरान् ॥५०१॥
हंहो रज्ञोक्षत्रियाण्या घृतमानयताऽऽशु भो ॥
ततो निशम्याऽऽशु गतस्तदर्थं ह्येकवैष्णवः ॥५०२॥
रज्ञो देवि शृणु श्रीमदाचार्यैरर्थ्यते घृतम् ॥
तदाकर्ण्योक्तं च तया किमर्थं घृतमर्थ्यते ॥५०३॥
तेनोक्तं श्रीमदाचार्यैर्भोज्यन्ते ब्राह्मणाः सति ॥
विहितस्वपितृश्राद्धैस्तदर्थं प्रेषितोऽस्म्यहम् ॥५०४॥
तदा तयोक्तं न घृतं मेऽस्तीति प्रतिवार्त्तितः ॥
वैष्णवः स तदाऽगत्य स्वाचार्येषु व्यजिज्ञपत् ॥५०५॥
आकर्ण्य पुनराचार्यैः रे वाच्या साऽथ मद्गिरा ॥
घृतं देयमिति क्षिप्रं वैष्णव प्रहितः पुनः ॥५०६॥
स आगतस्तदा रज्ञोदेवीमित्यवदत्स्फुटम् ॥
भो भद्रे भर्त्सयित्वोक्तमाचार्यैर्देहि त्वं घृतम् ॥५०७॥
तदा तयोक्तं नहि मे घृतमस्तीति किं पुनः ॥
प्रत्याख्यातः समायातो यथावत्तेषु सोऽवदत् ॥५०८॥
तदाकर्ण्याऽऽचार्यवर्यैस्तूर्ष्णीभूतैर्जनान्तरान् ॥
घृतमानाय्य ते विप्रा भोजिता परमादरात् ॥५०९॥

रात्रौ रज्जोक्षत्रियाणी नित्यसेवापरायणा ॥
प्राप्ता पक्वान्नसामग्रीमादायाचार्यसंमुखम् ॥५१०॥
तां दृष्ट्वा श्रीमदाचार्याः पृष्ठं कृत्वाऽत्मनः स्थिताः
इत्यद्भुतं च सा प्रेक्ष्य विज्ञप्तिं कृतवत्यभूत् ॥५११॥
महाराजा. कोऽपराधो ममेति विनिरूप्यताम् ॥
तदोक्तं श्रीमदाचार्यैः शृणु मे प्रियकारिणि ॥५१२॥
पितृलक्ष्मणभट्टस्य क्षयश्राद्धेऽद्य भोजिता·
विप्रास्तदर्थं हि मया घृतं त्वद्गृहतोऽर्थितम् ॥५१३॥
तत्त्वया न कथं दत्तमिति क्षिप्ताऽथ साऽवदत् ॥
नाऽस्मि लक्ष्मणभट्टस्य दासिका भवतामहम् ॥५१४॥
दद्यां यच्छ्राद्धभुग्विप्रभोजनार्थं घृतं प्रभो ॥
भवतां किं गृहे तन्न हरेश्चेद्· समो विधिः ॥५१५॥
इत्थं तद्वचनं श्रुत्वाऽऽचार्यास्तूष्णीं तदाऽभवन् ॥
ततस्तया पुरोन्यस्तां सामग्रीं नित्यवन् मुदा ॥५१६॥
वीक्ष्याचार्यैर्वचः प्रोक्तमद्य श्राद्धदिने मया ॥
भोक्तव्यं न पुनर्भद्रे द्विर्न भोज्यमिति स्मृतेः ॥५१७॥
तदाकर्ण्य तया प्रोक्तमाचार्याः सत्यमुच्यते ॥
वर्ज्यं पुनर्भोजनं तु स्वगेहजमिति स्मृतेः ॥५१८॥
व्यवस्थितिं विचार्याऽर्या भक्ष्यं ग्राह्यमिदं हि वः ॥
इत्याकर्ण्य ज्ञातहार्दैराचार्यै स्तत्सदाग्रहात् ॥५१९॥
भुक्तं प्रभोः प्रसादार्थं पक्वान्न घृतपाचितम् ॥
एतादृक् श्रीमदाचार्यकृपापात्रं बभूव सा ॥
रज्जोनाम्नी क्षत्रियाणी कृष्णसेवा परायणा ॥५२०॥

इति श्रीमद्वैष्णवकथासुमालायामष्टमवार्तामणिः